मिथक और स्वप्न
'कामायनी' की मनस्सौंदर्य सामाजिक भूमिका
रमेश कुंतल मेघ

मिथक और स्वप्न
'कामायनी' की मनस्सौंदर्यसामाजिक भूमिका

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ

मूल्य : ७ रुपये
पक्की जिल्द १० रुपये

प्रकाशक :
ग्रन्थम
रामबाग, कानपुर–१२

मुद्रक :
माडर्न आर्ट प्रिंटर्स, कानपुर

आमुख

महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' छायावादी कवि हैं। छायावाद के संबंध में
अपने विचार हैं । वे काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति
ा हैं। उनके अनुसार छायावाद मे अर्थ-वैचित्र्य की दुर्लभ लावण्य 'छाया'
ये काव्य को छायावादी बनाती है। उनके छायावादी काव्य मे वेदना के
ार पर आन्तरिक स्वानुभूति की अभिव्यक्ति होती है। इस अभिव्यक्ति के
नये शब्द, नया वाक्य-विन्यास और नया सौंदर्यात्मक प्रतीक-विधान अपे-
होता है। इस अभिव्यक्ति में वे यथार्थवाद की लघुता, अभाव, दुःख और
को नामंजूर करते हैं। इनके स्थान पर वे आनंदवादी धारा के आनंद,
ास और शक्ति का व्यंजन करते हैं । वे दुःखदग्ध जगत और आनंदपूर्ण
का ऐकीकरण करते हैं जहाँ संशोधन के बजाय साधारणीकरण, और
ति-वैचित्र्य के बजाय भावना की एकभूमि उपलब्ध होती है। वे प्रकृति की
क एवं रहस्य को रहस्यवाद के रूप मे अंगीकार करते हैं। यही उनके जीवन-
न और सौंदर्यबोधात्मक वृत्ति का सारांश है।

'कामायनी' के संदर्भ मे प्रसाद प्रधानतः आनंदवादी (दार्शनिक दृष्टि से)
े आ सकते हैं। उन पर नियतिवादी होने का नकाब डालना एक गड़बड़
ाम होती है। इस प्रबंध काव्य मे 'नियति' शब्द केवल तीन-चार बार आया
और वह भी शैव 'प्रकृति' के उपजीव्य के रूप मे। यूँ भी प्रसाद के नियति
द के स्वरूप की व्याख्या अभी तक नहीं हो सकी है। इसी तरह प्रसाद को
ःखवादी होने का गौरव-पूर्ण दंड दिया जाता है। 'अजातशत्रु' और 'राज्यश्री'
बौद्धदर्शन का एक दूसरा ही आयाम है जिसका निरसन 'चंद्रगुप्त' में चाण-
एवं राक्षस, दाण्ड्यायन एवं नंद के द्वंद्व मे घुल गया है। 'आँसू' में व्यथा
सूफीयाना बोध रोमांटिक आँसुओं से भरपूर है । वस्तुतः उन्होंने दुःख के
ान पर भावात्मक करुणा एवं सहानुभूति को अंकित किया है, आनंद से।
ः हमें 'नियतिवादी' प्रसाद और 'दुःखवादी' प्रसाद के जैसे विशेषणों का प्रयो
ग पूरी सतर्कता से करना चाहिए।

२५
साहित्य

आमुख

महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' छायावादी कवि हैं। छायावाद के संबंध में उनके अपने विचार हैं। वे काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति मानते हैं। उनके अनुसार छायावाद में अर्थ-वैचित्र्य की दुर्लभ लावण्य 'छाया' ही नये काव्य को छायावादी बनाती है। उनके छायावादी काव्य में वेदना के आधार पर आन्तरिक स्वानुभूति की अभिव्यक्ति होती है। इस अभिव्यक्ति के लिये नये शब्द, नया वाक्य-विन्यास और नया सौंदर्यात्मक प्रतीक-विधान अपेक्षित होता है। इस अभिव्यक्ति में वे यथार्थवाद की लघुता, अभाव, दुःख और पतन को नामंज़ूर करते हैं। इनके स्थान पर वे आनंदवादी धारा के आनंद, उल्लास और शक्ति का व्यंजन करते हैं। वे दुःखदग्ध जगत और आनंदपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण करते हैं जहाँ संशोधन के बजाय साधारणीकरण, और व्यक्ति-वैचित्र्य के बजाय भावना की एकभूमि उपलब्ध होती है। वे प्रकृति की शक्ति एवं रहस्य को रहस्यवाद के रूप में अंगीकार करते हैं। यही उनके जीवन-दर्शन और सौंदर्यबोधात्मक वृत्ति का सारांश है।

'कामायनी' के संदर्भ में प्रसाद प्रधानतः आनंदवादी (दार्शनिक दृष्टि से) माने जा सकते हैं। उन पर नियतिवादी होने का नकाब डालना एक गड़बड़ मालूम होती है। इस प्रबंध काव्य में 'नियति' शब्द केवल तीन-चार बार आया है, और वह भी शैव 'प्रकृति' के उपजीव्य के रूप में। यूँ भी प्रसाद के नियतिवाद के स्वरूप की व्याख्या अभी तक नहीं हो सकी है। इसी तरह प्रसाद को दुःखवादी होने का गौरव-पूर्ण दंड दिया जाता है। 'अजातशत्रु' और 'राज्यश्री' में बौद्धदर्शन का एक दूसरा ही आयाम है जिसका निराश 'चन्द्रगुप्त' में चाणक्य एवं राक्षस, दाण्ड्यायन एवं नंद के द्वंद्व में खुल गया है। 'आँसू' में व्यथा का सूफीयाना बोध रोमांटिक आंसुओं से भरपूर है। वस्तुतः उन्होंने दुःख के स्थान पर भावात्मक करुणा एवं सहानुभूति को अन्वित किया है, आनंद से। अतः हमें 'नियतिवादी' प्रसाद और 'दुःखवादी' प्रसाद के जैसे विशेषणों का आर्ष व्यवहार पूरी सतर्कता से करना चाहिए।

'कामायनी' एक छायावादी प्रबंध है। छायावादी मूलवृत्ति अंतर्मुखी, व्यक्तिवादी और लिरिकल है। मुक्तकों वाले कला-माध्यम में महाकाव्य का यह पहला और अंतिम प्रयोग पूरे आंदोलन को ही एक क्रांतिकारी परिप्रेक्ष्य में उपस्थित कर देता है। प्रसाद के अनुसार "महत्ता ही महाकाव्य का प्राण
उनके मत में भी महाकाव्य के रचनागठन (structure) की

उद्घाटन किया है। लेकिन यह उद्घाटन कवि की जीवनी की पृष्ठभूमि में अधिक प्रामाणिक होता। दुर्भाग्य से हमारे पास कवि की जीवनी नहीं है। हमने कवि की कृतियों तथा 'कामायनी' की पांडुलिपि को उपजीव्य बनाकर उसके मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व को समझने की यथासंभव कोशिश की है। कवि का मानस (mind) यूतोपियन है। इस मानस के ऐतिहासिक, रोमांटिक एवं मिथकीय आयाम हैं जो उसकी यूतोपिया या कल्पलोक में उन्मिषित हुए हैं। हमने इन्हें भलीभांति पहचान लिया है।

यूतोपिया के प्रसंग में विशेषरूप से प्रसाद की वैयक्तिक आकांक्षाएँ, उनका वर्गीय चरित्र तथा उनकी सामाजिक विचारधारा (ideology) भी प्रकट हो जाती हैं। उनकी विचारधारा कई बुनियादी अंतर्विरोधों (contradictions) से परिपूर्ण है। 'कामायनी' में सारस्वतनगर के पूँजीवादी प्रजातंत्र, एक तानाशाह प्रशासक, एक अराजक बुद्धिवादी राष्ट्रसत्ता और एक आत्मजा प्रजा की धारणाओं को उन्होंने प्रस्तुत किया है। लेकिन इनके उपचार में वे आधुनिकीकरण की उस वैज्ञानिक प्रणाली को स्वीकार नहीं कर सके जो आज की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक समस्याओं से निपट सके। वे एक सचमुच जीवितदर्शन को नहीं समझ सके। उन्होंने विज्ञान को दर्शन के साथ संबद्ध करने के बजाय मध्यकालीन धार्मिकता को दर्शन के साथ अन्वित कर दिया है। समाज की उन्नति के लिये जिस विवेकपूर्ण, न्यायपूर्ण और आधुनिक वैज्ञानिक बोध की आवश्यकता थी, उसे वे नहीं प्रस्तुत कर सके। उन पर केवल उपनिवेशवादी पूँजीवादी सभ्यता का संत्रास तथा अध:पतन ही हावी रहा। समाजवादी भविष्य की ओर जाने की अपेक्षा वे 'तीर्थ' कराने ले चलते हैं, और दार्शनिक मध्यकालीनतावाद (philosophical Mediaevalism) में पलानवादी विश्रांति पा लेते हैं। अलबत्ता, इस प्रसंग में वे चिरबंधनमुक्त व्यक्तिवादी की भी प्रखर आलोचना करते हैं। वे कर्म (action) से इतने प्रतिबद्ध नहीं हैं जितना कि समाधि से। कर्म के द्वारा ही जीवन के समष्टिगत अनुभव होते हैं। कर्म सर्ग में जिस दिशा का प्रवर्तन हुआ, वही निर्वेद में एकदम खत्म हो गई। तो, क्या हमारे विश्व के सामाजिक विकास की आधुनिक प्रक्रिया वैसी होगी जैसी 'कामायनी' के अंतिम तीन सर्गों में वर्णित और अभिलषित है ?

इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि 'कामायनी' में तो केवल एक पूर्ण पुरुष (complete man) की प्रतिकल्पना है। संभवतः यह ठीक हो। मनोवैज्ञानिक भूमि पर इच्छा (conation), ज्ञान (cognition) तथा क्रिया

(action) का उचित सामंजस्य एक निर्मल एवं सामाजिक व्यक्तित्व (नार्मल पर्सनेलिटी) का लक्षण है। इस सत्य से कोई भी इन्कार नहीं करता। किन्तु इस सामंजस्य के लिये कवि ने तांत्रिक त्रिकोण, और मनु की शैवाद्वैत साधना का जो वशीकरण प्रस्तुत किया है, वह आधुनिक, वैज्ञानिक, सामाजिक तथा यथार्थ नहीं है। आधुनिक युग तथा मनुष्यता के इतिहास के संबंध में कवि के दावों को ध्यान में रखते हुए तो यह मध्यकालीन मानसिक वृत्ति और भी विडंबनापूर्ण लगती है। वास्तव में इन भटकावों को सही दृष्टिपथ में रखने के लिये कवि के इतिहास-दर्शन (Philosophy of History) का पुनर्निमाण जरूरी है, अन्यथा हम कठोर आलोचना अथवा उदार वदना के सीमांतों में फिसल जाएगे। हमने कवि के इतिहास-दर्शन, रस-दर्शन तथा यत्रतत्र अस्तित्वादी दर्शन की सहजवादी स्थितियों का निरूपण किया है। इन निरूपणों में कई सामाजिक एवं दार्शनिक एवं सौंदर्यबोधात्मक आशांश खुल पड़े हैं।

'कामायनी' में काम और रति संबंधी सेक्स-संस्कृति का एक अभिनव 'कामसौंदर्यसूत्र' उदित हुआ है। काम की रति एवं प्रीति संततियों के बजाय उन्होंने रति एवं लज्जा की नई जोड़ी रची है। मूलशक्ति, अनादि वासना तथा प्रेमकला को केन्द्रीय धारणाओं के आधार पर कवि ने एक ओर तो काम, वासना, स्नेह, रति, प्रीति, लज्जा, मधुरता, विलास, लीला, आदि का उन्मेष किया है, तथा दूसरी ओर रमणीयता, सौंदर्य, छवि, मजवानी सुन्दरता, किशोर सुन्दरता, शोभा, विभव आदि के सौंदर्यतात्विक स्वरूपों की व्याख्या की है। 'काम-वासना-लज्जा सर्गों की त्रयी 'कामायनी' की एकांतिक सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है।

एक कृति के रूप में 'कामायनी' में महान् असफलताओं तथा महत्त्वपूर्ण श्रेष्ठताओं और महत्तम संभावनाओं का संयोग हुआ है। आधुनिक वातायन से देखने पर तो हम इस कृति को नितांततः रूपांतरित पाते हैं। मैंने इसी रूपांतरित संदर्शन का आलोचन किया है। इसके लिये मैंने मनोविज्ञान, सौंदर्यबोधशास्त्र तथा समाजशास्त्र—इन तीनों की आधुनिक दृष्टियों को विशेष ग्रहण किया है।

अतएव ये ही "मिथक और स्वप्न : 'कामायनी' की मनस्सौंदर्य-सामाजिक भूमिका" में आधुनिक बोध की पूत दिशाएँ हैं। मैंने इसका अभि-ज्ञानपरक रचना-दर्शन अपने गुरुवर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'कालपुरुष की रूप-योजना' पर आधारित किया है।

[illegible]

जालंधर
मार्च ४, १९६३

आधुनिक वातायन (रूपरेखा)

१ 'कामना' और 'एक घूँट;' फिर 'कामायनी'

अपनी मानसिक वैयक्तिकताओं (मैंटल प्राइवेसीज) को, वैयक्तिक
ओं के धरातल पर, अभिव्यक्त करने की विराट् प्रतीकात्मक चेष्टाएँ तो
ादी कवियो ने ही शुरू की। इसका परिणाम यह हुआ कि भाव एव
ाएँ, प्रकृति और वस्तुएँ प्रतीकों (symbols) तथा बिबों (images),
धारणाओं (concepts) तथा सकेतो (signs) मे रूपांतरित होने
। प्रसाद ने 'कामना' (१९२६) मे, पत ने 'ज्योत्सना' (१९३४) मे, और
ाला ने 'जूही की कली' (१९१६) मे रोमाटिक अभिव्यन्जना-प्रणालियो के
प्रयोग किये। इन प्रारम्भिक परीकथा-जैसी रचनाओ मे मानसिक अनुभवो
। एक भोलाभाला बचपन है जिसकी अभिव्यक्ति के लिये झीने, कृत्रिम एव
[illegible] भी बने-बनाये गये। अत मानवीयकरण (personification)

हुए एक दूसरे के दुख से दुखी होकर सहानुभूति करना····मूर्खता है।····दुख के उत्पादक द्वेष, कलह और उत्पीड़न आदि की सामग्री जुटाते हैं।''·· इसमे स्पष्ट है कि—'कामायनी' मे 'कामना' वाले विवेकवादी जीवनदर्शन को छोड़ने की दृष्टि यहां परिपूर्ण हुई है। आनन्द यह भी कहता है कि ''जीवन का सत्य सौंदर्य' है।··विश्व की कामना का मूल रहस्य 'आनन्द' ही है।·· मैं स्वच्छन्द प्रेम का पक्षपाती हूँ।··मैं दुःख का अस्तित्व नहीं मानता।'' इस तरह विवेक का स्थान आनन्द ले लेता है, और रोमांटिक आनन्द की धारणा शैवाद्वैतवादी आनन्दवाद मे परिणत हो गयी है। 'कामायनी' मे विश्व की कामना कामायनी है (वह कामायनी जगत की मगल कामना अकेली)। इसमें दुःख के विपरीत उल्लास का प्रचार है (औरो को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ; अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ)। 'एक घूँट' मे प्रेम का जो दर्शन मुखर हुआ है वह 'कामायनी' मे उभरा है।

'एक घूँट' मे वनलता— ''प्रकृति का उद्देश्य दो को परस्पर प्यार करने का सकेत करना है।''

'कामायनी' के वासना सर्ग में—'दो अपरिचित से नियति अब चाहती थी मेल'।

तथा

'एक घूँट' मे वनलता—''असख्य जीवनो की भूल भुलैया में अपने चिर-परिचित को खोज निकालना और किसी शीतल छाया मे बैठकर एक घूँट पीना और पिलाना।·· ···प्रेम की एक घूँट ! बस इस के अतिरिक्त और कुछ नही।

कामायनी'—''चिर परिचित-सा चाह रहा था द्वन्द्व सुखद करके अनुमान'। 'एक घूँट' मे 'जीवन धन' की यह खोज और पहचान 'कामायनी' मे काम के सदेश मे ध्वनित हुई है जब वह मनु को कामबाला को खोजने तथा पहचानने का सकेत करता है। यह खोज सपूर्ण वासना सर्ग मे चलती है। कामसर्ग मे मनु पुकार उठते हैं . ''सब कहते हैं 'खोलो खोलो, छवि देखूँगा जीवन धन की''।

इसी तरह 'कामायनी' मे प्रेम प्रेमकला (यह लीला जिसकी विकस चली वह मूल शक्ति थी प्रेमकला) तथा प्रेम ज्योति (प्रतिफलित हुई सब आँखें उस प्रेम-ज्योति विमला से) हो जाता है। यहाँ प्रेम का आध्यात्मिकीकरण है जबकि 'एक घूँट' मे आनन्द को प्रेममय बनाया गया। 'कामायनी' मे 'लीला' और 'विलास' सात्विक अलंकार तथा सौंदर्य तत्व के रूप मे आये हैं, जबकि 'कामना,

नाटक में वे पात्र हैं। यह अगली कहानी है। इसी तरह आनन्द की सौंदर्य, और सरलता की नयी का ध्यान समरगाता, चेतनता और प्रमोद (तास रास) ले लेते हैं। इसी तरह श्रृंगारशक्ति इनको तय करती (मिलाती) है। 'एक-घूँट' की शान्तदर्शी देन ये हैं।

* अब हम 'कामना' के संदर्भ में 'कामायनी' की मीमांसा करेंगे। वास्तव में 'कामना' नाटक इस कृति की मूल प्रेरणा है जिसमें एक यूतोपिया (utopia) है, पात्ररूप मनोवृत्तियां हैं, इन पात्रों के माध्यम से समाज का विकास तथा मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास उभारने की चेष्टा हुई है। 'कामायनी' के प्रयोजनों के केंद्रबिंदु इसी नाटक में विद्यमान हैं। इस नाटक में कोई मिथक-केन्द्र नहीं है। अतः यह केवल प्रतीकात्मक फान्तासी बन गया है। इस नाटक में कोई दर्शन भी नहीं है बल्कि कवि की ही रूमानी जीवन दृष्टि है। इस नाटक में आनन्द का सार्थक नाम नहीं आया है जिससे सिद्ध होता है कि प्रसाद तब तक आनन्दवादी शैवाद्वैत दर्शन से अनुबद्ध नहीं हुए थे।

'कामना' में सासारिक पाप-पुण्य, न्याय-अपराध, माया-मोह, नैतिकता-चिंता, विवेक-तर्क से अपरिचित विजन प्रकृति के सिंधु-अंचल के एक द्वीप में बसी मनुष्यता की सृष्टि है। इस सृष्टि में कामना, संतोष, लीला और विनोद हैं। किन्तु विलास और लालसा इसका पतन कर देते हैं। विलास और लालसा मिलकर आधुनिक सभ्यता तथा नवीन नगर, और मदिरा तथा स्वर्ण का अनुप्रवेश कराते हैं। इस भयानक पतन के वातावरण मे विवेक पागल कहा जाता है, संतोष की अवहेलना होती है, शांति का वध होता है– तथा करुणा अपमानित होती है। 'कामना' की आदि संसृति और परिवर्तित संसृति के स्व-रूपों के द्वारा प्रसाद ने छायावादी बोध के अनुकूल अपने आधुनिक पूंजीवादी सभ्यता की विषमता और क्रूरता, तथा लोभ (सोना) और नैतिक पतन (मदिरा) की भावुक आलोचना की है। इसका यूतोपियाई समाधान 'भी पेश किया हैं।

इस नाटक की मूल कथा-थीम युगलों का परस्पर वरण है। उपासिका कामना द्वीप की उपासनाओं का नेतृत्व करती है। वह सिंधुद्वीप मे आई हैं और पिता ने खेल के लिए उसे भेजा है।

[कामबाला (श्रद्धा) पिता की प्यारी संतान है और संसृति जलनिधि-तीर चनकर आती है। मनु की यज्ञोपासना से खिंच कर वह आती है। ... मान के सुन्दर खेल खेलने का संदेश देती है]

स्निग्ध दीप आई-भाग-समान कामना (तुल० जब कामना सिंधुतट आई ले सन्ध्या का तारा दीप) के दीप में विलास व्यक्तिगत महत्ता के प्रलोभन वाले विचारों का प्रचार करता है। कामना विलास को देख कर झुक जाती है। उसमें इच्छा होती है कि अपने को समर्पित कर दे।

[देव-सृष्टि में काम विलास, तृष्णा, विनोद और मादकता का प्रचार करता है। विलास गुण के उदित होने पर नारी (लज्जा सर्ग में) में सर्वस्व समर्पण करने की ममता जगती है।]

* * *

विलास इस मादकता सौंदर्य में लज्जा उत्पन्न करती है जिससे भौंहों में बल, आंखों के कोरे में खिंचाव, वक्षस्थल पर तनाव और अलकों में निराली उलझन आ जाती है। आगे मनोज कामना से कहता है कि 'एक लज्जा नाम की नई वस्तु पलकों के पर्दे में छिपी है, जो कुछ ऐसी मर्म की बातें जानती है, जिन्हें हम लोग पहले नहीं जानते थे।' वह देखता है कि 'उस रूप में पूर्ण चन्द्र के वैभव की चन्द्रिका-सी सबको नहला देने वाली उच्छृंखल वासना।' वह रमणी के रूप का प्रभाव बताता है—'संभावना की साकारता और दूसरे अतीन्द्रिय रूप लोक जिसके सामने मानवीय महत् अहम् भाव लोटने लगता है। जहाँ प्राण अपनी अतृप्त अभिलाषा का आनंद-निकेतन देखकर पूर्ण वेग से धमनियों में दौड़ने लगता है।'

[वासना सर्ग में अतिथि-नारी ज्योत्सना निर्झर, कामना की किरण वाली छविधाम, वासना की मधुर छाया, हृदय की सौंदर्य प्रतिमा तथा स्वास्थ्य, बल एवं विश्राम है। वह प्राण सत्ता के मनोहर भेद-सी सुकुमार है, और उसे देख कर मनु की धमनियों में रक्त का संचार होता है। विमल राका मूर्ति की तरह

रम्य नारी मूर्ति उपस्थित होती है जो गुरुभारता के भार से झुक चलती है; जिसकी पलकें गिर रही है तथा जिसके ललित कर्ण कपोल का स्पर्श लज्जा करने लगती है। लज्जा सर्ग में 'मिल कर आती तरल हँसी नयनों में भरकर बाँकापन,' 'माया बन भौंहों की काली,' 'कुंचित अलकों सी घुंघराली' आदि की अभिव्यक्ति हुई है।]

* * *

जब कामना विलास का वरण करना चाहती है तब लीला में ईर्ष्या जागती है। और विलास कामना रानी से विवाह करके अपना हृदय समर्पण नही कर सकता। उसे बिजली के समान वक्र रेखाओं का सृजन करने वाली ज्वाला चाहिये। जिस हृदय मे ज्वालामुखी धधकता हो, वह उसका लोहा मानेगा। अन्यथा वह मधुप के समान विहार करेगा, एक धूमकेतु के समान अनिर्दिष्ट चलेगा।

[गर्भवती श्रद्धा का ममत्व बँटने पर मनु में ईर्ष्या जागती है और वे कस्तूरी कुरग-से, जलन भरे काँटो की खोज मे निकल पड़ते हैं। ईर्ष्या सर्ग मे वे झंझाप्रवाह की गति चाहते हैं। वे ज्वलनशील गतिमय पतंग हैं।]

* * *

कामना रानी बनती है और विलास मत्री। इस नई सस्कृति में न्याय और पाप, अपराध और दंड, सुखभोग और अतृप्ति का उद्भव होता है। विवेक कहता है कि सुख भोग करने की इच्छा, इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की कल्पना इसे अवश्य नरक बनाकर छोडेगी। सुख भोग की अनत कामना ने इस पृथ्वी की दबी हुई ज्वालामुखियों का मुँह खोल दिया है।

[कर्म सर्ग में मनु श्रद्धा से कहते है कि अपना सुख तुच्छ नही है। वर्तमान जीवन सुख से जब अतीत के स्वर्ग का योग होता है तब वह स्वर्ग अभाव बन जाता है। इसके उत्तर मे श्रद्धा कहती है सीमित सुख को विस्तृत करना ही सृष्टि-यज्ञ है। केवल अपना सुख तो व्यक्ति-विकास नही कर सकता। यह भीषण एकात स्वार्थ है।]

* * *

विलास विनोद को भडकाकर पशुओ की मृगया का उत्सव करवाता है। अत: विनोद के लिये हत्यायें होती हैं।

[ईर्ष्या सर्ग मे मनु भी मृगया को विनोद बनाते हैं]

* * *

विलास रानी कामना को बताता है कि, तुमको रानी इसलि

बनाया है कि तुम नियमो का प्रवर्तन करो। इस नियमपूर्ण संसार में अनियत्रित जीवन व्यतीत करना मूर्खता है। नभ के नक्षत्र, दिवा रात्रि, राका और कुहू, ऋतु चक्र शैशव यौवन जरा आदि नियम से वँधे हैं।

[सघर्ष सर्ग मे नियामक प्रजापति मनु हैं और वे स्वय नियम नहीं मानते। वे कहते है मैं शासक हूँ, मैं चिर-स्वतत्र हूँ, मेरा अधिकार राष्ट्र-स्वामिनी पर भी है और मैं चिर बधन हीन हूँ। मनु के लिये बधन विहीन विश्व का परिवर्तन नर्तन है। लेकिन जनता के मन मे वह पुकार फैल गई है कि विश्व एक नियम से बँधा है। 'कामायनी' मे रानी इड़ा है वह राष्ट्र-स्वामिनी तथा जनपद-कल्याणी है।]

* * *

विलास वैभव तथा सुख के लिये दूसरे देशो पर हमला करके युद्ध करता है और स्त्री तथा स्वर्ण लूटता है। कामना इसका विरोध करती है कि मैं तुम्हारी रानी हूँ, तुम्हारी शय्या सजाने की दासी नही। विलास नरपिशाच हो जाता है। प्रजा केवल लोलुप है।

[ईर्ष्या सर्ग मे मृगया तथा कर्म सर्ग मे पशुबलि के कर्म सघर्ष सर्ग मे युद्ध मे बदल जाते है। मनु इड़ा का भोग करना चाहते हैं और ज्योंही वे बलात्कार के लिए प्रस्तुत होते है कि आत्मजा प्रजा क्रांति कर देती है। यहाँ मनु नरपशु बन जाते हैं। यहाँ प्रजा की विशेष भूमिका निवेदित हुई है।]

* * *

विलास कामना के राज्य मे अधिकार और अपराध, पाप और पुण्य, न्याय और दड का छद्म जाल रचता है। पतित प्रजा उसका साथ देती है। वह विलास को राजा, लालसा को रानी तथा कामना को पदच्युत कराके बंदी बनाने को प्रस्तुत है। इसी के समानातर आचार्य दभ दुर्वृत्त तथा क्रूर के साथ मिलकर एक भ्रष्ट सस्कृति का प्रचार करते हैं जिसमें योग्यता और सस्कृति के अनुसार श्रेणी-भेद होता है तथा प्रतियोगिता के आधार पर अधिकारी चुने जाते है। इस सभ्यता मे नये उद्योग-धधे निकाले जाते हैं, अभावों का सृजन होता है, महल और मदिरा-मदिर बनते हैं, विश्वभरा धरती से धातुएँ निकाली जाती है, इत्यादि इत्यादि।

[सारस्वत नगर मे भी उद्योग-धधे विकसित होते हैं, धातुएँ गलाई जाती हैं, प्रसाद और सभा-मडप बनाये जाते हैं तथा श्रेणी और वर्ग विभाजन होते हैं। यह नई सभ्यता विज्ञान और विवेक, कर्म और श्रम के द्वारा प्रकृति [illegible] सभ्यता मे राष्ट्रस्वामिनी प्रजापति को

रम्य नारी मूर्ति उपस्थित होती है जो सुकुमारता के भार से झुक च
जिसकी पलकें गिर रही हैं तथा जिसके ललित कर्ण कपोल का स्पर्श
करने लगती है। लज्जा सर्ग मे 'स्मित बन जाती तरल हँसी नयनों मे
बाँकापन,' 'भापा बन भौहों की काली,' कुंचित अलको सी घुँघराली'
अभिव्यक्ति हुई है।]

* * *

जब कामना विलास का वरण करना चाहती है तब लीला
जागती है। और विलास कामना रानी से विवाह करके अपना हृ
नही कर सकता। उसे बिजली के समान वक्र रेखाओं का सृजन
ज्वाला चाहिये। जिस हृदय मे ज्वालामुखी धधकता हो, वह
मानेगा। अन्यथा वह मधुप के समान विहार करेगा, एक घूम
अनिर्दिष्ट चलेगा।

[गर्भवती श्रद्धा का ममत्व बँटने पर मनु में ईर्ष्या जा
कस्तूरी कुरग-से, जलन भरे कांटो की खोज मे निकल पड़ते हैं
वे झंझाप्रवाह की गति चाहते हैं। वे ज्वलनशील गतिमय पतंग

* * *

कामना रानी बनती है और विलास मंत्री । इस
न्याय और पाप, ... , सुखभोग और अतृप्ति व
विवेक कहता है
कल्पना इसे

और मानवों का भेद विलीन होकर विराट् विश्व; जाति और देश के वर्गों से स्वतन्त्र होकर एक मधुर मिलन-क्रीड़ा का अभिनय करेगा।'

[कामायनी में पहले रहस्य सर्ग की ओर प्रयाण हुआ है जिसमें तांत्रिक ढंग से इच्छा क्रिया-ज्ञान के त्रिकोण का समन्वय त्रिपुरसुंदरी श्रद्धा करती है और श्रद्धानुग मनु तन्मय होते हैं। इसके उपरांत आनंदसर्ग में शैवानंदवादी कैलास की पृष्ठभूमि है जो आनन्द, समरसता और आह्लाद से युक्त है, जहाँ चेतनता का विलास है, जहाँ जड़ और चेतन समरस हैं, और जहाँ शिव-शक्ति एवं मनु-श्रद्धा का अद्वय मिलन है। इस लोक तक पहुँचने के लिये मनु एक साधक होते हैं। इस लोक में एक अमूर्त मानवता है जिसने आनन्द की सिद्धि कर ली है]

* * *

● यह 'कामना' तथा 'कामायनी' की रूपरेखा है। 'कामना' में कामना इच्छा और राजरानी दोनों हैं। यहाँ विलास काम (लालसा) तथा कर्म (युद्ध) दोनों कार्य करता है तथा नरपशु मनु की भाँति नरविशाल है। यहाँ विलास-कामना-सन्तोष अथवा विलास-कामना-लालसा की नयी मानवता के विकास के रूपक बनने में अक्षम हैं। यहाँ विवेक की विजय दिखाई गई है। यहाँ मध्यकालीन दार्शनिक रहस्यवाद के स्थान पर छायावादी दार्शनिकता विद्यमान है। यहाँ आनन्द का पार्थत्व नहीं है। यहाँ संपूर्ण कथा प्रेमी युगलों के इर्दगिर्द घूमती है। यहाँ मनोविज्ञान के मनमाने समीकरण (equations) हैं, तथा एक अविवेकशील फान्तासी है। यहाँ मनु एवं श्रद्धा के स्थान पर कामना एवं सतोष का विवाह हुआ है. प्रिय सतोष और मधुर कामना का मिलन !

इस नाटक की प्रतीक कथा के क्रम में पहले कामना उपासिका है। बाद में वह रानी बनती है, तथा विलास मंत्री। वह विलास के लिये सतोष की उपेक्षा करती है। विलास में हृदय और बुद्धि के बजाय लालसा और कामना का मेल है। विलास, कामना, लीला और विनोद--ये चारों अभिन्न बनाये गये हैं और चारों ही प्रधानतया प्रेम के विविध प्रतिरूप हैं। विलास लालसा से विवाह करता है, तथा विनोद लीला से। किन्तु कामना तथा लीला दोनों ही विलास को चाहती हैं। इस तरह कामना और लीला, कामना और विलास, कामना और सतोष, लीला और विनोद, लालसा और विलास के योग-वियोग के द्वारा कुछ मनोवैज्ञानिक त्रिकोण रचे गये हैं। पहले विलास मंत्री था और कामना रानी। फिर विलास और लालसा पति-पत्नी बने। अततः विलास और

हाँ में हाँ नहीं मिलाती। अतः मनु पराजित होते हैं]

* * *

विलास सोचता है कि इन भोले भाले प्राणियों के बीच जिन भावों का प्रचार हुआ उससे यहाँ भी शाप और संघर्ष फैल गया। यहाँ भी नवीन पापों की सृष्टि हुई। द्वीपवासी मानसिक नीचता, पराधीनता, दासता द्वंद्व और दुःखों के अलातचक्र में दग्ध होने लगे।

[इड़ा सर्ग में 'अभिनव मानव प्रजासृष्टि,' 'जीवन निशीथ के अंधकार'-, 'हो शाप भरा तव प्रजातंत्र', तथा अन्य पदों में इसी तरह का थोड़ा गहनतर चिंतन हुआ है]

* * *

विवेक लीला, लालसा, विलास और कामना से कहता है कि तुम लोग आज सामूहिक रूप से निरीह प्राणियों की हत्या का जो आयोजन मना रहे हो, कल इसी प्रकार मनुष्यों की हत्या का आयोजन होगा। विलास 'भयानक युद्ध' की तैयारी करता है— सभ्यता के तांडव की !

['कामायनी' में मनु की मृगया की आदत ही 'भीषण नर-संहार' करती है और युद्ध एक 'सामूहिक यज्ञ' का रूप ले लेता है। इस युद्ध में रुद्र का तांडव होता है।]

* * *

विवेक दुर्वृत तथा प्रमदा से कहता है : 'सम्हलो। लौट चलो उस नैसर्गिक जीवन की ओर, क्यों कृत्रिमता के पीछे दौड़ लगा रहे हो ?'

[कामायनी में दर्शन सर्ग से दार्शनिक मध्यकालीनतावाद की ओर प्रयाण शुरू होता है]

* * *

अंततः कामना विलास के जाल से छूटती है और संतोष का वरण करती है। वह अपने प्यारे देशवासियों से लौट चलने तथा इस इन्द्रजाल की भयानकता से भागने का संदेश देती है। विनोद कहता है कि मदिरा और स्वर्ण के द्वारा हम लोगों में नवीन अपराधों की सृष्टि हुई, हमारे अपराधों ने राजतंत्र की अवतारणा की। विवेक कहता है कि यह खेल था, और खेल ही रहेगा। इस विराट विश्व और विश्वात्मा की अभिन्नता की एकता भुला दी जाती है जिससे विषमता का विषमय द्वंद्व होने लगता है। अतः मनुष्यता की रक्षा आत्मसंयम और आत्मशासन से होगी। तब सघर्षमय शासन स्वयं तिरोहित होगा। उस महान दिन को ईश्वर और मनुष्य, राजा और प्रजा, शासित

और शासकों का भेद विलीन होकर विराट् विश्व; जाति और देश के वर्णों से स्वच्छ होकर एक मधुर मिलन-क्रीडा का अभिनय करेगा।'

[कामायनी मे पहले रहस्य सर्ग की ओर प्रयाण हुआ है जिसमे तांत्रिक ढग से इच्छा-क्रिया-ज्ञान के त्रिकोण का समन्वय त्रिपुरसुदरी श्रृद्धा करती है और श्रृद्धायुत मनु तन्मय होते हैं। इसके उपरात आनदसर्ग मे शैवानदवादी कैलाश की यूतोपिया है जो आनन्द, समरसता और आह्लाद से युक्त है, जहाँ चेतनता का विलास है, जहाँ जड़ और चेतन समरस हैं, और जहाँ शिव-शक्ति एवं मनुश्रृद्धा का अद्वय मिलन है। इस लोक तक पहुँचने के लिये मनु एक साधक होते हैं। इस लोक मे एक अमूर्त मानवता है जिसने आनन्द की सिद्धि कर ली है]

* * *

● यह 'कामना' तथा 'कामायनी' की रूपरेखा है। 'कामना' मे कामना इच्छा और राष्ट्ररानी दोनो है। यहाँ विलास काम (लालसा) तथा कर्म (युद्ध) दोनो कार्य करता है तथा नरपशु मनु की भाँति नरपिशाच है। यहाँ विलास-कामना-सतोष अथवा विलास-कामना-लालसा की त्रयी मानवता के विकास के रूपक बनने मे अक्षम हैं। यहाँ विवेक की विजय दिखाई गई है। यहाँ मध्यकालीन दार्शनिक रहस्यवाद के स्थान पर छायावादी दार्शनिकता विद्यमान है। यहा आनन्द का पारम्य नही है। यहां सपूर्ण कथा प्रेमी युगलो के इर्दगिर्द घूमती है। यहाँ मनोविज्ञान के मनमाने समीकरण (equations) है, तथा एक अविवेकशील फान्तासी है। यहाँ मनु एव श्रृद्धा के स्थान पर कामना एव सतोष का विवाह हुआ है. प्रिय सतोष और मधुर कामना का मिलन !

इस नाटक की प्रतीक कथा के क्रम मे पहले कामना उपासिका है। बाद मे वह रानी बनती है, तथा विलास मत्री। वह विलास के लिये सतोष की उपेक्षा करती है। विलास में हृदय और बुद्धि के बजाय लालसा और कामना का मेल है। विलास, कामना, लीला और विनोद—ये चारो अभिन्न बनाये गये हैं और चारो ही प्रधानतया प्रेम के विविध प्रतिरूप हैं। विलास लालसा से विवाह करता है, तथा विनोद लीला से। किन्तु कामना तथा लीला दोनों ही विलास को चाहती हैं। इस तरह कामना और लीला, कामना और विलास, कामना और सतोष, लीला और विनोद, लालसा और विलास के योग-वियोग के द्वारा कुछ मनोवैज्ञानिक त्रिकोण रचे गये हैं। पहले विलास मत्री था और कामना रानी। फिर विलास और लालसा पति-पत्नी बने। अतः विलास और

लालसा की स्वर्णलदी नौका डूबती है, और प्रिय संतोष तथा मधुर कामना का विवाह होता है।

'कामायनी' में कामना-लीला के उपर्युक्त सम्बन्ध नारी-लज्जा-संबंध हुए है। विलास ने काम की भूमिका निबाही है। विनोद तथा विलास तथा विवेक की क्रमिक वृत्तियाँ मनु के चरित्र में अनुस्यूत हो गई हैं। विलास एवं लीला नारी का एक सात्विक अलकार हो गई हैं। 'लीला' सौंदर्य सृष्टि का भी पर्याय हुई है। लालसा का रुपांतरण वासना में हुआ है। स्वर्ण यज्ञ की ज्वाला का बिंब हो गया है। यहाँ हृदयरानी तथा राष्ट्ररानी की भूमिका अलग-अलग कामायनी तथा इड़ा निबाहती है। यहाँ सचारी लज्जा को स्वतंत्र पात्रत्व मिला है तथा काम का अभिनव अनुप्रवेश हुआ है। यहाँ विलास की बौद्धिक भूमिका इड़ा सपादित करती है। ये कुछ प्रधान प्रेरणा-सूत्र हैं जिनसे 'कामायनी' का 'कामना'-प्रवर्तित रूप-स्वरूप निर्मित हुआ है।

इस भाँति हम पाते हैं कि 'कामना' के पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) के कारण ही 'कामायनी' में विचारों की प्रौढ़ता आई है, कवि ने प्रतीकों का व्यवहार करना सीखा है, तथा 'कामना' की मूल भाव-बोधकताओं को महाकाव्य में सशोधित करके ग्रहण किया गया है। महाकाव्य लेखन क्रम के बीच में ही लिखे जाने वाले 'एक घूंट' नामक एकांकी ने कवि के मन में 'आनंद' की छायावादी धारा का निर्मल प्रवाह बहाया है जो इसमें ('कामायनी' में) शैवाद्वैतवादी आनन्द का दर्शन हो गया है। इन सब सूत्रों की यथोचित आवृत्तियाँ अगले अध्यायों में होंगी।

\+\+\+\+\+\+\+\+

२ 'कामायनी:' पांडुलिपि तथा प्रकाशित प्रति की तुलना

यहाँ हम 'कामायनी' के ऐसे पक्ष का अनुशीलन करेंगे जिस पर संभवतः
ई कार्य नहीं हुआ है। सम्प्रति हमारा लक्ष्य महाकाव्य की सर्वांगीण विवेचना
थवा लेखन-परिपाटी के अनुसार अध्यायबद्ध रचना करना नहीं है। यह कार्य
होता ही आ रहा है। अतः हम प्रसाद के कलाशिल्प की भव्यशैली (ग्राड
ाइल) के निखार को प्रस्तुत करने के लिए पांडुलिपि तथा प्रकाशित प्रति
ी तुलना उपस्थित करेंगे।

लगभग सन् १९२८ ई० के एक वर्ष पहले से लगाकर सन् १९३५ ई० (स० १९९२) तक हुआ । आठ नौ वर्षों के बीच मे इसका कथानक, विचार, शिल्प-सयोजन कई वार बदला होगा । 'कामना' नाटक से इसका वर्तमान विकास, तथा अंतिम पांडुलिपि मे भी अनेक नए अशो का सयोग - वियोग इस बात के सूचक हैं कि प्रसाद जी इसे निरन्तर परिष्कृत करते रहे होंगे । उदात्त भव्य शैली के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि प्रेरणा के तीव्रोदीप्त क्षणों मे ही उन्होने इसका अधिकाश लिखा होगा ।

पाडुलिपि देखने से यह भी ज्ञात होता है कि प्रसाद ने सूक्ष्म और लघु विस्तार तक के लिए परिश्रम किया है । परिवर्तनो और विकल्पों का जो भी चयन किया गया है उनसे नि:सदेह उन्नति हुई है । परिवर्तित शब्दो, ध्वनि-व्यवस्थाओ, रगो और रूपरेखाओ द्वारा यह भव्य शैली और भी उत्कर्षमयी हो गई है ।

सर्वप्रथम सूक्ष्म विस्तार (माइन्यूट डिटेल्स) और रूपरेखाओं (आउट-लाइंस) से सबन्धित कुछ अशो को लें । कर्म सर्ग मे 'असुर पुरोहित उस विप्लव से' लेकर 'जहां सोचते थे मनु बैठे मन से ध्यान लगाये !' तक का किलात - आकुलि प्रसग जोडा गया है । वासना सर्ग मे देखता हूँ दूसरा कुछ मधुरिमामय साज' के वाद 'जन्म संगिनी एक थी जो कामबाला नाम' से लेकर 'प्रणय विधु है खड़ा नभ मे लिये तारक हार' तक का अश भी जोडा गया है । निर्वेद सर्ग मे श्रद्धा का प्रसिद्ध गीत—'तुमुल कोलाहल कलह में···' पहले स्वप्न-सर्ग मे—'करुण वही स्वर फिर उस संसृति में बह जाता है गल के' केवाद से—संलग्न था । यहां इसकी चौदहों पक्तियां कटी हैं । उपर्युक्त सभी सयुक्त अंश कथानक के विस्तार को अभिव्यक्त करते हैं । किलात-प्रसग असुर और देव सघर्ष को उपस्थित करने के साथ-साथ मनु के दभ, दर्प और उच्छृंखलता की ओर जाने का कारण बताता है तथा पौराणिक कथा के रूपक को अधिक प्रभावशाली भी बनाता है । मनु पर असुरों की सास्कृतिक विजय हो जाती है और सोमपान तथा मांसभक्षण करने से उनमे तरल वासना जाग उठती है । वासना और संघर्ष सर्ग के द्वन्द्वों के लिए यह उचित प्रसग - सूत्रधार अपेक्षित था । वासना सर्ग के सयुक्तांश द्वारा माधवी राका की पृष्ठभूमि मे प्रणयोत्तर की कथा की स्मृतियां साकार की गई हैं । श्रद्धा के गीत को निर्वेद सर्ग मे जोड़कर कथा के वातावरण तथा वृत्तगठन को अनिवार्य क्रम दिया गया है । किन्तु विच्छिन्न अवबोध्य अशों मे तो कवि ने अपनी स्वाभाविक प्र[illegible] अवचेतन के मुक्त प्रवाह को अधिक स्वच्छन्द किया है । कर्म सर्ग [illegible]

और यह 'साधक' कोई निर्गुण भक्त न होकर दो विरोधी द्वंद्वों के बीच खड़नेवाला स्वयं कवि है।

इसी प्रकार आशा सर्ग 'आहुति नव अन्नों की पा नभ को सौरभ से किया समृद्ध' नामक चरण का 'आहुति की नव धूम गंध से नभ कानन हो गया समृद्ध' में परिवर्तन, गंध या केवल नभ की अपेक्षा 'नभ कानन' तक दुहरा विस्तार करता है; 'धँसती धरा, धधकती ज्वालामुखियों के मिस से निश्वास' का 'धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वालामुखियों के निश्वास' में परिवर्तन प्रलय के लिए दो से तीन उपादानों का संचय करता है और 'पिता ने भेजा मुझे सहर्ष सीखने ललित कला का ज्ञान' का 'भरा था मन में नव उत्साह सीख लूँ ललित कला का ज्ञान' में परिवर्तन प्रलय के बाद निहग वातावरण में पिता का आधार छोड़कर श्रद्धा के साहसी नव उत्साह को प्रकट करता है।

● 'वाक्यात्मक संगीत' (—ई० सेंट्सबरी) नामक तत्त्व भव्य शैली की प्रमुख कसौटी है। शब्दों की पुनर्व्यवस्था, ध्वनियों की पुनर्योजना तथा अनुप्रासादि इसकी प्राप्ति के प्रमुख साधनों में से है। शब्दों की पुनर्व्यवस्था करते समय प्रसाद ने सर्वनामों को अंत या बीच में, विधेयों को शुद्ध रूप से अन्त में तथा कारक-विभक्तियों को स्वराघात के अनुकूल प्रयुक्त किया है और यह ध्यान भी रखा है कि पदरचना यथासंभव शुद्ध होने के साथ साथ पदलालित्य से भी मंडित हो।

प्रमोद मिलेगा-(कर्म) ——— तुम्हे प्रमोद मिलेगा !

सातवें उदाहरण मे 'अकेला प्रमोद' 'अकेले मनु' के लिए अकेलेपन का त्याग कर देता है । इसमे सबोधन चिन्हो का गलत प्रयोग भी सशोधित किया गया है और प्रश्नसूचक चिन्हो लगाकर मनोभाव को सार्थक बनाया गया है । ८३ में मूल मे चित्र की रेखाओ की पृथकता थी किंतु पुनर्व्यवस्थित पक्ति मे रेखाओंवाले सपूर्ण चित्र को देखा गया है ।

ध्वनि-पुनर्योजनाओ मे भी पदलालित्य की गूँज मे सम्वर्धन हुआ है । कुछ उदाहरण—

मूल	परिवर्तित
१. उषा सदृश वह हँसी ज्योत्सना-सा यौवन निश्चित विहार (चिंता)	उषा ज्योत्सना-सा वह यौवन-स्मित मधुप सदृश निश्चित विहार
२. होती थी, अब रही प्रालेय लयकरी भीषण वृष्टि (चिंता)	होती थी अब यहाँ हो रही प्रलय-कारिणी भीषण वृष्टि
३. धँसती धरा, धधकती ज्वालामुखियो के मिस से निश्वास (चिंता)	धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वालामुखियो के निश्वास
४ बजते थे नूपुर, झकृत होते ककण हिलते थे हार (आशा)	ककण-क्वणित रणित नूपुर थे हिलते थे छाती पर हार
५ मधु पवन प्रेरित जैसे बाल साल हिलते सौरभ सयुक्त (आशा)	मधु पवन क्रीडित ज्यो सुशोभित शिशुसाल हो सौरभ सयुक्त

पहले उदाहरण मे हँसी और यौवन के प्रभावसाम्यो को एक करके उषा की लज्जा और चाँदनी की मुस्कान के साथ जोडने के बाद निश्चित विहार के धर्म को मधुप के साथ उचित ढग पर सलग्न किया गया । दूसरे उदाहरण मे प्रलय का सगीत उत्पन्न करने वाली भीषण वृष्टि को प्रलयकारिणी मानकर प्रभावसाम्य का सघटन किया गया है। तीसरे उदाहरण मे धारा और ज्वाला-मुखियो के साथ ज्वाला भी जोडी गई है तथा स्वराघात को अधिक ठाठ दिया गया है । चौथे उदाहरण मे तो ध्वन्यर्थ-व्यजना ही साक्षात् उपस्थित की गई है । पाँचवें मे 'प्रेरित' को 'क्रीडित' तथा 'हिलने' को सुशोभित बनाकर चित्र-मय सौदर्य का सघटन हुआ है तथा 'बालसाल' का 'शिशुसाल' मे परिवर्तन एक अतिरिक्त 'स'-ध्वनि की उपलब्धि के अतिरिक्त · · 'शिशुसाल सुशोभित हो सौरभ सयुक्त' द्वारा अनुप्रास की छटा उपस्थित करता है । इसके अतिरिक्त इसमे अनुप्रास का निरर्थक मोह छोड़कर एक 'इमेज' की आतरिक रचना भी

और यह 'साधक' कोई निर्गुण भक्त न होकर दो विरोधी द्वंद्वों के बीच सजनेवाला स्वयं कवि है ।

इसी प्रकार आशा सर्ग 'आहुति नव अस्त्रों की या नभ को सौरभ से किया समृद्ध' नामक चरण का 'आहुति की नव धूम गंध से नभ कानन हो गया समृद्ध' मे परिवर्तन, गध का केवल नभ की अपेक्षा 'नभ कानन' तक दुहरा विस्तार करता है; 'धँसती धरा, धधकती ज्वालामुखियों के मिस लें निश्वास' का 'धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वालामुखियों के निश्वास' मे परिवर्तन प्रलय के लिए दो से तीन उपादानो का सचय करता है और 'पिता ने भेजा मुझे सहर्ष सीखने ललित कला का ज्ञान' का 'भरा था मन में नव उत्साह सीख लूँ ललित कला का ज्ञान' में परिवर्तन प्रलय के बाद निहंग वातावरण मे पिता का आधार छोड़कर श्रद्धा के साहसी नव उत्साह को प्रकट करता है ।

◉'काव्यात्मक संगीत' (--दे० सेंट्सबरी) नामक तत्व भव्य शैली की प्रमुख कसौटी है। शब्दो की पुनर्व्यवस्था, ध्वनियों की पुनर्योजना तथा अनुप्रासादि इसकी प्राप्ति के प्रमुख साधनो मे से है। शब्दो की पुनर्व्यवस्था करते समय प्रसाद ने सर्वनामों को अत या बीच मे, विधेयो को शुद्ध रूप से अन्त में तथा कारक-विभक्तियो को स्वराघात के अनुकूल प्रयुक्त किया है और यह ध्यान भी रखा है कि पदरचना यथासंभव शुद्ध होने के साथ साथ पदलालित्य से भी मंडित हो। निम्नलिखित उद्धरण द्रष्टव्य है—

मूल	परिवर्तित
१. जैसे बनकर पत्थर ठिठुरे अड़े रहे (चिता)	जैसे पत्थर बनकर ठिठुरे अड़े रहे
२. वे सब विकल वासना के प्रतिनिधि मुरझाये चले गये (चिंता)	विकल वासना के प्रतिनिधि वे सब मुरझाये चले गये
३. कब तक चला मृत्यु का काला शासन चक्र न स्मरण रहा (चिंता)	काला शासन चक्र मृत्यु का कब तक चला न स्मरण रहा
४. अपने कर में मनु ने श्रद्धा को धीरे से ले ली (कर्म)	श्रद्धा को, धीरे से मनु ने अपने कर मे ले ली
५. मैं तो आया हूं देवी मुझे समझा दो जीवन सहज मोन (इड़ा)	मैं तो आया हूं देवि बता दो जीवन का क्या सहज मोल
६. एक चित्र बस रेखाओं का अब उनमें है रंग कहाँ (स्वप्न)	एक चित्र बस रेखाओं का अब उसमें है रंग कहाँ
७. निर्जन मे क्या एक ! अकेला तुम्हें !	निर्जन में क्या एक अकेले

हुई है। ध्वनियोजना में प्रसाद ने वर्णमाला के कोमल वर्णों का विशेष उपयोग किया है।

अनुप्रास के विषय में तो सौंदर्यवादियों की धारणाएँ काफी अप्रीतिकर हैं। वे इसे अपेक्षाकृत यांत्रिक मानते हैं। किंतु वर्णावृत्ति के स्थान पर जब (डियोनोसियन शब्दावली के अनुसार) 'सुन्दर वर्णों' का उपयोग किया जाता है तब वे कवि के कौशल को सिद्ध करते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने 'प्रसन्न पद' की कल्पना भी कुछ ऐसी ही की थी। कुछ उदाहरण—

	मूल	परिवर्तित
१.	बजते थे नूपुर, झङ्कृत होते कंकण हिलते थे हार × (फिर) कंकण-क्वणित रणित नूपुर से थे हिलते छाती पर हार × (चिंता)	कंकण क्वणित रणित नूपुर थे हिलते थे छाती पर हार
२.	इंद्रनील का महा चषक था•• (आशा)	इन्द्रनील मणि महा चषक था
३.	उस रमणीय दृश्य में घुलने लगी चेतना की आँखें (आशा)	घुली उसी रमणीय दृश्य में अलस चेतना की आँखें
४.	अन्य अनि रजित किरण से श्री- [illegible]	दूगरा रंजित किरण से श्री-[illegible] [illegible]

उनका सजग चयन ही काव्य मे चारो ओर आलोक, रंग और सगीत बिखरा देता है । उदाहरणार्थ कवि अमर देवताओ की बालाओ के मधुरतम अक्षय शृंगार का चित्रण करना चाहता था। साधारण फूल मुरझा जाते हैं और उनकी गंध लुप्त हो जाती है; साधारण मणियो में आलोक नही होता। स्वर्ग के पारिजात के फूल और चद्रकात मणियाँ भी ऐसे गुणो से पूर्ण हैं। इसलिए कवि कहता है—

'वे अम्लान कुसुम सुरभित, मणि रचित मनोहर मालायें'

यहाँ शब्दचयन एवं व्यवस्था का संगीत मणियों का व्यजक आलोक और रग तथा सुरभित कुसुमरचित मालाओ के झूलने का सगीत सौंदर्य को चरमावस्था तक पहुँचा देता है । इसके पहले उन्होने निम्नलिखित पक्ति लिखी थी जिसमे साधर्म्य का लोप तथा असुन्दर चयन था—

'वे सुवास मणिरत्न और आलोक कुसुम की मालायें ।'

न मणिरत्नो मे सुवास होती है, और न कुसुमो मे आलोक । इसके अतिरिक्त अमरता और विहार की निश्चितता का बोध भी कम होता है। कुछ दूसरे उदाहरण निम्नलिखित है—

	मूल	परिवर्तित
१.	कल कुसुमित कुजों मे वे पुलकित *आलिंगन हुए विलीन* (चिंता)	कुसुमित कुजो मे वे पुलकित प्रेमालिंगन हुए विलीन '+'
२.	वर्षा-सरित सदृश वासनाओ का वह मदमत्त प्रवाह (चिंता)	भरी वासना-सरिता का कैसा था मदमत्त '+' '+' प्रवाह
३.	कर रहे निर्जन का निर्वेद प्रभा की धारा से अभिषेक (आशा)	कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक
४	उस रमणीय दृश्य मे खुलने लगी चेतना की आँखें (चिंता)	खुली उसी रमणीय दृश्य मे अलस चेतना की आँखें
५.	मनु अकेले निज नियति का खेल बधन मुक्त (वासना)	मनु चमत्कृत निज नियति का खेल बधन मुक्त
६.	अचल रजनी मूर्ति बनकर स्तब्ध बैठा कौन (वासना)	विमल राका मूर्ति बनकर स्तब्ध बैठा कौन
	बिखरती है तामरस सुन्दर चरण के प्रान (वासना)	बिखरती है तामरस सुन्दर चरण के प्रान्त
	नारी जीवन का ऐसा ही क्या	नारी जीवन का चित्र यही क्या विकल

ईर्ष्या, रागरंजित मदिरा, भोला सुहाग, धवल हँसी, उन्नत वक्ष, दुर्ललित लालसा, मीठी अभिलाषाएँ, निर्मम प्रकृति, जलती छाती, शीतल प्यार, निष्ठुर विजय, रुद्र हुंकार, दुरागत वशीरव, अजस्र वर्षा, श्यामल कर्म-लोक आदि आदि। इन्हीं विशेषणों ने रंगों के कई इंद्रधनुष खींचे हैं—सुन्दर चरण, विमल राका, अमन्द मलु, तरल अग्नि की दौड़, रजनी की भीगी पलकें, पतझड़ की सूनी डाल आदि के रंगों का नामकरण अभी शेष है किन्तु प्रकाशित प्रति में ही अपरिवर्तित इन्द्रनील, हिमधवल, अरुण स्वर्णिम रंग, रंग बिरंगी छींट आँखों में अंजन, सरस कपोलों में लाली, नयनों की नीलम घाटी, केतकी गर्भ सा पीला मुख, कोमल काले ऊनों की नव पट्टिका, नील परिधान, सोने की सिकता में कालिंदी का उपासयुक्त बहाव, स्वर्गंगा में इंदीवर की एक पंक्ति, पीला पीला दिवस, श्यामल घाटी, सध्या की अरुण जलज केसर, क्षितिज भाल का कुंकुम, हरित कुंज की छाया, रुपहली रातें, अति नीले पीले धूमकेतु, रक्तिम उन्माद, महाश्वेत गजराज, सपना के गहने इत्यादि, परिपूर्ण दृश्यात्मक बिंबों (विजुअल इमेजेज) की अद्भुत दुनियाँ बसा देते हैं।

कुछ विकल्पों (आल्टर्नेटिव्ज) का प्रयोग करके प्रसाद ने भाषा के भद्देपन को दूर किया और भावों में शालीनता तथा सौंदर्य की भी अभिवृद्धि की है—

	मूल	परिवर्तित
१.	ज्वालामुखी स्फोट की भीषण प्रथम कंप सी मतवाली (चिंता)	ज्वालामुखी स्फोट के भीषण मतवाली (लिंग सुधार)
२.	उस विराट आलोडन के बुल्ले से उपग्रह लगते	उस विराट आलोडन में ग्रह-तारा बुदबुद से लगते
३	परिचित जोड़ा चाह रहा था द्वंद्व आज अपना अनजान	चिरपरिचित-सा चाह रहा था द्वंद्व सुखद करके अनुमान
४.	लेट रही थद्धा भी अपना कोमल चर्म बिछा के	कामायनी पड़ी थी अपना कोमल चर्म बिछा के
५.	मादकता सुख के पेंग बढ़े पालने पौढ़ कर झूलो	मादकता दोलापर प्रेयसि ! आओ मिलकर झूलो '+' '+'

और निम्नलिखित अवतरणों में विकल्पों द्वारा वातावरण के अनुकूल भावों में परिवर्तन हुआ है—

	मूल	परिवर्तित
१.	आज मनन करता हूँ जितनी उस अतीत की उस सुख की (चिंता)	चिंता करता हूँ मैं जितनी उस अतीत की उस सुख की

३ | सहृदय-बोध तथा कवि का संसार

अगर सहृदय-बोध के अन्तर्गत यही छानबीन की जाय कि 'कामायनी' का महाकाव्यत्व क्या है, उसमे कौन सा रस और है, उसमे साधारणीकरण कैसे होता है, तथा उसकी तन्मयीभवन योग्यता किस स्तर की है— तब हमे विशेष उपलब्धि नही होगी। 'कामायनी'' एक रोमानीय सश्लिष्ट काव्य (Total poetry) है जिसकी सदर्भात्मक इकाई 'चिरतन मानवीय सत्य तथा रमणीय सौंदर्य' की है। अतएव हम इस कृति का अनुशीलन रूढिबद्ध मत्तो नियमो तथा बाह्य घटनाओ की दृष्टि से कम ही कर सकते है। यह मीमासा सृजन प्रक्रिया (creative process) की दृष्टि से ज्यादा सभव है, यद्यपि यह एक कठिन काम है।

'कामायनी' मे रोमाटिक कविता है। रोमाटिक सौंदर्यबोध मे अनुभूति तथा अभिव्यक्ति के बीच के माध्यम (medium) की अमूर्त तथा मोम जैसा नमनीय बनाने का आवेग होता है। अत रोमाटिक काव्य लघुवृत्तों वाला, तीव्र केन्द्रीभूत तथा आवेगशील होता है। अत उसमे भाव के स्थान पर अनुभूति (feeling), और विचार के स्थान पर सवेदना (sensation) की प्रतिष्ठा होती है, जबकि शास्त्री काव्यशास्त्र मे तो आरभिक इकाई 'विचार-भाव' की होती है। इसके अलावा रोमांटिक काव्य मे सूक्ष्म 'आभ्यन्तर भावो' की अभिव्यक्ति होती है। यह अभिव्यक्ति ही 'स्वानुभूतिमयी होती है जिसके स्वरूप की चर्चा काव्यशास्त्रो मे एक रसविघ्न मानी जायगी। यही नही, इस काव्य के 'नवीन' भावो मे आतरिक स्पर्श की 'पुलक' तथा भगिमा की 'तड़प' होती है। इनमे जो अर्थ-वैचिभ्य होता है वह शब्दशक्तियो से अनुमोदित होने की अपेक्षा अन्तर से अनुप्राणित होना है। अतएव इस वाक्य

मे अनुभूति की निजता, अभिव्यक्ति की तड़प एवं पुलक होती है। प्रसाद ने अपनी इस छायावादी महा-कविता के नवीन भावों का वेदना के आधार पर परिपाक किया है। अतः यहां *अर्थों की 'छाया'* और *अनुभूति की 'माया'* के अभिराम इन्द्रजाल फैलाये गये हैं। इसी भूमिका पर *'कामायनी'* के सहृदय बोध का सर्वप्रथम निवेदन किया जा सकता है।

"कामायनी" में सहृदय-बोध की दूसरी भूमिका है, कविसंमित 'अनादि वासना' की। यदि यह एक ओर 'मधुर प्राकृतिक भूख' के समान है जो *तृष्णा और तृप्ति उत्पन्न करती है*, तो दूसरी ओर प्रकृति की *'मूल शक्ति'* है जो प्रबुद्ध होने पर ताल, लय, राग, अनुराग, पराग आदि उत्पन्न करती है। यह प्रकृति मे वसंत तथा मनुष्य मे काम के रूप में उन्मिषित होती है। अतः इस अनादि वासना मे प्रकृति की रहस्य शक्ति और मनुष्य की इच्छाशक्ति एक रूप हो जाती है। इस वजह से प्रकृत रस और आनन्द रस में भी तादात्मय हो जाता है। इस तरह प्रकृति और मनुष्य दोनों ही में विश्वात्मा का बोध स्थापित हो जाता है। यही रूपकत्व और रसत्व दोनों का संयोग हो सकता है। इसकी व्यंजना *'सौन्दर्यमयी'* होती है (रसमयी के बजाय) इसलिये सहृदय बोध आरम्भ से ही एक रहस्य और एक कुतूहल से मंडित होता है जिसकी वजह से तादात्म्य के आयामों मे चारु विभ्रम फैलता है। अतः *'कामायनी'* में सर्वत्र *'उद्विग्नता'* मौजूद है। वेदना की अतभूंमि तथा कुतुहल, दोनों के कारण सहृदय-बोध मे यह *'उद्विग्नता'* अर्थ का अतिक्रमण करती है और अनिर्वचनीय अनुभव मे विश्रांति पाती है। इसलिए कवि ने पण्डितराज जगन्नाथ की *'रमणीयता'* का छायावादी संस्कार किया है। यह संस्कार सहृदय-बोध का भी हुआ है। यह बोध 'अणु' 'कण' तथा बिंदु से स्पंदित होता है (दे० 'प्रकृति के सौदर्य साक्षात्कार' शीर्षक *अध्ययन*)

अब सहृदय-बोध की तीसरी भूमिका *'प्रत्यभिज्ञा'* की है। प्रत्यभिज्ञा अनुभवों को काल विमुक्त करने की एक मनोदार्शनिक धारणा है। भूतकाल मे अनुभूत वस्तु का स्मरण होता है, तथा वर्तमान काल में उसका प्रत्यक्ष। अतः स्मृत अनुभव और प्रत्यक्ष अनुभव को मिलाकर एक नवीन अनुभव प्राप्त होता है। अतः प्रत्यभिज्ञा *'पूर्वानुभवपूर्ण प्रत्यक्ष'* है। इस तरह यह साधारण प्रत्यक्ष से भिन्न भी है। प्रत्यभिज्ञा वस्तु को एक ही मानती है, जबकि हमारा सहृदयबोध नवीन वस्तुओं का भी प्रत्यक्ष करता है। *'कामायनी'* के मनु को सारस्वतनगर मे भी नया युद्ध एक सामूहिक यज्ञ, तथा श्रद्धा सर्ग मे तरल —ज्वाला एक यज्ञज्वाला के रूप मे ही अनुभूत होती है। प्रत्यभिज्ञा मध्ययुगीन

अचल समाजों का यथार्थ बोध थी। उस दृष्टि मे 'वस्तु' नही बदलती; केवल 'काल' बदलता है। अत. वर्तमान मे कुछ नये का प्रत्यक्ष नही हो सकता। हम केवल वर्तमान के प्रत्यक्ष मे भूतकाल का स्मरण जोड देते हैं। इस तरह भूत एव वर्तमान के अनुभवो को एक समझना ही प्रत्यभिज्ञा-दर्शन है ("यह वही है") यही तादात्म्य है।

अतीत के अनुभव ही 'स्मरण' हैं। ये हमारे मन मे संस्कार रूप मे अनुबद्ध रहते हैं। उद्बोधक कारणों से ये सस्कार जाग उठते हैं। संस्कारो से विमुक्त ज्ञान 'कल्पना' है क्योंकि उसमे 'वस्तु' नही (आकाश कुसुम) है, अनुभव के बन्धन नहीं हैं, बल्कि एक स्वच्छन्द 'माया' है। 'कामायनी' में 'प्रत्यभिज्ञा' तथा 'कल्पना', दोनों का मेल हुआ है जो सहृदयबोध मे अतिरिक्त क्षमता की अपेक्षा करता है।

सहृदय-बोध की चौथी भूमिका प्रतीक (symbol) एव अन्यापदेश (allegory) के विन्यास की है। साधारणीकरण के अन्तर्गत हम श्रीराम को मानवमात्र के रूप मे, तथा देवी पार्वती की रति को मात्र कान्ताभाव के रूप मे निष्कृत करते है। किन्तु 'कामायनी' मे मनु, लज्जा, आशा, काम, श्रद्धा आदि का पात्रत्व स्वयमेव ही साधारणीकृत है। अत. इन अमूर्त एव साधारणीकृत पात्रों के साधारणीकृत भावो को कथासृष्टि मे पुन अभिधा-व्यापार मे (पीछे लौटाकर) सचारित किया गया है। इसलिये साधारणीकरण-प्रक्रिया का क्रम-विपर्यय सा हो जाता है। हमे एक 'दुहरे साधारणीकरण' की-सी दशा का सामना करना पड़ता है ('रसदर्शन' सम्बन्धी अध्याय मे हमने इस पहेली पर विचार किया है)। अतएव प्रतीकात्मक प्रवृत्ति वाले इन पात्रों मे यह अनूठा साधारणीकरण सर्वांगीणता एव परिपूर्णता एव वैभवता के आधारो पर उभरता है।

तो, सहृदयबोध की इन चार भूमिकाओ मे प्रतिष्ठित होकर सहृदय और कवि दोनो का ही आविर्भाव हुआ है। इसीलिये कुतूहल और उद्भिन्नता आद्योपान्त व्याप्त है। इस सहृदय-बोध का रहस्य (बाद) यही है जो 'कामायनी' मे व्यञ्जित हुआ है। इसीलिये तन्मयीभवन तथा तादात्म्य के प्रसगों मे 'मधुविभ्रम' छा गया है।

*इन बोधो के स्वरूप के साथ हम कवि के संसार का पुनर्निर्माण कर सकते है।

सबसे पहले एक उलझा हुआ संसार उपस्थित होता है। जब प्रमाद करने

अधिकांश कृतित्व मे आनन्दवादी के रूप में उपस्थित होते हैं ? 'कामायनी' में अवश्य उनकी दार्शनिक चिन्ता आनन्दवाद मे परिणत हुई है । किन्तु क्या यह बात 'आँसू', 'लहर', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' 'ध्रुवस्वामिनी' पर भी लागू हो सकती है ? क्या प्रसाद का आनन्दवादी जीवनदर्शन उनकी अन्य रचनाओं में भी मिलता है ? हमे नाटक के सुखान्तफल और दर्शन के आनन्द के बीच के अन्तर को ध्यान मे रखना होगा । इस नजर से तो प्रसाद के जीवन दृष्टि-कोण मे करुणावादी एवं नियतिवादी धाराएँ मिलती हैं। 'कामायनी' मे भी आनन्दवादी दृष्टि का विनयन अंतिम तीन सर्गों में हुआ है । इसलिये हमें कवि के प्राथमिक बोध की तलाश मे गम्भीर होना पड़ता है । किन्तु हम मार्गान्वेषण कर सकते है । कामना की तृप्ति एकघूंट से ही हो सकती है, और तृष्णा का उदात्तीकरण करुणा मे हो सकता है । प्रसाद के छोटे-से जीवन की बड़ी कथा का प्रतीक यही है । प्रेमपथिक का वह पथ जिसके आगे राह न बचे, प्रेम-यज्ञ मे स्वार्थ और कामना का हवन करना (श्रद्धा भी मनु के एकांत स्वार्थ को भीषण बताती है), मधुर चाँदनी रातों की उज्ज्वल गाथा मे सोई हुई कवि की मौन व्यथा, आलिंगन मे आते-आते मुसक्या कर भाग जाने वाला सुख, हृदय मे झंझा झकोर गर्जन तथा नीरदमाला एवं बिजली द्वारा डेरा डाल लेना, पुल्लिंग बोधक 'आँसू' की प्रिया की छाया का 'श्रद्धा' और 'वासना' सर्ग मे झिलमिलाते रहना आदि—ये सब सकेत कवि के अपने क्षणवाद, करुणावाद और नियतिवाद की भूमिकाएँ रचते हैं जिन्हें वह अपने अध्ययन और आस्था के कारण शनैः शनैः बौद्ध, शैव एवं योग दर्शनो से गम्भीर बनाता गया है। कवि ने 'नियति' को नटी के रूप मे लिया है और एक नाटककार के नाते उसके अभिनय अर्थात 'लीला' का विस्तार किया है , अपनी रोमांटिक व्यथा तथा अपूर्ण आकांक्षा और (संभवतः) अतृप्त प्रणय के दुःख को उन्होने बौद्धों के दुःखवाद तथा छायावादी काव्य में ढाल दिया है । प्रसाद अपने काव्य मे नियतिवाद के प्रति केवल नाटकीय द्वन्द्व की दृष्टि से ही प्रतिबद्ध रहे हैं जहाँ वे आकस्मिक परिवर्तन, संयोग आदि के तकनीकी प्रयोग करते हैं । कामायनी' में तो नियति शब्द ही केवल तीन चार बार आया है । अतः यह उनकी दार्शनिक प्रतिबद्धता न होकर एक नाट्यशिल्पविधि के रूप मे ही रही है । अगर नियतिवाद को खोजा ही जाए, तो उसमें से ही योग, वेदान्त, सांख्य, लोकायत, शैव आदि सभी दृष्टियाँ भी खोजी जा सकती हैं । अतएव कवि के नियतिवाद का बोध अवश्यम्भावी निश्चय अथवा अप्रत्याशित परिणतियाँ हैं जो उ

नाट्यविधान में प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं । हाँ, मूल तत्व है उनका वेदना का बोध । उनका यह बोध स्वानुभूत है । इसलिये उनके सौंदर्य में भी करुणा है, प्रणय में भी दुःख है सुख में भी अभाव है, तथा मिलन में भी व्यथा है । इस तरह छायावादी करुणा, दुःख, अभाव और व्यथा की अन्तर्धारा ही क्षतिपूर्त होकर स्वप्न, कामना, इच्छा, श्रद्धा, मधुरता, उल्लास, चपलता, हँसी, में रूपांतरित होती है । "कामायनी" में जितनी बार 'आँसू' का प्रयोग हुआ है, उससे अधिक ही 'हँसी' का प्रयोग हुआ होगा । इस काव्य में कवि ने नियति को 'प्रकृति' में स्थानान्तरित कर दिया है । अतः नियति की लीला एवं क्रीडा के साथ, प्रकृति की छाया एवं माया भी लय हो गई है । इसीलिये लीला और क्रीडा, छाया और माया का जाल 'कामायनी' को नृत्य ताल में स्पंदित कर देता है । यही कवि का वेदनात्मभूत नियतिवादी-वेदनावादी - प्रकृतिवादी बोध है । प्रसाद के बोध की यह आधारभूमि है । यही प्रसाद का मौलिक आमूल छायावादी बोध है ।

छायावादी बोध के अन्तराल में— और उसके समानान्तर–शास्त्रीय या क्लासिकल बोध का भी उदय हुआ है । पाश्चात्य परम्परा में यह क्रांति के पर्यावरण में विकसित हुआ था लेकिन हमारे देश में दासता की पीडा और विघटित सामाजिक जीवन के बीच उल्का-सा सुलग उठा था । प्रसाद ने छाया-वादी सृजनात्मकता के तत्त्व को शास्त्रीय और स्वर्णकालीन लोकों के सांस्कृतिक अन्वेषणों से जोड दिया । उनके लिये भारत के अतीत के स्वर्णकाल ऐतिहासिक यथार्थ बन गये, और उन्होंने उन युगों की कलावादी एवं सांस्कृतिक व्याख्या की । कवि ने अपने समकालीन समाज की तुलना में अपने नाटकों में इन प्रारूपों (models) की कलात्मक रचना की । अतः प्रसाद ने हर्षवर्धन, स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, चन्द्रगुप्त मौर्य का जो अपना बिंब रचा, वह ऐतिहासिक बिम्ब से काफी भिन्न भी था । इस बिंब में उन्होंने चरित्र-चित्रण, समस्याओं, और देशकाल की अपनी दृष्टियाँ पेश की । अतः इतिहास के उनके बिम्ब ऐतिहासिक रोमांस की ओर अग्रसर होते गये । उन्होंने इनके आधार पर मान-वता के एक उज्ज्वल एवं वरदानी भविष्य की घोषणा भी । 'कामायनी' में इस घोषणा का ही अमूर्तीकरण हुआ है जिसमें कवि ने वैदिक प्रारूप तथा आधुनिक प्रारूप को प्रस्तुत करने के बाद शैव प्रारूप एक साधक का प्रारूप है । यही प्रसाद की शास्त्रीय चेतना की फिसलन है । 'कामायनी' को उन्होंने महाकाव्यात्मक चरित्र से मंडित कर के अन्ततोगत्वा समाज, समूह, जगत और यथार्थता का अतिक्रमण कर डाला । अतः अन्त में हम फान्तासियों, स्वप्नों, दिवास्वप्नों और

यूतोपियाओ को जगरमगर करती काल्पनिक दुनियाएँ पा जाते हैं। ये वायवीय और दार्शनिक और मध्यकालीन भित्ति पर सधी हैं। इनमे वर्तमान को नामन्जूर किया गया है, तथा अतीत से भविष्य की ओर पलायन किया गया है। सामाजिक एव राजनीतिक परिवर्तनो की सभावना पर इस बोध के अन्तर्गत चुप्पी ही परिलक्षित होती है। कवि ने इस क्लासिकल बोध के द्वारा एक परिपूर्ण मानवता तथा एक सपूर्ण मनुष्य का आदर्श देना चाहा है। कवि ने इस बोध को 'विश्वचेतना' नामक अध्यात्मवादी ऐतिहासिक सिद्धान्त से भी मडित करना चाहा है।

कवि के इस चेतनाबोध के केन्द्र मे विश्वात्मा की एक आध्यात्मिक धारणा विद्यमान है जिसके अनुसार विश्व और मानव, दोनो ही 'आत्मा' के अभिन्न अग है। आत्मा प्रकाशरूप है और प्रकाश ही चैतन्य है। चैतन्य का स्वभाव आनद है, और आनद का स्वभाव उल्लास। इस तरह विश्व चेतना और आत्म चैतन्य अभिन्न है। मध्यकालीन चिंतन के अंतर्गत मनुष्य के सीमित सुख तथा सीमित ज्ञान से परे शाश्वत सुख और असीमित ज्ञान की धारणा की रचना मे जीवन के ऊपर आत्मा का, तथा जगत के ऊपर परलोक का आरोप किया गया। इस पर एव परा चेतना के मध्यकालीन आरोप का लक्ष्य था देश काल-कला-राग-विद्या से विमुक्त धारणाओ की रचना। अतएव सुख का रूपातर आनद मे, तथा ज्ञान का रूपान्तर चैतन्य मे हुआ। 'कामायनी' मे हुए यज्ञ के सुख का रूपातर त्रैलोक्यऐकीकरण के आनद मे पाते हैं। 'महाकाव्य' मे इस चेतनाबोध के दो धरातल हैं। एक के अतर्गत आलस चेतना, इद्रियो की चेतना, जागरण, अलस चेतना, शिथिल चेतना, अचेतन आदि की चेतन-अवचेतन, स्वप्न-तद्रामूलक दशाएँ पाते हैं जो अवचेतन की कुहेलिका, तथा मधुरता-मादकता की तल्लीनता को लक्षित करती है। दूसरे धरातल के अन्तर्गत यह चेतना शैव एवं वेदात दर्शनो मे मडित 'चैतन्य' (चिति,)या परमशिव तत्व, या आत्मज्ञान है। मनु के ऐतिहासिक चरित्र तथा प्रतीकात्मक अभिव्यजना के कारण भी ये दो धरातल घुलमिल से गये हैं। अत. सहृदय-बोध मे प्रेषणीयता के हेतु बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। कवि तो यत्रतत्र चेतना एव चैतन्य के पटल बदल देता है, किंतु सहृदय-बोध मे ये रसविघ्न हो जाते हैं।

उपर्युक्त तीनो बोधो के आधारो पर कवि का आधुनिक बोध अपने कई अंतर्विरोधों के साथ उभरता है जिसके कुछ आधार हैं। स्वयं कवि के अनुसार यथार्थवाद का मूल भाव वेदना है। कवि ने वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति करने के स्वभाव को तो ग्रहण कर लिया है, लेकिन अनुभूति

मे आगे चिंतन के क्षेत्र मे कवि यथार्थवाद के इस आधार को अस्वीकृत करके आदर्शवाद के आनद की प्रतिष्ठा करना चाहता है । कवि के अनुसार वास्तविकता का स्वरूप महत्व एव लघुत्व के सीमांतो के बीच है-लेकिन वह स्वय 'कामायनी' मे लघुत्व का तिरस्कार करता है । कवि कहता है कि सामूहिक चेतनाके छिन्न भिन्न होने पर पीडा होती है, और इसकी अभिव्यक्त वेदना करती है । लेकिन यथार्थवादी वेदना का आधार अभाव पतन, लघुता, रूढ़ि आदि के सामाजिक यथार्थ एव सामाजिक कारणो की छानबीन भी है । यथार्थवाद में पतन, स्खलन एव दुर्बलता के कारण की खोज मे सामाजिक अवस्था तथा व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था को पकडा जाता है । लेकिन कवि सामाजिक अवस्था और मनोवैज्ञानिक अवस्था का ही अतिक्रमण करके आध्यात्मिक जगत तथा रहस्यात्मक मनोदर्शन का आहरण करता है । फलतः उसके आधुनिक बोध के अतर्गत मानवीय मनोविज्ञान मे विषमता है तथा समाज मे अभिशाप एव पतन । फलत सामूहिक पीडा की व्यापकता की अपेक्षा व्यक्ति की वेदना की मधुरता छा गई है, और इच्छा-क्रिया-ज्ञान के सामाजिक अभियोजन (Social Adgustment) की अपेक्षा तात्विक ऐकीकरण हो गया है । इसी वजह से जो शक्ति के विद्युत्कण श्रद्धा सर्ग मे कर्म द्वारा समन्वित होने का सदेश पाते हैं, वे सघर्ष मे पूँजीवादी उत्पादन एव शोषण की शक्ति बनने के उपरात सामाजिक शक्ति नही रह जाते, बल्कि शैवाद्वैत वादी 'शक्ति' के रहस्यवाद मे बदल जाते हैं । अत सघर्ष सर्ग के बाद से आधुनिक पर्यावरण तुरत शैव परिवेश मे उलझ जाता है । इसी तरह मन ही महाशक्तिशाली हो जाता है लेकिन मनु (समाज) तथा प्रकृति (पदार्थ) नितात क्षीण । इसी तरह अततः आनद ही ब्रह्म हो जाता है । कवि के आधुनिक बोध के अतर्विरोध हैं । अत· अपनी विचार धारा (Ideology) की भूमि पर कवि ने स्वप्न एव सघर्ष सर्ग मे व्यक्ति बनाम समूह, स्वतत्रता बनाम व्यवस्था, शोषण बनाम क्राति की आधुनिक समस्याओ पर जो स्वप्न दृष्टियाँ प्रस्तुत की हैं, उन्हें हम क्यो स्वीकार करें ? कारण स्पष्ट है । एक ओर तो कवि इन दृष्टियो मे देव-दानव द्वद्व वाला सरल मिथकीय फार्मूला लागू करके आधुनिक पूँजीवादी समाज का विश्लेषण करता है, तथा दूसरी ओर प्रजा के विप्लव की शक्ति को मात्र ध्वसात्मक मानता है । द्वद्वात्मक भौतिकवाद और वैज्ञानिक समाजवाद के दर्शन इन दोनो धारणाओ मिथ्याजाल को उधेड चुके हैं । कवि व्यक्तिबोध के आधारो पर तो चोट करता है (कर्म सर्ग के अतर्गत सुख बनाम स्वर्ग, एव हिंसा बनाम

कल्पना पर विचार) लेकिन भावात्मक दर्शन में व्यक्ति-वादी दर्शन के कुहर में बँधा रहता है। इसीलिए कवि का आधुनिक बोध सम-सित, मध्यकालीन मान्यताओं से दूर, तथा परिवर्तनशील है। और, इसीलिए वह पुराण चेतना के बोध में विश्राम ढूँढ लेता है जहाँ सामाजिक परिवर्तन की चुनौतियाँ नहीं है। वहाँ समरसता है, वहाँ शैवों का आनंद लोक है, वहाँ शिव और शक्ति हैं, वहाँ प्रकृति और पुरुष हैं। क्या हम इस दार्शनिक मध्यकालीनता-वाद को ही आधुनिक समाज और आधुनिक मनुष्य का श्रेय मान लें? यह असंभव और गलत है। सहृदय-बोध की दृष्टि से साधारणीकरण के लिए यह बहुत महँगी कीमत है। साधारणीकरण पूर्णरूपेण उन्हीं नाट्य दर्शकों के बीच होता था जिनकी नैतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचारधाराएँ एकत्रीकृत होती थी। उन समूहों में नाटककार तथा प्रेक्षक की आस्थाएँ भी एक जैसी होती थी। 'कामायनी' के सामाजिक एवं दार्शनिक संदर्भों में बहुधा इस एकान्विति की कमी है। इसीलिए कर्म सर्ग के बाद के संपूर्ण खंड के विषय में आधुनिक विचारक तथा धार्मिक अध्येता, दोनों ही असफलता, नीरसता, पला-यनवाद, रसभंग, आधुनिकताविरोध, दार्शनिक कनफ्यूजन आदि के आरोप करते हैं। वास्तव में संघर्ष सर्ग तक यह कृति परिपूर्ण हो जाती है। बाद के निर्वेद सर्ग में तो बेहद मामूली क्षमता दिखलाई पड़ती है। और, अंत के तीनों सर्ग कृति के महाकाव्यात्मक चरित्र से बिलकुल अलग अलग हैं, इनमें नये नाथ एवं सिद्ध सम्प्रदायों की अटपटी अनुकृति ही अधिक हुई है।

● उपर्युक्त चतुर्बोधों के आधार पर हम प्रसाद के सृजनात्मक कार्य (Creative act) की प्रांजल गरिमा को समझ सकते हैं। प्रसाद ने जातीय मिथकों, राष्ट्रीय नायकों तथा सांस्कृतिक स्वर्णयुगों का एक निखिल विश्व रचा है। इतनी विपुल और विराट् सृष्टि के अन्वयन के उपरान्त उन्होंने अमूर्त प्रतीकों के माध्यम से मनुष्य के इतिहास तथा इतिहास के दर्शन (Philosophy of History) का विधान निर्मित किया है। इसलिए 'कामायनी' में घटनाओं और चरित्रों के बाह्य एवं स्थूल एवं ऐतिहासिक स्वरूप विलीन हो गये हैं, और उनके स्थान पर अनुभूतियाँ (चरित्र), सत्य (घटनायें) तथा भाव (समस्यायें) प्रतिष्ठित हो गये हैं। इतिहास का इतना व्यापक प्रतीकीकरण, समाज का इतना सूक्ष्म अमूर्तीकरण और मनुष्य का इतना गूढ़ रूपकत्व हमें कवि के मानसिक विकास के चरमोत्कर्ष से परिचित कराता है। यहाँ इतिहास 'सृष्टि' हो गया है, ऐतिहासिक परिवर्तन 'लीला' एवं 'छाया' बन गये हैं, चरित्र

[illegible] है [illegible] है। इन वैभव [illegible] [illegible] [illegible] उपलब्ध होती है। [illegible] के [illegible] विराट स्वरूप का [illegible] स्वरूप है जिसके [illegible] है। [illegible] जिस आदर्श समाज की [illegible] है, जिसमें [illegible] नहीं है, [illegible] है, [illegible] है [illegible] है, जहाँ विश्वकल्याण [illegible] है। [illegible] जिस विश्व मानवता का [illegible] और करुणा का, श्रद्धा और विश्वास का सौंदर्य और माधुर्य का समन्वय है। वे मानव की धारणा में [illegible], [illegible] और दृढ़ता के आधुनिक आयामों के प्रति [illegible] है। [illegible] उनका [illegible] 'कामायनी' में-सृजनात्मक कार्य रही है।

यह सृजनात्मक कार्य 'कामायनी' में-उनकी सृजन-प्रक्रिया (Creative process) का भी पाश्चित्रिक (panoramic) दृश्य उपस्थित करता है।

कवि सृष्टि बीज बिन्दुओं के इर्दगिर्द कथा-अकुरों को प्रस्फुटित करता है। पहले प्रकृति और नियति और प्रलय के बीज-बिन्दु हैं, बाद में यज्ञ, कर्म और काम बीज-बिन्दु उभरते हैं, फिर वासना, रति और लज्जा के, फिर उदासी और संघर्ष के, फिर सुख और आनंद और प्रकाश के इत्यादि। (विस्तार के लिए देखिए 'रूप-स्वरूप महाकाव्य अथवा महानकाव्य' शीर्षक अध्याय)।

इस कथासृष्टि में कवि स्वयंप्रकाश्य क्रियात्मकता (intuitonal activity) में लीन है। इसलिए अवचेतन और तन्मयता के बोधक शब्दों की भरमार है। इस क्रियात्मकता की खोज का उन्मीलन 'कौन', 'क्यों', 'कहाँ', 'कैसे' जैसे प्रश्नवाचक संबोधनों में विद्यमान है जो संपूर्ण काव्य को गूँथते हैं। ये प्रश्न नए नए मानसलोकों और सृजन-पथों में यात्रा कराते हैं। इन प्रश्नों के अन्तराल में अवचेतन सृजनात्मक दशाएँ ही झिलमिलाती हैं। रजनी के पिछले प्रहर, नीरव निशीथ, गोधूलि, अलस चेतना, तन्द्रा, स्वप्न, अलसाई वेला, मदिर माधवी गन्ध, माधवी निशा की अलसाई अलकें, दुर्बोध नील-आवरण, दूर बजती हुई वंशी आदि सृजन के अवचेतन उद्‌बोधक (Unconsci [illegible] के रूप में संकेतित हुए हैं। कवि को नीले और लाल, [illegible] और चमकीले रंगों का जादू मंत्रमुग्ध करता है। यह

पर्ण-उद्दीपन अवचेतन से चेतन में छलांग लगाने की सृजनात्मक प्रक्रिया ही जो रंगों के मनोविज्ञान से समर्थित है। सृजन की उपलब्धि के पहले तथा बाद के क्षणों को भी कवि ने 'छाया' — 'माया', लीला— सृष्टि, सौन्दर्य-आनन्द के प्रत्ययों द्वारा अभिव्यक्त किया है। कवि के अन्तर्लोक में इन्हीं सूक्ष्म सूत्रों के आधार पर पैठा जा सकता है।

कवि ने स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति—'पुलक' और 'तड़प' की अभिव्यक्ति —के लिये रूपकात्मक भाषा ((metaphorical Language) का विधान किया गया है। अत: यह भाषा अभिधा के धरातल पर बहुत कम उतर पाती है; अनुभूति एवं संवेदना की अनिर्वचनीयता को अभिव्यंजित करने का प्रयत्न करती है तथा, अर्थों से अधिक अन्तर अर्थ वैचित्र्य को प्रकाशित करती है। यह भाषा (स्वयं कवि के शब्दों में—) 'सौंदर्यमय प्रतीक विधान' वाली होती है। इस भाषा को वाच्यवाचक-भाव, लक्ष्य-लक्षक-भाव तथा व्यंग्य-व्यंजक-भाव के न्यायों का संक्रमण करना पड़ता है। इस भाषा की इकाई शब्द नहीं, 'बिंब' है। अतएव वह काव्यभाषा कला की भाषा (Language of art) भी है। इस भाषा की प्रकृति मंत्र एवं छन्द से संयुक्त है। श्रद्धा, काम, लज्जा, रहस्य आदि सर्गों में इसका वैभव विशेषरूप से निखरा है। रहस्यात्मकगूढ़ अनुभवों के लिए रूपकात्मक एवं विरोधाभासात्मक भाषा का प्रयोग होता है। 'कामायनी' की भाषा ऐसी है——सृजनात्मकता का नवो—मेष करने वाली।

अत: कवि के ससार की सघटना इस ढंग की है।

● कवि का मनोलोक पहचानने के लिए भी कुछ मनोवैज्ञानिक संकेत प्राप्त हो जाते है। हम उन्हे प्रस्तुत करने की कोशिश करेंगे।

मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगो द्वारा सिद्ध किया है कि स्वप्न और कविता, दोनों का ही तानाबाना कल्पना द्वारा बुना जाता है—पहले मे साधारण बोधात्मकता और दूसरे में परिष्कृत बोधात्मकता के साथ किसी कवि की कल्पना के विश्लेषण के लिए बाल्यकालीन संस्मरणों का ज्ञान अत्यन्त अपेक्षित होता है। ये बाल्यकालीन प्रभाव ही सर्वोत्तम और अत्यन्त प्रेरक होते हैं, यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। ये ही 'चेतन के मुक्त प्रवाह' के कुछ खडों की रचना करते हैं तथा जीवन पर्यन्त कृतियो मे बार-बार दुहराए जाते हैं। ये अतीत और वर्तमान के भी सगम होते हैं। दुर्भाग्यवश प्रसाद की बाल्यकालीन स्मृतियों का ज्ञान नही के बराबर है। किशोरावस्था की कुछ याददाश्तो और रचनाओं के क्रमिक विकास के द्वारा इसकी आंशिक पूर्ति की जा सकती है। बार बार

'निराला' ने भी 'तुलसीदास' के जीवन के नान मोड़ के साथ समरूप कर दिया जिससे तुलसीदास के मानसी-द्वंद्वों के माध्यम से उन्होंने स्वयं को ही यथेष्ट सीमा तक प्रस्तुत किया। प्रसाद 'लहर' जैसी शुद्ध व्यक्तिवादी रोमांटिक कृति में भी तीन ऐतिहासिक आख्यानों द्वारा बहिर्मुखी हुए। वस्तुतः 'आँसू' की स्थिति के खिंचाव-तनाव के अतिरेकपूर्ण संकट से वे निकलना चाहते थे। अतएव पहले वे हिमगिरि के एकांत में मनु से सुर-श्मशान का साधन कराते हैं, फिर अपने अन्तर्द्वंद्वों के अनुरूप ही जलप्लावन का प्रलयंकर चित्र उपस्थित करते हैं। बाह्य जगत के जीवन में पहला पदार्पण कामायनी का मधु गुंजार सुनने पर होता है। उपर्युक्त स्थापना में 'प्रसादवादी-विवेक' की एक मूल शिला स्थित है। अंतर्मुखी तनावों से मुक्त होने के लिए ही वे प्रकृति की ओर ध्यानस्थ हुए हैं। इसीलिए अब 'मधुप', 'वीणा', 'हँसते-मुसकयाते सुमन', 'जग', 'मार्ग' आदि बहिर्मुखीनता के प्रतीक हो जाते हैं। यद्यपि इनमें सौष्ठव और व्यवस्था का अभाव अभी भी रहता है और अभी भी ये 'मौन', 'तुमुल कोलाहल', 'अँधेर', भीड़ से आक्रांत है।

इसी दिशा में एक दूसरा संकेत किया जा सकता है। 'लहर' की तीन आख्यानक रचनाओं के समय के बाद से कवि प्रसाद में जीवन को दुबारा खोजने की उद्विग्न इच्छा आंदोलित होने लगती है और इसी काल में मदिरा के मूर्तिविधान नाना रूपों में विशेष ढंग से चित्रित होते हैं। 'मधुप', 'पराग', 'आसव', 'मधु', 'प्यास', 'एक घूँट' आदि सभी जीवन को दुबारा खोजने की इच्छा-आकांक्षाओं को व्यक्त करते हैं। उनके आरंभिक एकांकी 'एकघूँट' में स्वास्थ्य, सौंदर्य और भोलेपन का प्रतीक एक घूँट प्रेम, आनंद और सौंदर्य को 'प्रसादवादी' दृष्टिकोण का विशिष्ट आधार बना देते है और आनंदावस्था को की चरम परिणति में पहुँच जाते हैं। यह आनंदवादी अभिव्यक्ति भी उनकी परिणत बहिर्मुखीनता का ही परिणाम है क्योंकि 'आँसू' तक इसके या शैवदर्शन के स्पष्ट संकेत नहीं मिलते, तब तक करुणा और बौद्धों का क्षणिकवाद और सूफी पद्धति की रागोन्मत्त प्रेमवृत्ति प्रभावशाली रहती है। परंतु 'लहर' में मानस की लघु लहरी के रूप में यह दुःखमय बाह्यजगत का आनन्दमय अंतर्जगत से मेल कराती है और 'सूखे तट', 'विरस अधर' को चूमती हुई ठहर ठहर' कर 'छिटक छहर' जाती है। 'कामायनी' में यही 'लघु लोल लहर' 'आनंद-अंबुनिधि, में विराट प्रतीकत्व पा जाती है।

किंतु इस 'मानस-लहर, का एक अन्य अंतर्मुखी पक्ष है जो करुणा की तरंग बन कर दुःखवाद और नियतिवाद का परिवेष्ठन स्वीकार करता है।

इसके पीछे पुनः बाल्य-स्मृतियाँ जुड़ी हैं। उनके किशोर मस्तिष्क पर बारहवें वर्ष मे पिता, पन्द्रहवें मे माता और सत्रहवे मे ज्येष्ठ भ्राता के निधन, दो पत्नियों के वियोग ने तथा विधवा भावज की करुण मूर्ति ने स्थायी प्रभाव डाला। वे अतर्मुखी प्रकृति के तो थे ही। अतः अपने वातावरण से व्यवस्थित होने के लिए, उन्होने एक वैयक्तिक दृष्टिकोण, धार्मिक दर्शन और समन्वयवादी विश्वसिद्धात को ग्रहण किया। कार्ल युग ने अतर्मुखी व्यक्तियो के लिए सामाजिक व्यवस्था (सोशल एडजस्टमेंट) के हेतु तीन उपर्युक्त मार्ग ही सभावित माने है। इसीलिए इनमे बौद्धो का दु खवाद, शैवागमो का आनदवाद तथा वैयक्तिक प्रेम-माधुर्य का सगम सा मिलता है। करुणा और आनन्द के इतने विरोधी मानसिक द्वद्वो के चित्रण से प्रतिष्ठित हिंदी के वे विरले कवि हैं। इतने मधुर द्वद्वो और अतर्मुखीनता के कारण केवल वे ही ऐसे छायावादी कवि हैं जिन्होने इतने व्यापक पटल पर किसी पौराणिक गाथा (मिथ) का पुनर्विधान किया है।

अस्तु, किसी कवि के दृष्टिपटल को पूर्णत. समझने के लिये हमे उसकी वैयक्तिक प्रतीकात्मकता (पर्सनल सिबालिज्म) का अनुशीलन भी मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से करना चाहिए। इन वैयक्तिक प्रतीको के साथ कुछ द्वद्व सलग्न रहते हैं जो शैशवावस्था से ही इनमे विशेष अर्थ भरा करते हैं। इन प्रतीको के बिबो का उद्गम खोजने पर हम कवि की कल्पना और दृष्टि को पहचान सकते है, लेकिन यह सदा ध्यान रखना होगा कि यह प्रतीकात्मक झूठ नही होती बल्कि विभिन्न विकासो और अवस्थाओ मे निरतर घटती बढती रहती है। इन प्रतीको द्वारा कवि के विकास का आतरिक ज्ञान हो सकता है यदि किसी नियम मे बाँधकर इन्हे न जाँचा जाय जैसे, 'आनन्दलोक' का उद्गम प्रेम मे सौंदर्य और स्वाम्य्य के प्रतीक 'एक घूँट मे' मानसरोवर (के प्रतिबिबित जल) का उद्गम नार्सीसस से सलग्न आत्मरति की शैशवकालीन प्रवृत्ति मे, मानवीकृत लज्जा के आत्मवर्णन का उद्गम उषा के कपोलो पर लज्जा की लाली मे, नर्तित नटेश के समुग्ध अनहद सगीत का उद्गम मँडराते हुए आनन्दसिक्त मलिन्दो के गुजार मे मिल सकता है। नि सदेह उन्होने अपनी मौनवृत्ति को एक भव्य सास्कृतिक उदात्तीकरण प्रदान किया है। यौवन की मादकता और प्रेमचर्या की शारीरिक चेष्टाओ की रगरेलियो को इन्होने साहसिक सयम के साथ अभिव्यक्त किया है यद्यपि इनकी मधुमयी प्रवृत्ति' अर्थात् 'प्रेम-विलासमय मधुर पक्ष की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति' बार बार झलक पड़ी है। आचार्य शुक्ल तक ने प्रसाद की इस प्रवृत्ति के मर्म मे पैठकर अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' मे लिखा है कि "इसी मधुमयी प्रवृत्ति के अनुरूप प्रकृति के अनत क्षेत्र मे भी कल्परियो के दान, कलिकाओ की मद मुसकान,

सुमनो के मधुपात्र, मँडराते मलिदो के गुजार, सौरभहर समीर की लपक झपक, पराग की लूट, उषा के कपोलों पर लज्जा की लाली, आकाश और पृथ्वी के अनुरागमय परिरंभ, रजनी के आँसू से भीगे अंबर, चद्रमुख पर शरदघन के सरकते अवगुठन, मधुमास की मधुवर्षा और झूमती मादकता इत्यादि पर अधिक दृष्टि जाती है। ये अधिकाश चेष्टाएँ और व्यापार 'कामायनी' मे प्रसारित हुए हैं। इस मधुमयी प्रवृत्ति पर अवचेतना का झीना आवरण बार बार आए 'मद' 'तद्रा', 'अलसता', 'स्वप्न' 'असज्ञा की दशा' जैसे शब्दों द्वारा खुल जाता है।''

संमूर्तन (इमेजरी) भी अवचेतन की प्रमुख देन है। यदि हम 'कामायनी' में वर्णित केवल श्रद्धा के सौदर्यवर्णन के बिंबो का ही मनोविश्लेषण करें तो प्रसाद की कल्पना और अवचेतन के कई स्रोत फूट पड़ते है। इस प्रकार के वैयक्तिक एव सौंदर्यबोधात्मक प्रतीक विधान मे प्रज्ञा और प्रभा का कान्त सयोग हो जाता है। इस पद्धति मे कवि एव काव्य, दोनो ही विश्लेषण के पात्र हो जाते है। उदाहरणार्थ इसी वर्णन मे चद्रिका किसी कामिनी का, बिजली उत्तेजना का, ज्वालामुखी तरल वासना का, उषा सरल अकुरित यौवना का प्रतीक हो गई है। बाद मे, ये ही प्रतीक अन्य अर्थों का वहन करने लगते है जैसे कि वासना सर्ग मे दो बिजलियों का युगल अतर्द्वंद्व का, चंद्रिका रम्य और शोभाशालिनी नारी मूर्ति का प्रतीक हो जाती है। सपूर्ण कृतित्व में बिंबो की यही लीला, तथा सौंदर्य की यही छाया, और भावो की यही माया परिव्याप्त है। यही कवि का स्वयप्रकाश्य (intuitional) सौंदर्यबोधात्मक (aesthetic) एव अतर्मुखी (subjective) ससार है।

रूपकात्मक भाषा मे ही हम भी कह सकते हैं कि कवि के छायावादी बोध के अनुकूल यहाँ सहृदय-बोध की भी कुछ विलक्षणतायें हैं। इन्हीं विलक्षणताओ से 'कामायनी' का अभिषेक हुआ है जिसके हृदय में 'माधुर्य महाभाव या आनन्दोज्ज्वल नीलामणि' दमक रहा है (इसमे प्रत्येक शब्द के सदर्भात्मक अर्थ हैं)।

[पुनश्च . इस अध्याय की विचार वस्तु की अगली प्रस्तुता के लिये 'मिथक मे स्वप्न की ओर प्रयोग' शीर्षक अध्ययन के अतर्गत आत्मपरीक्षणरति एव चेतना-प्रवाह के प्रसग अवश्य देखें।]

++++++++

४ | सौंदर्यबोधात्मक काव्यगुण

एक आगामी अध्याय मे 'कामायनी' मे इतिहासदर्शन (Philosophy of History) का निरूपण करने मे हम एक विचित्र स्थिति पाएँगे। कवि का इतिहास-दर्शन ही इतिहास के सौन्दर्यबोधात्मक दर्शन (Aesthetic Pilosophy of History) मे रूपान्तरित हो जाता है।

इस सौदर्यबोधात्मक दर्शन की भूमि मे रोमांटिक वेदना वाला छायावादी दर्शन तथा शक्ति एव सौंदर्य की उपासना वाला आनंदवादी (शैव) दर्शन प्रतिष्ठित हैं। प्रबन्ध काव्य मे प्रकृति और सृष्टि की इकाई 'अणु' है। यहाँ सौदर्यतत्त्व की इकाई भी अणु की बिवसृष्टि है। हम इसे 'शब्दबिंब' कहेंगे क्योंकि इसमे काव्यशास्त्र एव सौदर्यबोधशास्त्र का सामजस्य हो सकता है। शब्दबिब की इकाई ऐंद्रियिक चेतना की उपज है।

कवि ने प्रकृत 'रमणीयता', मानवकृत 'सौंदर्य, तथा सौदर्यबोधात्मक 'चचल सुन्दरता', 'मतवाली सुन्दरता', 'शोभा' और 'छाया' आदि का भी विधान किया है। यह कवि सपूर्ण सौन्दर्यबोधात्मक मानक सारणी (aesthetic range। है। इसके बोध के लिये कवि ने 'कुतूहल' 'छाया' एव माया जैसे शब्दो का व्यवहार किया है। अत 'कामायनी' के सौदर्यबोधात्मक काव्यगुणो का सारत्व यह है।

प्रसाद ने काव्य को मन (आत्मा) की सकल्पात्मक अनुभूति माना है जो मूल है। यह मूल ही मूलशक्ति और अनादि वासना या रति भी है। यह मूलशक्ति प्रकृति की शक्ति है (वह मूलशक्ति उठ खड़ी हुई अपने आलस का त्याग किये), और मनुष्य की प्रमोदात्मक रति भी (जो आकर्षण बन हँसती थी रति थी अनादि वासना वही)। मनुष्य में यह अनादि वासना मधुर प्राकृतिक भूख के समान जो मिलन के लिये उद्विग्न, और यही उन्माद वेष्टित होकर 'तरल वासना' मे रूपान्तरित हो जाती है (जाग उठी थी तरल वासना मिली रही मादकता)।

आकर्षण और मिलन के द्वारा ही सृष्टि बनती है । इस सृष्टि की माया में मतवालापन होता है (यह आकर्षण यह मिलन हुआ प्रारम्भ माधुरी छाया में, जिसको कहते सब सृष्टि, बनी मतवाली अपनी माया में) । इसी चेतन एवं माधुरी छाया में रची गई सृष्टि से उसके वरदान स्वरूप सौंदर्य का निर्माण होता है (उज्ज्वल वरदान चेतना का सौंदर्य जिसे सब कहते हैं), और उसी छाया का रमणीय रूप 'मतवाली सुन्दरता' बनता है (मतवालीसुन्दरता पग में नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ) । इस भांति प्रकृति रमणीयताकुतूहल की माया में लिपटी है, मानवीय सुन्दरता मतवालेपन की छाया में झिलमिलाती है, और नारी-सौंदर्य को लज्जा लावण्य में बदल देती है ।

इन सभी सौंदर्यबोधों एवं सौंदर्य रूपों की 'सृष्टि' या 'रचना' प्रातिभ (intuitional) है । इनकी सृजनात्मकता के मूल में कालिदासीय अबोधपूर्वा स्मृति है जिसे कवि ने अनादि वासना कहा है, और इनकी प्रक्रिया 'लीलापूर्ण' है । इस लीला में आनंद एवं उल्लास एवं प्रमोद की त्रयी अन्वित है । इन सौन्दर्यबोधात्मक प्रतिरूपों की सृष्टि प्रकृति मूलशक्ति से, तथा मनुष्य रति के आकर्षण से करता है । इन प्रतिरूपों की सृजन चेतना के क्षणों में विद्युत्कण या परमाणु मूलशक्ति के अनुराग से रंजित होकर गतिमान हो उठते हैं। इस गति में उत्सव, ताल और नृत्य और लय ही सौंदर्यवस्तुओं को आकार, भाव, एवं रूप प्रदान करते हैं। इन परमाणुओं, और उनकी शक्ति के अस्तव्यस्त होकर बिखर जाने में प्रकृति में प्रलय होता है, तथा मानवीय लोक में विषमता ।

'कामायनी' में सौंदर्यबोधात्मक सृष्टि की मूलधारणा यही है । लेकिन इन तत्त्वों का बहुत अधिक घोल मेल हुआ है जिससे सृजन चेतना एवं सृजन प्रक्रिया एवं आशंसा बोध की स्थितियाँ परस्पर मिल जुल-सी गई हैं। सौंदर्याशंसा का पहला क्षण चिंता में मिलता है जब मनु विराट् की अनंत रमणीयता की अनुभूति में उद्विग्न और चकित् हो उठते हैं जिससे उनकी ऐंद्रियिक चेतना में पहला स्पंदन होता है : 'मैं हूँ !' अनुभूति की इस आदि बोधकता (Sensibilty) के कारण यह प्रथम मानवीय सौंदर्यबोध पूर्ण जागरूक न होकर 'अलस' है (खुली उसी रमणीय दृश्य में अलस चेतना की आँखें) । अलस चेतना से सौंदर्य की यह अन्वीक्षा स्वप्निल, अतीद्रि[illegible] मधुररहस्य वाली है। यह मूलरूपेण छायावादी सौंदर्यदर्शन की भि[illegible]

इसी अनंत (प्रकृत) रमणीयता का विकास रूप एवं सौंदर्य में हो[illegible] रूप में ढलने की प्रक्रिया ('लीला') को कवि ने सांख्य दर्शन के अणु-प[illegible]

को छाया द्वारा प्रस्तुत किया है। अणु-परमाणु श्रद्धा के शरीर, शक्तिकणों की मसृणता, मन्दाकिनी के उन्मीलन, नटेश के नृत्य आदि में सक्रिय हो उठते हैं। इन अणु-परमाणुओं के सौंदर्यगुण हैं, वेग, विद्युत्, शक्ति, अनुराग और ज्ञान। ये पाँच सौंदर्यगुण इंद्रियों की सौंदर्यतात्त्विक चेतना को उद्बुद्ध तथा प्रबुद्ध करते हैं। इस तरह प्रसाद ने रमणीयता एवं सौंदर्य के दो भेद रचे हैं। 'रमणीयता' अनन्त, अनिर्वचनीय एवं अन्तर्मुखी है। इसकी तुलना में 'सौंदर्य' कृत्रिम, निर्वचनीय और चेतनाग्राह्य है।

कवि ने रमणीयता में मूलशक्ति की, तथा सौंदर्य में काम की मादकता की अन्विति की है। वासना सर्ग में नारी मूर्ति का सौंदर्य 'रम्य' है। यह रमणीय सौंदर्य अर्थात् दोनों भेदों का मेल है। कवि ने काम एवं रति के द्वारा भी कुछ सौंदर्यगुणों का अभिधान किया है। उदाहरण के लिये काम की क्रीडा से मान, हास, जागरण, इंद्रिय उद्बोधन, मादकता और अतृप्ति प्राप्त होती है, तो रति की लीला से आकर्षण, अनुराग, मधुरता, हिल्लोल, सात्त्विक अनुभव विश्राम, आनंद आदि का भावन होता है। कालान्तर में सौंदर्य में ज्ञानगोचरता, (उज्ज्वल वरदान चेतना का) तथा लोकोत्तरता (ज्योत्सना निर्झर! ठहरती ही नहीं यह आँख) का भी संस्कार हो जाता है। कवि प्रसाद इस सौंदर्यगुण कथन में काव्यशास्त्र और साहित्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र के गुणों, शक्तियों तथा रीतियों का छायावादी रूपांतर कर डालते हैं। विभिन्न शास्त्रीय तत्वों के तिरोभाव से प्रसाद ने 'छवि', 'मतवाली सुन्दरता', 'किशोर सुन्दरता' आदि की धारणाओं का भी संकेत किया है। वासना सर्ग में 'छवि' वासना को स्नेह में रूपांतरित कर देती है, 'मतवाली सुन्दरता' लज्जा के प्रीतिधर्म पर आश्रित है, तथा 'किशोर सुन्दरता' नारी के यौवन की आतुर उत्कंठा है।

साराश में कवि ने मूलशक्ति, मूलभाव, मूलचिति से ही रमणीयता एवं सौंदर्य को आविर्भूत माना है। मूलशक्ति या अनादिवासना से ही ऋतुपति, माधव, मधु, वमन, रति और प्रीति भी आविर्भूत है। यही 'कामायनी' का केन्द्रीय सौंदर्यतात्त्विक बोध है। इस बोध के मूल में 'माधुर्य का महाभाव' है। यह सौंदर्यतात्त्विक बोध का वैष्णव आयाम है।

किन्तु सौंदर्य के माधुर्य के इस महाभाव का चैतन्य रूप 'आनन्द' है जो कवि के सौंदर्यतात्त्विक बोध में शैवाद्वैत के आयाम को भी सलग्न कर देता है। *आत्मवादी विचारधारा का केन्द्र आनन्द रहा है। आनन्द के सहवर्ती भाव*

र्वि इसे 'लावण्यमयी रचना' (उज्ज्वलवाग्विन्यास रमणीयता) 'दुर्लभ छाया' बताता है। वेदना या चैतन्य से अवलम्बित स्पर्श होने पर ही आत्मस्पर्शानुभूति 'सूक्ष्म आन्तर भाव' प्रकट करने में समर्थ होती है। इस तरह 'छाया' अनुभूति और अभिव्यक्ति को एकतान करती है जहाँ माध्यम का अवरोध और अनुशासन कम से कम हो जाए। इसलिये स्वानुभूति को हूबहू अभिव्यक्त करने के लिये ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक - विधान तथा उपचारवक्रता की शैलियाँ एवं विधियाँ प्रयुक्त होती हैं ताकि 'छाया' का अभिधान हो सके। छाया की यह अभिधान विधि ' छायावाद ' भी कहलाई गई है, जिससे कवि की सहमति है।

और, इसके पूरक रूप में बिंब 'लीला' और 'क्रीडा' करता है। बिम्ब सौंदर्य का मूल है। शब्द का अर्थ, और बिम्ब की अनुभूति - शक्ति मिलकर 'शब्दबिम्ब' बनाती है। बिम्ब कवि के आन्तरिक स्पर्श की पुलक को चित्रित करता है। अत शब्दबिम्ब बाह्यवर्णन की सीमा का उल्लंघन करके अर्थ एवं अनुभूति की प्रतीकात्मक भाषा (symbolic language) गढ़ते हैं जो अनिर्वचनीय अनुभूतियों तक को अभिव्यक्त करने की उद्विग्नता से स्पंदित है। शब्दार्थ के बजाय शब्दबिम्ब की अर्थानुभूति की वजह से 'कामायनी' की भाषा की अपनी विलक्षण प्रेषणधर्मिता है जो शब्दशक्तियों के शास्त्री जाल से मछलि-यों-सी फिसल जाती है। शब्दशक्तियाँ ऐकान्तिक रूप से अभिव्यक्ति पक्ष में केंद्रित हैं जबकि शब्दबिंब वाली भाषा अनुभूति पक्ष में गुंफित है। यह आन्तर स्पर्श करने वाली भाषा है। अत शब्दार्थों के स्थान पर शब्दबिंब वाली इस भाषा की

लिखते हैं कि जब साधक में प्रकृति अथ संकल्प में लीन हो जाता है तब शनैः शनैः शुद्ध भूमि में प्रविष्ट होने पर ''उसे केवल 'अहं' की प्रतीति शेष रहती है। इसे 'सन्नितत्व' कहते हैं। यही 'परमशिव' की 'उन्मीलनावस्था' है। इसी अवस्था में साधक 'परमशिव' के स्वरूप को समझ सकता है। यहीं आत्मा के आनन्दस्वरूप का प्रथम बार ज्ञान होता है। यही 'शक्ति' और 'शक्तिमान' की युगल मूर्ति है। यह अवस्था एक प्रकार से 'द्वैत' की है। यह अवस्था अन्त में परमशिव में लीन हो जाती है। यह 'शिवतत्व है।'' जहाँ पहुँचकर जिज्ञासु अपने अस्तित्व को 'परमशिव' में लीन कर देता है वह चिन्मय सामरस्य की अवस्था है। किंतु परमशिव में लीन होने पर भी कोई भी तत्व अपने स्वरूप को नष्ट नहीं करता। सभी तत्व 'परमशिव' में लीन होकर 'चिन्मय' हो जाते हैं। यही मनुष्य जीवन तथा दर्शन का चरम लक्ष्य है। यहीं शुद्ध अद्वैत है। 'चिन्मय शिवतत्व' में सभी 'चिन्मय' हो जाते हैं। वस्तुतः शिवशक्ति के 'सामरस्य' की अवस्था तो यही है।'' दार्शनिक कविता (philosophical poetry) की अपेक्षा काव्यात्मक दर्शन (poetic philosophy) की अगुआई के कारण दार्शनिक अनुकरण भी कविभागी हो गये हैं। इसी वजह से इस प्रबन्ध काव्य में एक अविरत एवं शुद्ध दर्शन खोजना भूल होगी। शैवाद्वैत में मूलाशक्ति 'शक्ति' है, सांख्य में 'प्रकृति' और हैरण्यगर्भ दर्शन में 'श्रद्धा'। इसी तरह मनु यज्ञ भी करते हैं और शक्ति साधना भी। अतः ये वैदिक एवं शैव दोनों हैं। इसी तरह 'कामायनी' के इच्छा-क्रिया-ज्ञान लोक भी शैवमत के अग्नि-सोम-रवि तत्व नहीं हैं। इसीतरह रहस्यसर्ग का त्रिपुरदहन शैवागम वाला न होकर रसशास्त्रीय है अर्थात् उसका श्रेय सामरस्य है। इसीतरह शैवागमों में त्रिपुर समन्वय करने वाली श्रद्धा नहीं त्रिपुर सुन्दरी (कामकला) है। यहाँ बेहद दार्शनिक गड़बड़ हुई है। इसलिये दर्शन का यह सवाल आध्यात्मिक फान्तासी के संदर्भ में ही समझा जाना चाहिए।

प्रसाद ने इन विभेदों के सैद्धान्तिक पार्थक्य स्थिर नहीं रखे हैं। और अपने हृदय के द्वंद्वों के अनुकूल ही अंतःकरण के तत्वों और विमर्श शक्तियों को संचालित करके उन्होंने और 'समरसता' के वैयक्तिक प्रतिमान ही रचाए हैं। मनु और श्रद्धा, जो शिव और शक्ति के से हो जाते हैं लीन होकर, वस्तुतः अपना पहला आरंभ यथार्थ और आदर्श, अहं और आत्मा, मानवता और बर्बरता के द्वंद्वों को लेकर करते हैं। यही द्वंद्व प्रसाद का भी था—अंतर्मुखीनता से बहिर्मुखीनता की ओर अग्रसर होने में। यहाँ आनन्द शक्ति न होकर उपलब्धि हो जाता है तथा 'ज्ञान'-'क्रिया'-शक्ति विषमतापूर्ण हो जाती है।

ने भी 'नारी' रत्नावली की सामाजिक भूमिका और रत्नावली के शारदामय 'नारीत्व' की भावना, दोनों ने मिलकर तुलसीदास को अग्रसर किया है। छाया-वादी काव्य में अप्सराओं, प्रकृति की अभिसारिकाओं, अतीन्द्रिय प्रेयसियों की चर्चा तो जारी हुई है लेकिन 'चिरंतन नारीत्व' की इस धारणा को पूर्णत: भुलाया गया है। गेटे के 'फाउस्ट' के अन्त में हेलेन फाउस्ट को आगे की ओर अग्रसर करती है। कलाकृति की अन्तिम पंक्ति है—"चिरंतन नारीत्व हमें ऊँचाई की ओर लिए जा रहा है।" फाउस्ट की हेलेन होमर के महाकाव्य की हेलेन न होकर गेटे की वह कल्पना और अनुभूति है जिसका तात्पर्य पहले किसी वास्तविक नारी से दूसरे प्रकृति से एवं तीसरे मानवात्मा से था। इस सौंदर्यवादी विधा को आगे बढ़ाकर विषयांतर अनावश्यक है।

जिस प्रकार युग युग में विश्व के सभी रोमांटिक और क्लासिकल कवियों ने चिरंतन नारीत्व का वास्तविक नारी सौंदर्य, नारीत्व-शिवत्व और मानवता के सत्य से अभिषेक किया है, उसी प्रकार 'नारी सुलभ पथ प्रदर्शन' भी सौंदर्य-वहन का एक उदात्त माध्यम और चिरंतन नारीत्व का पूरक रहा है। दान्ते अपनी 'डिवाइन कॉमेडिआ' की स्वर्गयात्रा बैयाट्रिस के पथप्रदर्शन द्वारा ही पूर्ण करता है; हेलेन फाउस्ट का पथ-प्रदर्शन करके मानवता का अन्तिम संदेश देती है; रत्नावली (निराला के 'तुलसीदास' में) तुलसीदास का पथ-प्रदर्शन करके उन्हें संस्कृति का अग्रनेता बना देती है। श्रद्धा भी अपनी मुस्कानों से इच्छा, ज्ञान और कर्म के तीन लोकों को मिलाती हुई मनु को कैलाश तक ले जाती है। इस भावना के पीछे मातृसत्ताक अवस्था के जातीय अवशेष तो हैं ही; महाकवियों के प्रेम और नारी, दोनों से सम्बन्धित दृष्टिकोण भी गुँथे हैं। नारी के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण अगाध श्रद्धा और आदर्श का रहा है। प्रसाद ने भी नारी को संसार की प्रदर्शिका तथा मानवता को आगे बढ़ाने वाली और प्रेम को सभी मंगल श्रेयों का साधन और विश्वनियामक माना है। इसीलिए मंगलमयी नारी और उसका विश्वनियामक प्रेम मनुष्य और मानवता आदि का निर्देशन करता चला आ रहा है — कभी मातृशक्ति, कभी पत्नी, कभी जननी, कभी सखी और कभी प्रिया होकर। प्रसाद उसे हृदय की अधिष्ठात्री कोमलता एवं संसार में सरलता लानेवाली शक्ति मानते थे। जो कुछ भी सौंदर्य, शक्ति, कोमलता, एकता और प्रीति की सार्वभौम शाश्वत क्षमताएँ हैं, उनकी चरम परिणति नारी में स्वीकार करके 'नारीसुलभ पथ प्रदर्शन' को उन्होंने अति गम्भीर धरातल प्रदान किया।

* एक अन्य सौंदर्यवादी प्रश्न। प्रकृति के सौंदर्यदर्शन के अन्य दृष्टिकोणों

५ | 'प्रकृति' से सौंदर्य-साक्षात्कार

'प्रकृति' और सौंदर्य, सौंदर्य की प्रकृति तथा प्रकृति का सौंदर्य 'कामायनी' की कांतिमान चेतना है। महाकाव्य में 'पुरुष'-विहीना अकेली 'प्रकृति' है, भूतनाथ के तांडव अथवा जलप्लावन से त्रस्त प्रकृति है, विश्व सुंदरी प्रकृति है, त्रिपुर सुंदरी का रहस्य-सौंदर्य है। चेतना का वरदान सौंदर्य है, गंधर्व देश की कामबाला का सौंदर्य है, गुहावासिनी गर्भिणी श्रद्धा का सौंदर्य है, राष्ट्रस्वामिनी इड़ा का सौंदर्य है और हिमवती प्रकृति का सौंदर्य भी है। इस तरह प्रसाद का सौंदर्य तत्व प्रकृति और सौंदर्य की कान्त मैत्री कराता है। विचार और विश्व दर्शन के ध्रुवों में तो यह महाकाव्य पर्याप्त शिथिल है। लेकिन कला और सौंदर्य के अक्षों में उतना ही गतिमान लचिर और रमणीय है। लगता है कि प्रसाद इस कृति में सौंदर्य के हिमालय-शिखरों को छूकर एक शिशु जैसे मधुर कुतूहल में हँस पड़े हैं और विश्व सुंदरी प्रकृति को एक युवक की तरह आलिंगन में बाँधकर तन्मय हो गये हैं। प्रकृति के माध्यम से प्रसाद ने सौंदर्य तत्त्व का अपना परम भागवत रूप सिद्ध कर लिया है। उनके रहस्यमय अनंत सौंदर्य के रत्न सौध वाले ये वातायन खोले जा सकते हैं। त्रिपुर सुंदरी भाव के याचक इस कवि का सौंदर्य तात्विक साक्षात्कार अनूठा एवं अनिर्वचनीय है।

● इसके लिए कवि ने प्रकृति-नियति-स्मृति की त्रयी बनायी है। यदि हम चित्रकला के क्षेत्र के 'चित्रण' और 'अंकन' नामक शब्दों को मिलाकर चित्रांकन की बात कहें तो कह सकते हैं कि प्रकृति के चित्रांकन में कवि ने प्रकृति के विकल और रागमय परमाणुओं से आरंभ किया है, तथा सौंदर्य के बोध को क्षण की अनुभूति की गहराई में एक मणि की तरह उद्दाम कर फेंक दिया है। अब 'क्षण' और 'कण' की लघुतम इकाइयों वाले काव्य दर्शन और महाकाल के बोध के बीच से उनका प्रकृति का सौंदर्य तत्त्व उभरा है। एक ओर उन्होंने शैवाद्वैत दर्शन वाली प्रकृति ली है जो पंचभूतों के भैरव मिथुन या परमशिव की मायाशक्ति की लीला (सृष्टि) है। यह प्रकृति प्रखर और

सम्मृति, दोनों का अभिधान करती है। दूसरी ओर, मानव देह, मानव मन और मानव आत्मा की त्रयी वाली प्रकृति है जो काम और रति के आकर्षण तथा रहस्य तथा कुतूहल मे क्षण क्षण नवीना होती है। यह 'छाया' और 'माया' दोनों है। तीसरी ओर पच तत्वों वाली सृष्टि की वाह्य प्रकृति है जो संध्या, रजनी, राका, हिमालय आदि के स्वरूप मे रूपायित होती है। कवि ने प्रकृति को इन तीनो रूपो मे चित्रांकित किया है । आधारभूत रूप से प्रकृति का यह विविधरूप दर्शन नृत्य और ताल से मुद्रित हुआ है। इसलिए अक्सर 'कामायनी' मे प्रकृति के सौंदर्य साक्षात्कार के प्रसग सहार-ताडव; आनद-ताडव, त्रिपुर-तांडव गौरी-ताउव, लास्य-ताडव आदि के विभिन्न नृत्य रूपको से संबद्ध हुए हैं। ये नृत्यरूपाभास 'प्रकृति' को विशिष्ट ताल एव मुद्रा एवं शोभा एव लीला प्रदान करते है।

मानवीय सदर्भ में यह 'प्रकृति' तत्त्व मन के कुतूहल और आकर्पण और चेतना द्वारा निर्मित हुआ है। मानव तन मानव मन और मानव अंतश्चेतना को उद्घाटन करने मे श्रद्धा के कई सौंदर्य चित्र, इडा का मानवीयकृत नख-शिख, कामकुतूहल, तथा विराट् रहस्य आदि चेतना के वरदान के रूप मे आलोकित हुए हैं।

उपर्युक्त सूत्रबद्ध आधारो पर 'कामायनी' मे कवि का सौंदर्य-बोध उद्घाटित हुआ है जिसके तीन आयाम है. दार्शनिक, छायावादी तथा वैयक्तिक। कवि के दार्शनिक बोध की वजह से प्रसाद की सौंदर्य धारण चेतना और वरदान से जुडी है, छायावादी बोध के कारण यह अतीन्द्रियता एव स्वप्निलता और मधुरता एवं सुकुमारता से जुडी है, तथा वैयक्तिक बोध के कारण यह मगल, श्रेय एव प्रेय, इंद्रिय चेतना और शालीनता से सलग्न है। ये सभी शब्द 'कामायनी' मे व्यवहृत तथा निरूपित हुए है । इस पीठिका पर हम 'कामायनी' में उनकी सौंदर्य तत्त्व एव सौंदर्य-बोध सबधी सकेतो का विश्लेपण कर सकते हैं।

"कामायनी" मे एक ओर पुरुप विहीन अकेली 'प्रकृति' है जो जल-प्लावन के बाद चिंतित 'पुरुप' की मर्म वेदना को सुनती है। इसके साथ ही मनु जीवन मृत्यु का ही एक क्षुद्र अंश होकर इस विराट् प्रकृति की अभिव्यक्ति का साक्षात्कार करता है। इसीलिए विराट् और लघु, अनतता और क्षणिक क्षुद्रता की पृष्ठभूमि मे मनु का रहस्य बोध विचारो के द्वारा सुलझ नही पाता। मनु एक अनत रमणीयता की अनुभूति मे ही चकित-चंचल हो उठते हैं। अतएव अनत रमणीयता विचार के बजाय अनुभूति का बोध है (हे अनत रमणीय ! कौन तुम ? यह मैं कैसे कह सकता। कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो भार

विचार न सह सकता)। अनुभूति की बोधरहता के कारण मनु की चेतना पूर्णत. जागरूक न होकर अलग है (सुनी उसी रमणीय दृश्य में अलग चेतना की आँखें)। इसी अलस चेतना से सौंदर्य की अन्वीक्षा करने पर रमणीय दृश्य स्वप्नलोक जैसे लगते हैं, इंद्रिय बोध अतींद्रिय बोध हो जाता है और अनुभूति मधुर रहस्य बन जाती है। यह एक महत्त्वपूर्ण सौंदर्य बोधात्मक(ऐस्थेटिक)रूपान्तरण है(एक अतींद्रिय स्वप्न लोक का मधुर रहस्य उलझता था)। इस रहस्यानुभूति की भूमि पर मनुष्य की इंद्रियो की चेतना असमर्थ-सी हो जाती है (चेतना इंद्रियो की मेरी मेरी ही हार बनेगी क्या ?)।

लेकिन अनंत रमणीय रमणीयता रूप बन कर भी ढलता है। रूप मे ढलने की प्रक्रिया मे कवि ने सांख्य दर्शन के अणु-परमाणु की कल्पना का समावेश किया है। श्रद्धा का शरीर पराग कणो मे परमाणुओं से रचित है, इन शक्तिकणो के समन्वय से समरसता प्राप्त होती है, शरीर के मांसल परमाणु विद्युत् बिखराते हैं, इन अणुओ मे अपार वेग भरा है और ये कृतिमय वेग वाले हैं, मूलशक्ति के उदित होने पर परमाणु बाल उसका सुंदर अनुराग लेकर दौड पड़ते है, नृत्य मे ये परमाणु विकल हो जाते है, वसुधा पर कुछ होने पर अणु-अणु मचल उठते हैं, विश्व कमल के अणु क्षण भर मे परिवर्तित हो जाते हैं, इत्यादि। इस भांति अणुओ के द्वारा ही कृति की रचना होती है। इन अणुओ के गुण वेग, विद्युत, शक्ति, अनुराग और ताल हैं। अत. मूल शक्ति के अनुराग से रंजित ये परमाणु (अणु, कण) एक समन्वित तालराग-युक्त मानवीय कृति का अभिधान करते हैं। इन सौंदर्यमयी कृतियो मे स्थिरता और जड़ता के बजाय चचलता होती है (सौंदर्यमयी चचल कृतियां बन कर रहस्य हैं नाच रही)।

इन रमणीय रूपो के चेतन अन्तर्दर्शन को कवि ने 'सौंदर्य' कहा है (उज्ज्वल वरदान चेतना का सौंदर्य जिसे सब कहते हैं)। 'रमणीयता' अनन्त है, अनिर्वचनीय है और वैयक्तिक है। लेकिन 'सौंदर्य' कृतिमय है, सर्ववचित है और चेतना से ग्राह्य है। इस तरह कवि ने सौंदर्य को कृतिसभूत साधारणीकृत मानवीय चेतना की विशेषता (वरदान) माना है जबकि रमणीयता को वह वैयक्तिक अबोधपूर्वा स्मृति की अलसचेतन अनुभूति माना है (जिसका मानवकृति सभूत होना अपेक्षित नही है)। रमणीयता मुख्यत विश्व और ब्रह्माण्ड मे व्याप्त है। सौंदर्य मूलतः मानवीय कृतियो तथा मानव चेतना मे व्याप्त है। रमणीयता मे रहस्योदात्त है और सौंदर्य मे शक्योदात्त[1] तो कवि ने 'रमणीयता' एवं 'सौंदर्य' के बीच सूक्ष्म अनुभूति या भाव परक अंतर किया है।

इंद्रजाल है। इसमे श्रद्धा की देह लचे शिशु शाल की तरह, या कुसुमों से [illegible]
लता के समान ('कुसुम सधर्माणो हि योपितः'—कामसूत्रम् २.३ ६ ॥ '[illegible]
कुसुम सदृश्य है'— अभिज्ञान शाकुंतल १ १८), अथवा परमाणु-[illegible] [illegible]
रचित होकर मधुका आधार लेकर खड़ी है। अब हम इसका विश्लेषण करें :

समूर्तन (इमेजरी) भी अवचेतन की प्रमुख देन है। यदि हम '[illegible]
मे वर्णित केवल श्रद्धा के सौंदर्यवर्णन के बिंबो का ही मनोविश्लेषण [illegible]
प्रसाद की कल्पना और अवचेतन के कई स्त्रोत फूट पड़ते है। [illegible]
लिखित हैं—

में रूपक, उपमा उत्प्रेक्षा से लेकर स्पर्श, दर्शन, श्रुति, गंध और रस के सभी बोध, जो कल्पना या प्रत्यक्षीकरण (इमैजिनेशन एंड पर्सेप्शन) द्वारा विकसित हों, बिंब माने जायें। निम्नलिखित प्रवृत्तियों ने श्रद्धा के सौंदर्यवर्णन को कवि के अवचेतन एवं सौंदर्यप्रवृत्ति का उज्ज्वल दर्पण बना दिया है। उन्होंने नारी सौंदर्य के लिए प्रकृति के रूढ़ (रीतिकालीन) उपमानों का सर्वथा त्याग किया; बाह्यता से अंतर्मुखीनता में प्रविष्ट हुए; उदात्तीकरण के चेतन आग्रह के कारण यौन आकांक्षा पर गंभीर मर्यादा का अवगुंठन डाला; मूर्त के लिये अमूर्त विधानों की रचना की; अनेक उत्प्रेक्षाओं का अवलंबन लेकर अवचेतनलोक में मुक्त उड़ानें भरी तथा लघु उपमानों को भी विराट, दूरान्वित और अनूठे सौंदर्यचित्रों से संलग्न किया। कवि ने उपर्युक्त वर्णन में लाल रंग के छह नीले रंग के चार और श्वेतरंग के सात बिंब प्रस्तुत किये हैं। नीला रंग कवि की अवचेतनावस्था की अलस एवं अतल नीली गहराइयों को, लाल रंग कामोद्दीप्ति तथा श्वेतरंग उदात्त शांत शोभा को प्रकट करता है। गुलाबी रंग, अरुण रविमंडल, धधकता लाल 'ज्वालामुखी' अरुण की अलसाई किरण, उषा की पहली लेखा, रक्त किसलय आदि कवि में नारी की अंगमाधुरी के प्रति मादकता को उद्घाटित करते हैं। नील रोमवाले मेषों के चर्म, नील परिधान इंद्रनील लघुशृंग, नील घनशावक आदि अलसता और अगम गहराइयों में कवि के अवचेतन को ('भुलावा देकर धीरे धीरे') ले चलने का संकेत करते हैं। चंद्रिका और बिजली के भीगे हुए आलोक भी कवि की अंतर्मुखी एकांत मूर्च्छा को चेतना में पृथक करते हैं। चंद्रिका, माधवी रजनी, विधु तारकद्युति, शुभ्र राका हँसी—इनमें से गुलाबी बिजली की छवि को छोड़कर—आदि प्रकाशवान विवेक के सुन्दर शांत संस्कार उपस्थित करते हैं। उसी प्रकार इस आवरण की शारीरिक चेष्टाएँ मधुचर्या का ही प्रस्फुटन करती है। चंद्रिका से लिपटे घनश्याम, मधुपवन के झकोरों से क्रीड़ा करता हुआ शाल, उन्मुक्त काया का संस्पर्श, नीले रोएँ वाले मेषों के चर्म के आवरण के कारण कांत अंगों में स्फुरण, अधखुले अंगों का और भी खुलना, गुलाबी रंगवाले (दहकते और उत्तेजक) बिजली के फूलों का खिलना, माधवी रजनी में लाल लपटों के साथ लघु ज्वालामुखी का धधकना, अमृत भरने की इच्छा से लघु मेघशावकों का घिरना, अरुण किरण का विश्राम लेकर अधिक अलसाना, तारकद्युति की गोद में मदभरी सलज्ज प्रथम उषा का भीगकर उठना, हँसी का मदविह्वल प्रतिबिंब झलकना आदि में सभी क्रियाएँ इंद्रियों के विलास से उन्मद हैं। अतः उपर्युक्त विश्लेषण कवि के अवचेतन और दमि[illegible]

से कंटकित हो उठती है। जिस तरह लता पर ओस की बूँदें जम जाती हैं उसी तरह विगत करुण विचारों के श्रमसीकर उसके मुख-मंडल पर मोती की तरह बन जाते हैं। जिस तरह जल मे सिकुड़ी हुई बेली फैल जाती है उसी तरह व्यथा की लहरों-सी श्रद्धा की अंग-लता फैलती है। यहाँ रोमांच, आलस्य, स्वेद के संचारियों को कवि ने छायावादी ढंग से अभिव्यंजित किया है। यहाँ काम-बाला सुकुमारी नारी बन चुकी है और सोती हुई सुकुमारी नारी का दीपन आनन्द के बजाय पागल सुख का लालसा बोध उदित करता है।

ईर्ष्या सर्ग मे गर्भवती श्रद्धा का तीसरा सौंदर्य वर्णन है। इसमे कवि ने पुनः श्रद्धा सर्ग वाली अंकन प्रणाली का संवर्धन किया है। यहाँ हम कवि की शैली का तार-तार करना चाहेंगे। वह श्रद्धा का पीला मुख, आँखों में स्नेह, कृशता पूर्ण देह, पीन पयोधर, गर्भपीड़ा-इन पाँच लक्षणों को केन्द्र बनाता है। सुश्रुत ने गर्भा स्त्री के लक्षणों मे श्रम, ग्लानि, पिपासा, थकावट मानते हैं। उसके अंग-लक्षणों के अंतर्गत दोनो स्तनो पर कालापन, रोमराजियों का उद्‌भव, आँखों की पलकों का बंद होना भी शामिल है। चरक एवं वाग्भट्ट धीमे हृदयस्पंदन का भी लक्षण बताते है। बिहारी ने थिरकते हुए अधखुले नेत्रों, थकी देह, सुरत-सुख और गर्भ-दुख की व्यंजना की है। कवि ने गर्भ मधुर पीड़ा (सुरत-सुखित) को लीलायुक्त ग्रहण कहा है तथा श्रम की श्रमजल रूप अभिव्यक्ति को ग्लानि के बजाय गर्व कहा है। इस तरह प्रसाद ने गर्भिणी श्रद्धा के सहज 'खेद' से युक्त रूप को अंकित किया है। अब मुँह पहले पीला बताया गया फिर इसके ऊपर भी केतकी गर्भ-सा पीला [मुख] आरोपित हुआ। इस तरह केतकी गर्भ-सा पीला मुख हो गया। इसी पद्धति से कृशता नई, और नई कृशता लजीली बनी। इसमे लतिका-सी देह का रूपक स्वीकार किया गया; फिर यह कंपित लतिका-सी [देह] हो गई। आँखों मे स्नेह भरा है। फिर यह आलस-भरा स्नेह हो गया। इस तरह कवि संज्ञा लेता है, उस पर एक रूपक विशेषण रूप मे आरोपित करता है; और आरोपित रूपक पर पुनः एक रूपक या क्रिया विशेषण रूप मे रूपक आरोपित कर देता है। इस वर्णन मे उसने यह पद्धति अधिक परिष्कृत की है। अब उत्प्रेक्षारोपण की प्रणाली देखें। मातृत्व बोझ से झुके हुए पीन पयोधरों का बिंब है। जिन्हें काले ऊनो की नव पट्टिका मे बाँध दिया गया है। अब कवि ने इस समग्र क्रिया को दो उत्प्रेक्षाओं द्वारा दीप्ति किया है: मानो सोने की सिकता में कालिंदी [उमंग भरकर] बह रही है (क्योंकि गर्भिणी का हृदय स्पंदन धीमा होता है तथा दोनों स्तनों पर कालापन आ जाता है); अथवा मानो स्नेह स्वर्णगण

अपने हिमालय वर्णन में कवि संस्कृत कवियों—विशेषत: कालिदास के देवतात्मा हिमालय (रघुवंश, कुमारसंभव) की धारणा—से स्पष्टतः अनुप्राणित है। यहाँ कवि ने अपने अनन्त रमणीयता के सौंदर्यबोध का उन्मेष किया है। अतः उसे हिमालय का दैवीकरण करना पड़ा। लता कलित शुचि सानु शरीर वाला हिमालय अचल है मानों निद्रा में सुन्दर स्वप्न देखता हुआ अधीर हो। इस अचल की अधीरता उसके चरणों में झरनों की धारायें हैं जो जीवन की अनुभूति बिखरा रही है। ये झरने मानों हिमालय की हँसी है जो असीम नीले अचल में किसी (!) की मृदु मुस्कान देखकर कवि की तरह गा उठे हैं। कवि ने दिव्य सौंदर्य के रहस्य दर्शन की अनुभूति को प्रकट किया है। सानु शरीर वाले हिमालय की शिला-संधियों से टकराकर पवन [चारण सदृश] गुंजार भर रहा है। इस हिमालय की शैल श्रेणियाँ तुषार के किरीट तथा संध्या-घनमाला की रंगबिरंगे छींट पहने हैं। इस भाँति कवि ने अनन्त रमणीयता के सौंदर्योदात्त बोध को स्वप्न एवं हास एव गान के द्वारा अभिव्यक्त किया है। यहाँ विश्व सौंदर्य का उल्लास भाव है।

इस हिमालय की अचल मौनता की तुलना में हम आनन्द सर्ग के विराट धवल नग का महिमामय वर्णन पाते है जिसमे गंभीरता और विशालता है। समतल घाटी, श्याम तृण वीरुध वाली मनोहर तलहटी, नवकुंज, मंजरियों का कानन, प्रकृति के छोटे से मुकुट की तरह मानसरोवर (दे० श्रीधर पाठक का काश्मीर वर्णन), खगकुलो की किलकार, कलरव करते हुए कलहंस, किन्नरियों सी प्रतिध्वनियाँ आदि का अलंकारविहीन वर्णन केवल यथावत् प्रत्यक्षीकरण का एक दृष्टान्त है। लेकिन यह समतल वाला शांत सौंदर्य रहस्य सर्ग मे हिमालय की ऊँचाई और नीचाई के दृष्टिपथों (पर्स्पेक्टिव) का कंट्रास्ट है। यहा कवि ने अम्बर छूने वाली हिमालय ऊँचाइयों मे नीचे का दृष्टिपथ चित्रित किया है। नीचे भीषण खड्ड और भयकरी खाइयाँ है, नीचे इन्द्रधनुषो की माला पहने हुए जलधर दौड रहे है और वे कुजर-कमलो की तरह चपला के गहने चमकाते हैं, नीचे शीतल झरने इस तरह बह रहे है जैसे गजराज-गण्ड से मधुधाराएँ बिखरी हो, नीचे हरियाली भी शैल समतल चित्रपट-से लगते हैं; नीचे प्रतिपल भागने वाले नद चित्र की स्थिर रेखाओ से लगते हैं; वह लघुतम दिखता है। इस तरह कवि ने अवनति के कोण (एंगल आफ डिप्रेशन) से हिमालय के विराट् कैनवास को एक कांगड़ा-कलम के नन्हें फलक जैसा अंकित करके अभिनव प्रयोग किया है। ये दोनो वर्णन कवि के ऐसे प्रयोग हैं जो छायावादी रोमानी रंगीनियों से लगभग बच गये हैं।

[illegible] त्रिपुर और [illegible] त्रिपुर में विभाजित है इन दो अनवरत लोकों के मध्य [illegible] से भी विराट का दृढ़ सौंदर्य देखा है ([illegible])। इस दर्शन में [illegible] आदिकवि तथा योगियों के प्रतीकों का [illegible] लिया गया है। किन्तु प्रयोग की दृष्टि से यह एक नया अनुभव है। [illegible] यह दर्शन एक [illegible] है जो प्रतीकों, स्वप्नों और अन्तर्देश से भी आगे मात्र एक [illegible] है। यहाँ अनन्त रमणीयता के शून्यता बोध को कवि ने दिक् (space) एवं काल (Time) के अशों से मुक्त होकर अभिव्यक्त किया है। शून्यता का यह रमणीयता बोध स्वयंप्रकाश्य प्रज्ञा (intuitional) है। इस अनुभव के अन्तर्गत दिशा बोध विकसित तथा घन-ज्ञान असीम है, अन्तरिक्ष में केवल अनंतता है, शरीर निराधार टिका है और लगता है कि पदतल से ऊपर है। इस शून्य में दिवा-रात्रि का मधिकाल है जहां ग्रह तारा नक्षत्र अस्त हो गये हैं ? पवन पग बन गया है, ऊष्मा का अभिनव अनुभव है और अनुओं के स्तर तिरोहित तथा भूमंडल-रेखा विलीन हो गई है। इस निराधार महादेश में 'नवीन सचेतनता' उदित होती है। इसके बाद चित्रण और दर्शन का आध्यात्मिक प्रतीकीकरण होता है त्रिदिक् विश्व केवल तीन आलोक बिन्दुओं की तरह दिखाई पड़ता है जो अनमिल एवं सजग है। मनु के लिये शून्य की यह सौंदर्य बोधानुभूति इन्द्रजाल लगती है। ब्रह्माण्डीय बिंबों (Cosmic images) और सात्विक प्रतीकों के द्वारा यहां कवि ने देश काल मुक्त 'प्रकृति' का निरूपण किया है। श्रद्धा बताती है कि ऊषा के कंदुक सा सुन्दर यह इच्छालोक है, श्यामल यह कर्मलोक है तथा उज्ज्वल यह ज्ञानलोक है। इस भांति प्रसाद ने इस प्रयोग द्वारा सौंदर्य बोधानुभव की एक अनिर्वचनीयता को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। स्वय से, स्वय के अस्तित्व का अतिक्रमण करके शून्य के सौंदर्यबोध की यह अनुभूति एक अस्तित्ववादी (existential) भावभूमि जैसी भी है।

इसी कड़ी में एक और प्रयोग है : दर्शन सर्ग में मनु द्वारा नर्तित नटेश के आनन्द ताण्डव का साक्षात्कार। यह एक आध्यात्मिक फान्तासी वाला चित्रांकन है, अलौकिक दिवास्वप्न जैसा। यह रहस्यात्मक नृत्य है जिसमें प्रकृति, नियति, सृष्टि, स्थिति, संहार, दिशा, काल, नक्षत्र, गृह, तारे, ब्रह्माण्ड आदि लघु लघु अणु एवं कण से हो गये हैं और सपूर्णता को समेटता हुआ नटेश्वर का विराट एवं विशाल स्वरूप सबको ताल और लय में बाँध लेता है। इसमें भी *दिशाकाल लुप्त हो जाते हैं, महादोल की तरह विश्व झूलता है, असख्य* गोल ब्रह्माण्ड बिखरते हैं, युग तोलते हुये त्याग एवं ग्रहण करते हैं, सृजन और

कर प्रलयलीन हो जाता है । इसमें धरा धँसती और काँपती है, हहरा महा-
कच्छपी धरती विकल होकर उथ धूम करती है, नभचारी विहग जलचर
छटपटाते हुए निकलते हैं । इसमें तारा के टूटते गिरते हैं, क्रुद्ध सिन्धु के सघन
झंझावातों से धरती विकल होती है, प्रलय पवन तरल तिमिर का आलिंगन
करता है, प्रबल थपेड़े लगते हैं, पवनों के घनीभूत हो उठने से श्वासों की गति
रुद्ध हो जाती है । इसमें कठिन कुलिश चूर होते हैं, दिग्दाहों से धूम उठते हैं,
सघन गगन में भीम प्रकंपन होता है, झंझाओं के सकल निपात होते हैं, उल्काएं
शोणित प्राण सोखती हैं, ज्वाला धधकती है, ज्वालामुखियों से निश्वास उठते हैं,
करका क्रन्दन करती हुई गिरती है, असंख्य धाराएँ नचती हैं ज्यों विराट बाडव
ज्वालाएँ खंड - खंड होकर रोती हों । इसमें अश्रुमय हलाहल नीर बरसता है,
क्रन्दनमय हाहाकार होता है, बार बार क्रूर भीमरव होता है, उस भीषण रव
से धरणी काँपती है, सिंधु लहरियाँ गिर जाती हैं ज्वालामुखी निश्वास लेते हैं
और इस 'विराट आलोड़न' में सारा बुद्बुद् से लगते हैं । सारांश में, इस वर्णन
प्रणाली में उचित शब्द-चयन, और एक ही वस्तु या तथ्य की अनेक प्रकार से
पुनरावृत्तियाँ भी वांछित प्रभाव उत्पन्न करती हैं । रचनाशिल्प के अन्तर्गत हम
ताल एवं लय के सायास तोड़ने, तथा शब्दों को विषम सन्दर्भों में जड़ने के
कौशलाभ्यास को बता ही चुके हैं ।

इसी के दृष्टान्त में हम ताल और लय, एवं लीला और क्रीड़ा युत मुग्धा (नायिका) रजनी के प्रति सम्बोधनात्मक वर्णन ले सकते हैं (आशा सर्ग) । इसमें चंचल क्रियाओं की चपल लावण्यलीलाएँ अंकित हुई हैं । यह वर्णन माधुर्यगुण और मधुर भाव वाला है । यह हँसती हुई, खिलखिलाती हुई, मुसक्याती हुई, हाँफती हुई पगली और मतवाली रजनी है । यहाँ कवि ने 'भोली भाली छवि' की चपलता का बड़ा मनोहर अंकन किया है । यह मुग्धा जैसी रजनी कामना की सुनहली साड़ी फाड़कर प्रतीप हँसती है, किसी टोने को पढ़ती हुई घूम-घूमकर चली जाती है, समीर के मिस हाँफती हुई-सी किसी के पास चली जाती है, विकल खिलखिलाती है जिससे तुहिन कणों, फेनिल लहरों में अधेर मच जाती है, घूँघट उठाकर किसी को देखकर ठिठकती-मुसक्याती आती है, रजत कुसुम के नव पराग की इतनी धूल उड़ा देती है, अपने आँचल को नहीं सभाल पाती, और अकिंचन जगत इसकी भोलीभाली छवि लूट लेता है । इस वर्णन में केवल सुन्दर भोली हँसी की चपल लीला को ही कवि ने अनेक सचारी बिंबों से चित्रित किया है । केवल एक अनुभूति को उभारने की दृष्टि से यह सर्वोत्तम साक्षात्कार है । सहज और स्वाभाविक ! कितना छोटा-

सहार के तालयुक्त पदाघातों से अनाहत नाद होता है तथा अन्तरिक्ष प्रहसित-मुखरित होता है। केवल प्रकाश रूप शिव के सुन्दर आनन्द तांडव से सत्ता का 'स्पदन' डोल चलता है, तमस उनका अलक जाल बन जाता है, लीला का आह्लाद होने लगता है, श्रमसीकर तारे हिमकर दिनकर बनते हैं, भूधर धूलि-कणों की तरह उड़ते हैं, जिधर विद्युत कटाक्ष चला जाता है उधर ही कंपित ससृति बन जाती है और चेतन परमाणु बिखर कर बनते एवं विलीन होते हैं। इस भांति प्रसाद ने इस प्रतीकात्मक नृत्य द्वारा सृष्टि, स्थिति, सहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह की ताल एव लय को प्रकट किया है। 'प्रकृति' एवं 'पुरुष' के पाशमुक्त सम्बन्धों का साक्षात्कार है। यह चित्रांकन आद्यंत प्रतीकात्मक एवं आध्यात्मिक है।

ख 'प्रकृति' का ही एक भीषण एव रौद्र रूप चिन्ता सर्ग मे जलप्रलय के रूप मे अंकित हुआ है। इसकी सौदर्यदार्शनिक भूमि सांख्यदर्शन वाली है। कवि ने खुद ही इसे 'पचभूत का यह ताडव मय नृत्य' और 'अनस्तित्व का धू - धू करते हुए नाच रहा ताडव नृत्य' कहा है। 'अति विराट आलोड़न' और 'अति भैरव जलसघात' की सज्ञाएँ देकर कवि ने इसे अंकित किया है। अत: इसमे रमणीयता की सृष्टि, समन्वय की ताल एवं लय, और विराट का रहस्य, ये तीनो ही सौदर्यविधायक तत्त्व विलीन हुए हैं। यह बात रेखांकित कर लेनी चाहिए। इस चित्रण को कुछ धारणाओ के आधार पर उभारा गया है: (क) साख्य दर्शन के अनुसार पचभूतो की प्रलयावस्था; (ख) देव यजन के पशु-यज्ञों की पूर्णाहुति की ज्वाला का प्रलय सिन्धु की लहरियो मे रूपांतर; और (ग) भयानक तथा रौद्र का सौदर्यबोधानुभव। इस वर्णन द्वारा कवि के रचनाशिल्प का यह भेद खुल जाता है कि रमणीय सौंदर्य के विधान मे ताल एवं लय को तोड़ देने पर पहले तो सब कुछ बिखर जाता है; और इसके बाद इसी अस्तव्यस्तता (chaos) को भीषणता, क्रूरता, गर्जन, क्रन्दन, कठोरता, आदि के बोधो से जोड देने पर भयानक एवं रौद्र का सहकार निर्मित हो जाता है। क्योंकि कवि ने जलप्रलय का वर्णन किया है अत उसे समुद्री पटल लेना पड़ा है। भीषणता और क्रूरता का ताना-बाना बुनने के लिये कवि ने सिन्धु, जलधर, पवन, लहरियो, उल्का, बिजलियो, ज्वालाओ और कुलिशों का उपयोग करके इनके कठोर, क्रूर, भयानक और विध्वसक कर्मों-धर्मों को उचित शब्दो की भावमैत्री के द्वारा प्रेषित किया है। इस वर्णन मे क्षितिज तट के जलधर उठते हैं, गरजती सिन्धु लहरियाँ कुटिलकाल के जालों सी फन फैलाये व्यालो सी चली आती है, अति भैरव जल संघात बढ़ता है, उदधि अखिल धरा को डुबा

सब ज्योतिहीन हो जाता है। इसमे धरा धंसती और कँपती है, इसका महा-सिन्धु धरती विकल होकर व्योम चूम लेता है, नक्रवाली विकल उछलकर उगलते हुए निकलते है। इसमे झंझा के झटके लगते है, वृद्ध सिन्धु के सबल तरंगाघातों से धरती विकल होती है, प्रबल पवन तरल तिमिर का आलिंगन करता है, प्रबल थपेड़े लगते हैं, पवनों के घनीभूत हो उठने से श्वासो की गति रुद्ध हो जाती है। इसमे कठिन कुलिश चूर होते है, दिग्दाहो से धूम उठते हैं, सघन गगन मे भीम प्रकपन होता है शंपाओ के शकल निपात होते हैं, उल्काएं खोया प्रात खोजती है, ज्वाला धधकती है, ज्वालामुखियो के निश्वास उठते हैं, बरखा क्रदन करती हुई गिरती है, असंख्य चपलाएँ नचती हैं ज्यो विराट बाड़व ज्वालाएँ खड - खड होकर रोती हों। इसमे अश्रुमय हलाहल और बरसता है, क्रदनमय हाहाकार होता है, बार बार क्रूर भीषण रव होता है, उस भीषण रव से धरती कँपती है, सिन्धु लहरियाँ गिर जाती है ज्वालामुखी निश्वास लेते हैं और इस *'विराट आलोडन'* मे *तारा बुद्‌बुद् से लगते है।* सारांश मे, इस वर्णन प्रणाली मे उचित शब्द-चयन, और एक ही वस्तु या तथ्य की अनेक प्रकार से पुनरावृत्तियाँ भी वांछित प्रभाव उत्पन्न करती हैं। रचनाशिल्प के अन्तर्गत हम ताल एव लय के मायाम तोड़ने, तथा शब्दों को विषम सन्दर्भों मे जड़ने के कौशलाभ्यास को बता ही चुके हैं।

इसी के फलस्वरूप मे हम ताल और लय, एव लीला और क्रीड़ा युत मुग्धा (नायिका) रजनी के प्रति सबोधनात्मक वर्णन ले सकते हैं (आशा सर्ग)। इसमे चपल क्रियाओ की चपल लावण्यलीलाएँ अंकित हुई हैं। यह वर्णन माधुर्यगुण और मधुर भाव वाला है। यह हँसती हुई, खिलखिलाती हुई, मुस-कयाती हुई, हाँफती हुई पगली और मतवाली रजनी है। यहाँ कवि ने 'भोली भाली छवि' की चपलता का बड़ा मनोहर अकन किया है। यह मुग्धा जैसी रजनी कामना की सुनहली साड़ी फाड़कर प्रतीप हँसती है, किसी टोने को पढ़ती हुई घूम-घूमकर चली जाती है, समीर के मिस हाँफती हुई-सी किसी के पास चली जाती है, विकल खिलखिलाती है जिससे तुहिन कणों, फेनिल लहरो मे अधेर मच जाती है, घूँघट उठाकर किसी को देखकर ठिठकती-मुसक्याती आती है, रजत कुसुम के नव पराग की इतनी धूल उड़ा देती है, अपने आँचल को नहीं सभाल पाती, और अंकिचन जगत इसकी भोलीभाली छवि लूट लेता है। इस वर्णन मे केवल सुन्दर भोली हँसी की चपल लीला को ही कवि ने अनेक सचारी बिबो से चित्रित किया है। केवल एक अनुभूति को उभारने की दृष्टि से यह सर्वोत्तम साक्षात्कार है। सहज और स्वाभाविक ! कितना छोटा-

सा सुभावना कराता है प्रकृति के 'व्यक्त' होने का। वस्तुतः यहाँ सुकुमार मार्गी कवि ने रमणी में हास्य के सात्विक बोध को उपस्थापित किया है। मधुर हास के माध्यम से भोलेपन, मतवालेपन, उत्कंठा, उद्विग्नता आदि की सूक्ष्म संवेदना को छुआ गया है, सूक्ष्मता और बारीकी की दृष्टि से यह कवि के कामबाला के विभव वाले सौंदर्य-वर्णन (श्रद्धा सर्ग) की बराबरी का है।

कवि के सुकुमार-मार्ग के बीच में वासना सर्ग के अंतर्गत कुछ शब्दचित्र मिलते हैं जिन्हें कालिदासीय अबोधपूर्वा स्मृति और पर्युत्सुकी भाव की भूमि पर अंकित किया गया है। यह चित्रांकन हमें आगे कवि के उस रमणीय सौंदर्य के कृतित्व के सिद्धांत की ओर ले जाता है जिसमें काम की लालसा और रति की लज्जा की बात मैत्री कराई गई है, रमणीयता और लोकोत्तरता का अन्वयन किया गया है, एव काम तथा रति के मिलन की भाँति सृजन की लीला तथा सृष्टि का मिलन कराया गया है। इन वर्णनों में वासना की मधुर छाया सौंदर्य का ज्योत्स्ना-निर्झर बन जाता है। इसमें अपरिचित रमणीयता के रहस्य को परिचित सौंदर्य की कामना (वासना) तथा धीरता के सृजनात्मक स्वप्न शासन से मिलाया गया है। काम तथा रति से रूपातरित होकर मनु तथा श्रद्धा देवदारु निकुंजो मे चाँदनी में घूमने निकलते हैं। माधवीयामिनी में माधवी की गंध और माधुरी छाया मे माधव का सरस कुतूहल दोनों का परस्पर समर्पित करा देता है। यह सकेतात्मक चित्रण है जो अप्रस्तुत-प्रशंसा जैसा मनु-श्रद्धा के अप्रस्तुत भावोपमानों का स्थान ले लेता है। हम इस नई प्रणाली को उद्दीपन कहने मे हिचक रहे हैं। यहाँ अवचेतन (unconcious) व्यापार भी अंतर्निहित हुआ है। यहाँ जो सरल हँसमुख चंद्रमा छोटे जलद खंड के रथ को सजा कर चला आता है वही आगे प्रणय-विधु होकर खड़ा हो जाता है नभ मे तारक हार लेकर। यहाँ पहले जिस श्रद्धा रूप ज्योत्स्ना-निर्झर की शोभा के सामने मनु की आँखें नहीं ठहरती, वही ज्योत्सना होकर देवदारुओं के निकुंजों मे निकल जाती है, और वही विमल राका मूर्ति बन जाती है। यह राका मूर्ति 'विभव मतवाली प्रकृति' है। श्रद्धा मनु से कहती है कि वे कुछ मत कहें, कुछ न पूछें और केवल मौन राका-मूर्ति को देखें। यह विमर्श (Suggestion) है जो मनु को श्रद्धा से मिलन के लिए अधीर बनाता है। प्रणय विधु तारक हार लिए हुए उनकी प्रतीक्षा करता है। इस तरह विधु और ज्योत्स्ना, मनु और श्रद्धा, काम और रति, वासना और लज्जा के चारों युगल समानांतर संग्रथित हो गये है। वस्तुतः इन चारों युगलो का अलग-अलग रूपायन, या चारों का एक साथ एक में रूपातरण करना एक सौंदर्य तत्वसिद्ध

और रचनाकौशलसिद्ध कवि का कार्य है। इस विलक्षण और अपरिचित मेल के द्वारा कवि प्रसाद ने अपनी सौंदर्यबोध शास्त्रीय गरिमा का चरमोत्कर्ष प्राप्त कर लिया है। सौंदर्य तत्त्व की दृष्टि से हम इसे एक रिनेसाँ-उपलब्धि मानते हैं क्योंकि इसी समीकरण पर 'कामायनी' के काम, वासना और लज्जा नामक तीनों श्रेष्ठ सर्गों की सृजनप्रक्रिया तथा प्रतीक-गाथा के सभी सूत्र खुल पड़ते हैं।

'प्रकृति' तत्त्व का अंतिम अभिधान आनद सर्ग में हुआ है जहाँ 'प्रकृति' विश्वसुदरी प्रकृति, और 'पुरुष' पुरातन पुरुष हिमालय हो जाता है (वह चन्द्र किरीट रजत नग स्पन्दित-सा पुरुष पुरातन)। यहाँ प्रकृति अति उज्ज्वलतम पावन तीर्थ है। यहाँ चिंता सर्ग वाली पाषाणी प्रकृति मांसल हो जाती है, जल एवं हिम से ढँका हिमालय पुरुष पुरातन की तरह स्पदित हो उठता है, और पंचभूतों वाली प्रकृति 'लय' होकर कल्याणी प्रकृति के रूप में हँस उठती है। यहाँ चिंता सर्ग की प्रलयमयी प्रकृति के बजाय लासरास निरत प्रकृति का सदर्शन है। लास्य गौरी का नृत्य है, और राग राधा का। इस तरह यह 'लासरास' एक शैव वैष्णव नृत्य का समन्वय है जिसमें 'महाभोग' और 'महाभाव' का समन्वय है। दर्शन सर्ग के आनद ताडव की तरह ही विश्व सुदरी कल्याणी प्रकृति का यह लास रास भी बेहद आध्यात्मिक एवं प्रतीकात्मक है। कुछ लोग इसे मधुमती भूमिका बताते हैं तो कुछ लोग सदाशिव तत्त्व की इच्छा शक्ति का प्राकृतिक रूपान्तरण। रहस्य सर्ग में त्रिपुर एकीकरण को करने वाली श्रद्धा त्रिपुर सुदरी [कामकला] की तरह महाकाल के विषम नृत्य को शान्त करती है जिससे श्रद्धायुत मनु तन्मय हो जाते हैं। आनंद सर्ग की विश्वसुदरी 'प्रकृति' से चेतना पुरुष का मिलन आनद शक्ति तरगायित करता है (चिरमिलित प्रकृति से पुलकित वह चेतन पुरुष पुरातन, निज शक्ति तरगायित था आनद अबुनिधि शोभन)। यह शैवाद्वैत शब्दावली में शिव-शक्ति की अद्वैतावस्था है। हम यहाँ कवि के ही प्रतीकों को समझें : कामायनी विश्व चेतना है जो पूर्ण काम की प्रतिमा है ; और प्रकृति विश्वसुन्दरी है जो मानगी गौरी है। साराश में, यहाँ प्रकृति लोकमगल की सिद्धावस्था के आनद का अखंड अनुभव है। इस अनुभव में सौंदर्य ही साकार हो गया है। यहाँ काम और वसत एक रूप हो गये हैं। यह कवि के समग्र काम दर्शन का निष्कर्ष है। तो, ऐसी प्रकृति में विश्व कमल के अणु-अणु क्षण भर में परिवर्तित हो गये। *यदि काम सर्ग में जीवन-वन में वसत-महोत्सव है, तो इस सर्ग* में विश्व कमल का [वसत में] आनद महोत्सव है। यहाँ बहता हुआ मधुर

गंधवह असंख्य मुकुलों का मादन विकास कर आया है तथा उनके अछूत अधरों का चुंबन भर लाया है; यहाँ वल्लरियाँ नृत्यनिरत हैं और सुगंध की लहरें बिखर रही हैं, मदमाते मधुकर नूपुर-से गूँज रहे हैं और वाणी की वीणा बज रही है; यहाँ उन्मद माधव मलयानिल दौड़े आ रहे हैं, हिमखंडों से टकराकर समीर अति मधुर मृदंग बजा रहा है, जीवन की मुरली बज रही है तथा कामना संकेत बनकर मिलन की दिशा बतला रही है; और वहाँ रश्मियाँ अप्सरायें बन गई हैं तथा हिमवती पाषाणी प्रकृति माँसल सी हो गई है। वह यह लासरास रचा रही है। इस तरह यह संपूर्ण चित्रांकन विश्व सुंदरी प्रकृति का 'लासरास' हो जाता है (कवि साध्य के अनुसार) यह लासरास ही सुंदर को साकार बना देता है, तथा अंततोगत्वा जड या चेतन को समरस कर देता है। इस लासरास में नृत्य, गान, संगीत आदि के साथ मिलन पर्व का रंगसंग्रह है। 'प्रकृति' के साक्षात्कारों के क्रम में यह 'लासरास' कवि की मौलिक तथा अंतिम संरचना है।

◉ सबसे अंत मे देवसृष्टि (संस्कृति) तथा मानव सृष्टि के दो विवरणात्मक आख्यान बच रहते है।

चिंता एवं काम सर्ग मे आये देवसृष्टि के वर्णन मे मूलतः उनके उन्मत विलास, केलि-क्रीडाओं, सुखभोग, शक्तिकेंद्रता आदि की सौंदर्यबोधात्मक आलोचना है। तदपि यह केलिक्रीड़ाओं, काम रहस्यों और ऐंद्रियिक शृंगार का एक काव्यात्मक कामसूत्र खंड हो गया है। फतह सिंह ने इस वर्णन मे संस्कृत की पौराणिक एवं क्लासिकल रचनाओं की छायाओं का भी निर्देश किया है। वह इसमे लालित्य योजना की मीमांसा करेंगे। इस संसृति में तृष्णा विकसित करने वाले 'काम', तथा तृप्ति दिखाने वाली 'रति' को मिलन से आनंद के संभाव्य अनुभव के स्वरूप को संकेतिक किया गया है। किन्तु अमर देवताओं के सौंदर्यबोध मे विनोद और विलास की नित्यता को कवि ने आद्योपांत रेखांकित किया है। कवि ने यह भी निर्दिष्ट किया है कि इस देव-सृष्टि की रानी रति थी (लज्जा सर्ग)। अतः विलास और विनोद इस वर्णन की सैद्धांतिक आधारभूमियाँ हैं। इस सृष्टि में काम देवताओं को उन्मत बनाता था, उनका सहचर था, उनके विनोद का साधन था और उनका कृतिमय जीवन था। इस सृष्टि मे रति सुरबालाओं के मन को गुलझाती थी, उनको तृप्ति दिखाती थी, वह रागमयी और मधुमयी थी। लेकिन कीर्ति, दीप्ति, शोभा के साथ केंद्रीभूत सुख (दुख का नाम नहीं) तथा शक्ति ने उस सृष्टि का विनाश कर दिया। यशों की ज्वाला और वासना की सरिता ने उस सृष्टि को समाप्त कर दिया। इस सौंदर्यतात्विक चिंतन के आधार पर कवि आगे बढ़ता है। वह

सुरबालाओं का शृंगार वर्णित है। उनके चरण अलक्तित और नूपुर रणित थे, उनकी कटियों पर हार शिथिल थे, उनके कपोलों पर कल्पवृक्ष का पीत पराग लेपित रहता था, उनके अंग वस्त्र सुरभि मय थे और वे कलरव से मुखरित रहती थीं। उन सुरबालाओं की हँसी उषा सदृश और यौवन ज्योत्स्ना-सा था। वे मधु सदृश निश्चिन्त विहार करती थीं। उनके सुरभित अलकों में जीवन के मधुकर विश्राम करते थे। इसी तरह देवता चिरकिशोर वयवाले और नित्य विलासी थे। उनकी सृष्टि में मधुपर्क अनंत बना था। वे कुसुमित कुंजों में पुलकित प्रेमालिंगनों में लीन रहते थे, मूर्छित तानों और बीनों में खोये रहते थे, सुरबालाओं के कपोलों पर उनके मुख की सुरभित भाप पड़ती रहती थी, उनके भुज-मूलों में सुरललनाओं के खोये गये शिथिल वसन और उनके अंग थके रहते थे। देवसृष्टि के उस अनंत यौवन में विगत सौरभ से पूरित रहता था तथा अनंग पीड़ा के अनुभव से अंग-भंगियों का नर्तन चलता रहता था। कवि ने इस चित्रण में प्रधान रूप से नयन और कपोल, चुंबन और आलिंगन के माध्यम से केलि के उत्तेजक संकेत दिये हैं। यह विनोद विलास कुसुमित कुंजों और रत्न सौध के वातायनों में घटित कराया गया है। मूल रूप से इसमें अंग-भंगियों का नर्तन प्रदर्शित हुआ है। कवि के उपर्युक्त वर्णन की सामग्री इस तरह-विभक्त है।

इसी धारा में कवि ने स्वप्न सर्ग में मानव सृष्टि का वर्णन किया है जिसका केन्द्र नगर है। यहाँ काम एव रति के युगल के बजाय श्रम एव संघर्ष का द्वंद्व-संयोग है। यहाँ देवताओं के स्वर्ग के बजाय मनु (मनुष्य) के नगर का निवेश है। यह निवेश थोड़ा बहुत संस्कृत काव्य-नाटकों के नगर-वर्णनों, तथा 'मानसोल्लास' 'समरांगणसूत्रधार, आदि में विहित पुर निवेशों जैसा भी प्रतीत होता है। इतिहासकार प्रसाद ने इस आधुनिक नगर का निर्माण भी मूलत मध्यकालीन बोध से किया है। इसके कुछ कारण ध्यातव्य है : मिथकीय कथापटल में वे इतिहास से आगे के समसामयिक पटल को (मूर्त रूप में) नहीं लेना चाह रहे हैं और इसी वजह से दर्शन सर्ग से दार्शनिक मध्यकालीनतावाद की ओर प्रयाण कर जाते हैं, आधुनिक पुर-निवेश आधुनिक बिंबों और उपमानों की अपेक्षा करेगा जिसके लिये निराला और पंत तो प्रस्तुत हो रहे थे किन्तु प्रसाद नहीं, इससे उनके जीवनपर्यंत के सौंदर्यबोध में भ्रांति हो जाती।

पहले इसका निर्माण चरण है जिसमें सामूहिक सहयोग, उत्पादन और सुख-साधन की हलचल वाले बिंब है। इस नगर का विन्यास स्वचेतन प्राणी

६ | 'मनस्तत्व' बनाम मनोविज्ञान

'मनस्तत्व' से हमारा व्यापक अभिप्राय वह दार्शनिक मनोविज्ञान (Philosophical Psychology) है जो आध्यात्मिक भी है, और जो शैवाद्वैत (प्रत्यभिज्ञा), सांख्य तथा वेदांत की पारिभाषिक शब्दावलियों में निवेदित हुई है। 'मनोविज्ञान' से हमारा प्रयोजन पात्रों और घटनाओं के अंतर्संबंधों-अंतर्संघातों से उत्पन्न चरित्र, व्यक्तित्व और मनुष्य के स्वभाव का आधुनिक विश्लेषण है। हम यह नही कहते कि मध्यकालीन दार्शनिक मनोविज्ञान पूर्णतः गलत थे। हमारा मत है कि शाश्वत दार्शनिक प्रत्ययों पर आरूढ होने के कारण वास्तविक स्थिति का विश्लेषण नही करते थे, और समाज एवं पर्यावरण के प्रभावों की उपेक्षा करते थे। 'कामायनी' में मनस्तत्व तथा मनोविज्ञान के द्वंद्वों ने काफी जटिलताएँ उत्पन्न की हैं। इसीलिए हमने इन दोनो के अंतर्विरोध को बरकरार रखा है।

मूल रूप से मनस्तत्व 'मन' का विषय है। मन को चैतन्य एवं चिदात्मक दोनों ही रूपों में स्वीकार किया गया है। इसलिए अद्वैतवादी दर्शन चैतन्य को केंद्र में लेते हैं, तो प्रमात्मक दर्शन चित्त को। शैवाद्वैत में विश्व को भी परमशिवात्मक माना गया है और उसमें प्रकृति-पुरुष का प्रतीकात्मक ढाँचा भी स्वीकृत हुआ है। इसलिए 'कामायनी' में शुरुआत अव्यक्त (अबुद्ध) प्रकृति से होती है, और समापन शिव-शक्ति के सामरस्य में। अतः हम प्रत्यभिज्ञा और अंतःकरण को केंद्र में रख कर इसका निरूपण करेंगे।

सभी (मध्यकालीन) आध्यात्मिक दर्शनों का तार्किक यंत्र (logical structure) कतिपय केंद्रीय धारणाओं पर टिका है : (i) मरणशील मनुष्य की सीमित चेतना के ऊपर एक अतिरिक्त शाश्वत चेतना का आरोप जिसे [illegible], प्रकाश, चैतन्य चिति आदि कहा गया है; (ii) जगत के कार्यकारणों [illegible] एवं [illegible] शृंखला के ऊपर एक पारलौकिक आदि [illegible] ब्रह्म या 'पुरुष' या 'शिव' का प्रक्षेपण जो मोक्ष, स्वर्ग, अप-

सत्ता, सृष्टि, प्रलय, मृत्यु आदि का अंतिम कारण हो और प्रभा, प्रमाण, लोक प्रवाह, ज्ञान, भ्रम आदि से परे हो; तथा (iii) नित्य प्रत्ययो की रचना के लिए देश (space) के अंश को तोडकर शुद्ध वस्तु प्राप्त करना, काल (Time) के अंश को तोडकर कार्य-कारण क्रम से मुक्त शाश्वत चमत्कार पूर्ण और अपरिवर्तनशील को प्राप्त करना, व्यक्ति (Person) के अक्ष को तोडकर अमूर्त एवं पूर्ण मानव की धारणा का अभिधान करना; और (iv) जागरण (Wakefulness) एव श्रम (labour) के अंश को तोड कर सुषुप्ति, समाधि, तन्द्रा आदि मे अद्भुत स्वत प्रकाश्य रहस्यात्मक अनुभव को जाग्रत एव कर्मरत अवस्था के ज्ञान से अधिक महान एव सत्य मानना । सभी भारतीय आदर्शवादी दर्शनो का तात्विक पक्ष इसी तरह का है । 'कामायनी' मे उपस्थापित प्रत्यभिज्ञा दर्शन भी इसी भांति का यथार्थवाद एव भौतिकता-वाद का विरोधी है । हम अनावश्यक दार्शनिक व्याख्याओ के अप्रासंगिक विस्तारो मे नहीं जाएगे । हम मूलत 'कामायनी' के सदर्भ वाले अंश ही लेंगे । हमारा अधिकाश आग्रह तो मनोविज्ञान पर होगा ।

भारतीय दार्शनिक मनोविज्ञान की मूल लौकिक भित्ति 'मन' है । मन अत करण का एक अंश है, तथा अन्त करण भी । मन से ही ज्ञान (काग्नि-शन), भावना या अनुभूति (फीलिंग) और सकल्प (विलिंग) उद्भूत होते है। इसका विशिष्ट व्यापार सकल्प है ।

शैवाद्वैत विशुद्ध आत्मदर्शन है जिसमे साख्य की 'प्रकृति' एव 'पुरुष' का द्वैत विलीन हो गया है । यह दर्शन जगत् अर्थात् 'इदम्' को ऊर्ध्वमुखी करके (उपाय) 'अहम्' या चैतन्य मे लीन करता है । अत यह जगत तक का विधान साम्य के अनुरूप मानता है । इसके ऊपर शिव (चित्) और उसकी शक्ति (आनद) का आरोपण होता चलता है । इस तरह साख्य की 'प्रकृति' का उच्चतर रूप 'माया' हो जाता है जो शुद्ध (अद्वय) है । इसी क्रम मे यह दर्शन साख्य के 'पुरुष' (अर्थात् पच कचुकों मे ढँके शिव) के ऊपर 'चित्त' तथा 'सद्विद्यारूप', 'ईश्वररूप', 'सदाशिवरूप' और अनत शिवशक्तिरूप आरोपित करता है । इन शक्तिरूपो मे शुद्धविद्या मे अहं इद की ऐक्य प्रतीति है (मैं=यह हूँ); ईश्वर मे अहं गौण एव इद प्रधान है (यह मैं हूँ), सदाशिव मे अहं प्रधान एव इद अस्फुट है (मैं हूँ), तथा शिवतत्व मे परमशिव का अहभाव है (मैं) । यह अतिम अवस्था अभेदतादात्म्य या सामरस्य की है । शक्तिभेद के अनुसार सद्विद्या रूप मे क्रियाशक्ति, ईश्वररूप मे ज्ञानशक्ति, सदाशिवरूप मे इच्छाशक्ति, तथा परम शिवशक्तिरूप मे चित्त एव आनद

६ | 'मनस्तत्व' बनाम मनोविज्ञान

'मनस्तत्व' से हमारा व्यापक अभिप्राय वह दार्शनिक मनोविज्ञान (Philosophical Psychology) है जो आध्यात्मिक भी है और जो शैवाद्वैत (प्रत्यभिज्ञा), सांख्य तथा वेदांत की पारिभाषिक शब्दावलियों में निवेदित हुई है। 'मनोविज्ञान' से हमारा प्रयोजन पात्रों और घटनाओं के अंतर्संबंधों-अंतर्संघातों से उत्पन्न चरित्र, व्यक्तित्व और मनुष्य के स्वभाव का आधुनिक विश्लेषण है। हम यह नहीं कहते कि मध्यकालीन दार्शनिक मनोविज्ञान पूर्णतः गलत थे। हमारा मत है कि शाश्वत दार्शनिक प्रत्ययों पर आरूढ होने के कारण वास्तविक स्थिति का विश्लेषण नहीं करते थे, और समाज एवं पर्यावरण के प्रभावों की उपेक्षा करते थे। 'कामायनी' में मनस्तत्व तथा मनोविज्ञान के भ्रमतों ने काफी जटिलताएँ उत्पन्न की हैं। इसीलिए हमने इन दोनों के अंतर्विरोध को बरकरार रखा है।

मूल रूप से मनस्तत्व 'मन' का विषय है। मन को चैतन्य एवं चिदात्मक दोनों ही रूपों में स्वीकार किया गया है। इसलिए अद्वैतवादी दर्शन चैतन्य को केंद्र में लेते हैं, तो प्रमात्मक दर्शन चित्त को। शैवाद्वैत में विश्व को भी परम-शिवात्मक माना गया है और उसमें प्रकृति-पुरुष का प्रतीकात्मक ढाँचा भी स्वीकृत हुआ है। इसलिए 'कामायनी' में शुरुआत अव्यक्त (अशुद्ध) प्रकृति से होती है, और समापन शिव-शक्ति के सामरस्य में। यभिज्ञा और

शक्ति का सामरस्य है। इस भांति शक्ति और आनंद का मिलन हुआ है। 'कामायनी' में चिन्ता सर्ग से इड़ा सर्ग तक के मनु सांख्य के अनुसार 'पुरुष' हैं। इड़ा सर्ग में (सकुचित असीम अमोघ शक्ति) मनु सत्य पुरुष हो जाते हैं, दर्शन सर्ग में जब वे नर्तित नटेश को देखते हैं तब उनमें शुद्धविद्या रूप का उपाय उदित होता है। रहस्यसर्ग त्रिलोक-ऐकीकरण के साथ वे ईश्वर रूप हो जाते हैं और अहं गौण हो जाता है (महाशून्य मे ज्वाला सुनहली सबको कहती 'नहीं नहीं सो')। आनद सर्ग के पूर्ण चरण मे मनु सदाशिव रूप होते हैं(मानव कह रे! 'यह मैं हूँ' यह विश्व नीड़ बन जाता!"); तथा परवर्ती चरण में चैतन्य एवं आनद का सामरस्य हो जाता है, एवं मनु चेतन पुरुष पुरातन हो जाते हैं समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था, चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था। इस तरह इड़ा सर्ग से मनु का अन्यापदेशिकरण (allegorization) शुरू होता जाता है और उनमें पात्रत्व अंश पदानुपात विलीन होता चला जाता है। क्योंकि शैवागमों की भक्ति भी अद्वैतमूलक है, इसलिए मनु–'पुरुष'–शिव होते हैं, और श्रद्धा–भक्ति हो जाती है। 'पुरुष' के पंचकंचुक (कला, नियति, काल, राग एव विद्या) सांख्य सृष्टि के उत्प्रेरक होते हैं इसी के ऊपर परमशिव की पच शक्तियाँ विश्वात्मा की अभिव्यक्ति करती हैं। इस दर्शन मे 'परिणाम' शिव मे न होकर शक्ति मे होता है। इस आनंदवादी रहस्यसाधना मे इच्छा (सदाशिव), क्रिया (शुद्धविद्या) एव ज्ञान (ईश्वर) की शक्तियाँ आनद एव चैतन्य रूप भी होती हैं क्योंकि वे शुद्ध, अद्वय और प्रकाश रूप हैं। ये ऊर्ध्वमुखी है।

कवि ने इनका भौतिकतावादी एव विषम स्वरूप रहस्य सर्ग के इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान लोको मे चित्रित किया है। इन्ही का घटनात्मक ऐतिहासिक स्वरूप कर्म सर्ग (इच्छा) इड़ा सर्ग (ज्ञान) एवं स्वप्न सर्ग (क्रिया) में निरूपित हुआ है। आनद सर्ग की समरसता के कट्रास्ट मे अकेले मनु और प्रजा की, जड और चेतन की, मनु के भोगवाद और सारस्वत प्रजातंत्र के विवेकवाद की विषमता का पूर्ण निरूपण हुआ है। इस तरह कर्म सर्ग से लेकर आनद सर्ग तक इच्छा-क्रिया-ज्ञान के जड एव चेतन भेद उभारे गए हैं। इनके बीच मे ही विषमता का निरूपण और समरसता का दिग्दर्शन भी जुड़ा हुआ है।

चिंता सर्ग से सघर्ष सर्ग तक सांख्य दर्शन के अनुरूप सृष्टि-तत्र के संकेत मिलते हैं। यहाँ विभिन्न शिवशक्तिरूपों के स्थान पर 'प्रकृति' के व्यक्त रूप हैं। शैवागमों मे प्रकृति माया मे लीन होती है और परमशिव माया के पंचकचुकों से अपनी अमोघ शक्ति को सकुचित कर लेता है। जिस तरह शिव

की शक्तियों में 'परिणाम' होता है, उसी तरह प्रकृति (पुरुष के संसर्ग से) 'व्यक्त' होती है। प्रकृति भूत (matter) है जो व्यक्त होने पर संतुलन का परित्याग कर देता है। अत. प्रकृति गतिशील शाश्वत भूत है और (अव्यक्त—) प्रकृति का स्वभाव ही सृष्टि है। पदार्थ का निहित धर्म नित्य न होकर परिवर्तनशील या 'परिणाम' है। अत कार्य मे ही बीजरूप कारण विद्यमान है। प्रकृति प्रधान 'कारण' है जो अचेतन (भूत) है। जगत का कारण प्रकृति है। जगत् की प्रत्येक वस्तु तीन गुणो के अस्थिर सयोग से बनी है। व्यक्त अवस्था मे इनमे वैषम्य होता है जिससे महत् (बुद्धि) तदुपरांत 'अहकार' उत्पन्न हुआ। इस तरह प्रकृति से महत् से बुद्धि से अहकार से मनस् से पच ज्ञानेंद्रियाँ और पच कर्मेंद्रियाँ उत्पन्न होते है। पचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) तथा पचतन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध) भी इसमे शामिल हैं।

सांख्य सृष्टि-तत्वो मे बुद्धि-अहकार-मनस् की त्रयी को 'अन्त करण' कहा गया है; और मन-पच ज्ञानेंद्रियो-पचकर्मेंद्रियो को 'मानस शरीर'। इस तरह 'मन' इनदोनो के बीच मे स्थित है; मन अन्तःकरण भी है और मानस शरीर भी। अन्तःकरण के तत्वो मे से बुद्धि निर्णय देने वाली है, अहकार चेतना देने वाला (अभिमान धर्मा) है, और मन सकल्प-विकल्प करने वाला है। मानस शरीर मे मन जगत को रचने की शक्ति है। मन जैसे जगत-कल्पना करता है वैसा ही जगत निर्मित हो जाता है। अत अहभाव को ही जगत का बीज समझना चाहिए। ज्ञानेंद्रियाँ 'आलोचन' करने वाली है। मन आलोचन पर सकल्प करता है। अत मन के अभिमान का स्वरूप है 'यह आलोचन और सकल्प करने वाला मैं ही हूँ।' इसी मन के रूपांतर से ही जागृति स्वप्न और भ्रम की अवस्थाएँ भी हैं। मन ही देहभाव धारण करके जगतरूपी इद्रजाल की सृष्टि करता है। अत करण के अतर्गत बुद्धि भूत, वर्तमान तथा भविष्य के विषयो का स्वरूप निर्धारित करती है, अहकार इद्रियप्राप्त विषय के संस्कारों को अहभाव से जोड़ता है, और मन भूत, वर्तमान तथा भविष्य विषयो को मिलाता और अलग करता है। अद्वैत वेदान्त मे चित्त को चौथा अन्त.करण माना गया है। चित्त का कार्य पूर्वानुभावो को याद करना है। सविकल्प प्रत्यक्ष मे भी मन की सकल्पात्मक अनुभूति काम करती है। इस तरह ज्ञान अन्त.करण का परिणाम ठहरता है। समग्र रूप से अन्त करण और मानस शरीर के व्यापार एव तत्व 'मनस्तत्व' के अन्तर्गत आ जाते है जिनमे मनस् केन्द्र मे होता है।

सकल्पात्मक मन का काम भावना है। सूक्ष्म मन भावना के दृढ़ होने पर स्थूल रूप धारण करता है। 'मैं कुछ हूँ' की भावना से मन मे अहंभाव उदित होता है। ज्ञानेन्द्रियों के आलोचन और कर्मेन्द्रियों के कर्म से वह सूक्ष्म शरीर होता है। इसी तरह स्पंदन करने के लिये प्राण का उदय होता हैं। तो, मनस्तत्व की ये ही प्रधान सीमाएँ और सभावनाएँ है।

'कामायनी' के आरभ मे ही गुरु-श्मशान की साधना करते हुए एक तपस्वी से तरुण पुरुष को पाते हैं जो भीगे नयनों वाला है नीचे खंडप्रलय का अवसान हो रहा है और 'अकेली' प्रकृति हँसती-सी पहचानी-सी हुई पुरुष की मर्म वेदना सुन रही है। यह 'प्रकृति' एव 'पुरुष' का पहला दार्शनिक संबंध है। इसके पहले पचभूतों के भैरव मिश्रण एवं ताडव नृत्य के फलस्वरूप प्रकृति महाभूत-सी हो चुकी थी। मनु भूत एव वर्तमान के विषयों को मिलाते-अलग करते अर्थात मनन करते है। फलत: उनमे इंद्रियप्राप्त के विषय के सस्कार बनते है (चिन्ता करता हूँ मैं जितनी उस अतीत, उस सुख की; उतनी ही अनन्त मे बनतीं जाती रेखायें दुख की) यहाँ चिन्ता एव मनन मनु की वृत्ति है जो सकल्प के ही सस्करण हैं। आशा सर्ग मे इसी चिन्ता अर्थात् बुद्धि (बुद्धि मनीषा मति आशा चिन्ता तेरे है कितने नाम) के बाद ही-'प्रबुद्ध' होती हुई प्रकृति हँसती (व्यक्त होती) है। मनु पुरुष प्रकृति के विराट् महत् शक्तिचिन्हो (सविता, पूषा, सोम, मरुत, पवमान, वरुण आदि) के प्रति आदिम अध्यवसाय (हे विराट ! हे विश्वदेव ! तुम कुछ हो ऐसा होता भान) उद्‌बुद्ध होता है। इसके बाद ही मन मे अहंभाव उत्पन्न होता हैं (मैं हूँ, यह बरदान सदृश क्यों लगा गूंजने कानो मे! " मैं हूँ . मैं ! हूँ" के ये सकेत जीवन की लालसा उत्पन्न कर देता है। इस अवसर पर समस्त प्रकृति सकर्मक हो जाती है और मनु मे अनादि वासना नवीन हो कर जागती है। अतः मनु (मन) जगत की सृष्टि की कल्पना करते है। श्रद्धा सर्ग मे हम जगत को रचने की शक्ति के सकेत पाते है (काम एव कर्म के माध्यम से) काम सर्ग मे काम मनु मे सकल्प-विकल्प पैदा करता है (सकल्प भरा रहता है उनमे सदेहों की जालों क्या है)। वासना सर्ग मे मनु की (मन की) भावना-के व्यापार माधवी निशा एवं मधुमय वसत के माध्यम से उन्मेष पाते है। इसी सर्ग में उनमे ज्ञानेंद्रियो का 'आलोचन' उद्‌बुद्ध होता है (चेतना इद्रियो की मेरी ही हार बनेगी क्या ?; .... पीता हूँ, हाँ मैं पीता हूँ यह स्पर्श, रूप, रस, गन्ध भरा)। यहाँ ही मन के व्यापार से स्वप्न अवस्था उद्भूत होती है जब स्मृतिरूप स्वप्न मे काम के देशकाल विमुक्त स्मृति प्रमोष का उद्‌घाटन

में भी चिन्हित मात्र हुई हैं। अतः वे मूल तत्वों की ही उपजीव्य हैं। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि महाकाव्य सांख्यदर्शन अथवा शैवाद्वैतवाद की काव्य-संहिता नहीं है। इसमें ये दर्शन मात्र प्रतीकों और नये अर्थों तथा मानवीय स्थितियों की नवीन व्याख्याओं के लिये ही प्रयुक्त हुए हैं। इसलिये स्वयं कवि ने ही मनु को कथाचरित्र, मानवता के विकास का रूपक, मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास, तथा मनन का प्रतीक—इन रूपों में विन्यस्त करना चाहा है। अत स्वभावतः 'मनस्तत्व' कुछ स्थलों एवं स्थितियों मे संकेतित ही हुआ है। अलबत्ता इन चारों रूपों की अन्विति के कारण मनोविज्ञान के आयाम अधिक प्रचुर, सुन्दर, और व्यक्तित्वोद्घाटक है। अतएव हम 'मनस्तत्व' से 'मनोविज्ञान' की ओर आते हैं।

'कामायनी' में मनोविज्ञान की भी कुछ सीमाओं की ओर पहले हम इशारा कर दें।

कवि सर्गों का नामकरण—चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म (पाडुलिपि मे, 'यज्ञ'), ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष (पाडुलिपि में, 'युद्ध'), निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनन्द—अमूर्त एवं प्रतीक ढग से किया है। इनमें से कुछ चित्रवृत्तियों के नाम हैं, कुछ कथा की घटना के केन्द्र हैं, कुछ दार्शनिक शब्द है और कुछ काव्यशास्त्रीय शब्द हैं। अतः इन नामों और नामरूपों मे प्रधानतः कथा एवं विचार का तालमेल है। अगर हम सर्गों के आधार पर मनोभावों के विकासक्रम को भी लेने लगेंगे, तो यह बेहूदी बात होगी। चिंता सर्ग मे ही बुद्धि (cognition), भय (fear), अहंकार, आशा आदि मिल जाएगे। इसलिये हमे मनोभावो के क्रमशः उदित एवं विकसित होने के इतिहास के इंद्रजाल मे नही भटकना चाहिए। हरेक सर्ग में मूलप्रवृत्तियों (instincts), मूलवृत्तियो (attitudes), संवेदनाओं (sensations), संवेगों (emotions), चिंतन (thinking), क्रियात्मकता (activity), आदि का अपना अपना भावन हुआ है। पात्र एवं परिस्थिति के परस्पर संघातों से ही मनोविज्ञान विकसित होता है, और कवि ने अपनी समझ से इन्हें यथास्थान प्रस्तुत किया है। अत. परिस्थितियाँ (situations) एवं आवेश (impulses) ही मनोविज्ञान की सार्थकता को बताते हैं। कवि ने अपने निराले ढंग से सर्गों में मनोभावो के पैटर्न गढ़े हैं। उदाहरण के लिये चिंता के साथ निराशा, अवसाद, विस्मृति, भय, जड़ता की वृत्तियों को; आशा के साथ विश्वास, कुतूहल, जीवनी-इच्छा, सहानुभूति, संवेदना, उल्लास आदि को श्रद्धा के साथ अनुराग, समर्पण, दया, माया, मधुरिमा, उत्साह, सांत्वना आदि को;

श्रद्धा के साथ मधुरता, समर्पण, उत्सुकता, उत्साह, आकर्षण, स्फूर्ति आदि को; वासना के साथ मृदुलता, स्नेह, ईर्ष्या, कौतुक आदि को, लज्जा के साथ मन की दुर्बलता, हृदय की दयनीयता, सात्विक अनुभावात्मकता, रोमांच, विराग, संकोच, आदि को; कर्म के साथ हिंसा, सुख, प्रभुत्व, अतृप्ति, अभाव, आदि को, ईर्ष्या के साथ विरक्ति, पलायन, कर्मप्रेरणा आदि को, इड़ा के साथ धर्मविवेक, बौद्धिक चिन्तन, आत्मचिन्तन, सामाजिक व्यवहार आदि को; संघर्ष के साथ प्रतिशोध, आधिपत्य, स्वार्थ आदि को; निर्वेद के साथ शांति को, दर्शन के साथ चराचर में इच्छापूर्ति आदि को; रहस्य के साथ रहस्यात्मक अन्यापदेश के अविवेकशीलता (irrationality) को; और आनन्द के साथ रहस्यवादी अनुभव (mystical experience) को सहायकों के रूप में निबद्ध किया गया है। यहाँ कोई विकासात्मक क्रम खोजना भीषण गलती होगी।

'कामायनी' में श्रद्धा, मनु, इड़ा, काम, रति, आशा, चिंता, मनु आदि को मानवीकृत (Personified) रूप में उन्मिषित करके कथाचक्र में चलाया गया है, तथा मनोविज्ञान में अन्यापदेशिकृत (allegorize) करके कहीं कहीं उनके तत्त्वों एवं प्रवृत्तियों का अनुशीलन भी किया गया है। यहाँ हमें अन्यापदेश के मनोविज्ञान का सामना करना पड़ता है। अन्यापदेश में पहले तार्किक क्रम स्थापन (साबिरन आर्डर) पहले बनाया जाता है, और घटनाएँ उसमें बाद में भरी जाती हैं। व्यवस्था पहले, दृष्टान्त बाद में। इसकी तुलना में प्रतीक (symbol) में अपूर्वकल्पित घटनाओं और उदाहरणों में से ही सीधे तार्किक क्रमस्थापन हासिल किये जाते हैं। 'कामायनी' के सदर्भ में प्रतीक एव अन्यापदेश के इस भेद पर नजर रखनी होगी। इस तरह अन्यापदेश के अंतर्गत व्यष्टि (पर्टीकुलर) को सामान्य (जनरल) का दृष्टांत मात्र हो जाता है। इसीलिए कृति मनु श्रद्धा और इड़ा के चारित्रिक पुनर्वास बड़ी मुश्किल से हो पाते हैं— टूटते बिखरते और द्वंद्व उत्पन्न करते हुए। अन्यापदेश में जो कर्ता (मनु) होता है वह हमेशा एक अवशनीय अधिकृति (compulsive possession) में बँधा होता है। मनु यहाँ यज्ञ और काम के अवशनीय व्यवहार में बंधे हैं। मनु का उस पर नियंत्रण नहीं है। फलत यह मनु को अविवेकगामी (इर्रेशनल) कार्यों की ओर मुखातिब करता है जो मनोविज्ञान के मानक में नहीं नापे जा सकते। मनु के सदर्भ में ज्वाला अवशता (compulsion) हो जाती है। सारे काव्य में ज्वाला एक *"नियत बिंब" (idee fixe) है।* इस *ज्वाला का* विन्यास कार्यकारण की शृंखला को बारबार तोड़ना है क्योंकि यह नियत बिंब यज्ञ

ज्वाला से वासना की ज्वाला और गुफा की काव्यसंधि की ज्वाला से भीषण द्वंद्व की ज्वाला मे रूपांतरित हो जाता है। अन्यापदेश में पात्र एवं घटनाएँ अलगाव (isolation) को भी झेलती हैं। अतः समाज और इतिहास से अलग होकर ये अन्यापदेशों का ब्रह्माण्ड (cosmos) रचती हैं। यहाँ पुरुष से लेकर शिव तक ब्रह्माण्ड, त्रिलोक यात्रा आदि इसका उदाहरण है। फलतः अन्यापदेश मे आन्तरिक द्वंद्व प्रबल हो जाया करते हैं जिसके लिये दुहरे,तिहरे प्लाटों की जरूरत पड़ती है। कामायनी में इतिहास, रूपक, मनोविज्ञान के आयामों पर भी मूल प्लाट की यात्राएँ होती हैं। इसका परिणाम होता है (ambivalence)। कर्मसर्ग की अर्थभ्रांतियाँ इसका उदाहरण हैं (श्रद्धा के उत्साह-वचन, फिर काम प्रेरणा मिल के; भ्रांत अर्थ बन आगे आये बने ताड तिलके)। इस तरह आतंरिक द्वंद्व, तद्भूत अर्थ की एवं दुहरे-तिहरे प्लाट-तीनो अन्यापदेश का मनोविज्ञान हैं। इसीलिये आशा, काम या - रति या लज्जा (जो स्वय मे मनोवैज्ञानिक तत्त्व है) का पुनश्च मनोवैज्ञानिक आकलन ... उत्पन्न करता है। हमने रसदर्शन की मीमांसा के प्रसंग में इस समस्या को साधारणीकरण द्वयता माना है। इसी अन्यापदेश के मनोविज्ञान के कारण जब इतिहास एव संस्कृति के पटल क्षीण हो जाते हैं, तब कर्ता अन्यापदेशों के ब्रह्माण्डीय क्रमस्थापनों का केन्द्र हो जाता है (अन्तःकरण में मनन केंद्र, त्रिलोक में मध्यबिंदु)। अतः चरित्र मे शाश्वतता का यह संस्थापन विशिष्ट (पर्टीकुलर) के मनोविज्ञान को नुकसान पहुँचाता है।

'कामायनी' मे काम का निरूपण कामकला के संदर्भों मे हुआ है। लेकिन हम इसकी मनोविश्लेषणात्मक (psychoanalytical) मीमांसा भी कर सकते हैं। यहाँ ये दो दृष्टिकोण उलझनें अवश्य पैदा करते हैं। वासना सर्ग में अहंभय और अहपूजा का अनूठा अंतद्वंद्व चलता है। इसी तरह लज्जा सर्ग में रति नारी का अवचेतन, एव लज्जा उसका चेतन बनकर बड़ी अनुपम मनोवैज्ञानिक छायाओं मे संगठित होते हैं। काम के ही वासना, आकर्षण, सौंदर्य, उत्तेजना, मादकता, लज्जा, स्नेह आदि मे निरूपित होने के प्रकरण एक उत्तम मनोवैज्ञानिक कोष रचते है। लेकिन हमें साथ - साथ इनके मिथकीय प्रत्याख्यानो पर भी नजर रखनी होगी।

इन प्रत्याख्यानो मे मिथकें गुथी हैं। मिथक और मनोविश्लेषण का गूढ़ संबंध है। मिथक मानवता के शैशव के आदिम मनुष्य के अवचेतन के उद्घाटन हैं। 'कामायनी' मे देवसृष्टि, देव—दानव द्वंद्व, काम और रति की जीवनियाँ, शिवशक्ति का सामरस्य इत्यादि ऐतिहासिक बात के बजाय मिथकीय

काल (Mythic Time) में घटे हैं। इनमे आदिम मनोवृत्तियां (Primitive instincts) हैं जो धारणात्मक तत्व एवं कलात्मक सृजन का मेल करते हैं। ये मिथक मौलिक अवचेतन फान्तासियों के अवगुंठित प्रतिनिधि हैं। कवि ने इनमे यौनवृत्ति (सेक्सुअलिटी) तथा कर्मकांड (रिचुअल) का मिलन है। इनमे सर्व प्रधान होता है विश्वास। कवि ने मिथक स्वभाव के अनुशासन मे ही श्रद्धा को केन्द्र मे प्रतिष्ठित किया है। श्रद्धा नैतिक मन (सुपरइगो) का उदात्तीकरण भी है। अत. काम की मूलवृत्ति भी 'सश्रद्ध काम' के रूप मे प्रतिष्ठित हुई है। इसी तरह आत्मपूजक देवताओ और विवेकपूजक भौतिक असुरो के मूल द्वंद्व को कवि ने श्रद्धा और इडा के चारित्र्य मे ढाल दिया है। कवि ने मिथक के त्रिकाल प्रवाह का इस्तेमाल किया है कथा को रूपकत्व देकर। इस तरह उनका मूल कथा रूप विलुप्त-सा हो गया है, और विचारमूलक प्रेरक रूप बच रहा है। इसलिये हम इडा (thinking) और श्रद्धा (Conation) के मनोविज्ञान मे मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता के बजाय आरोपित अवशता (Compulsion) पाते हैं। फलत. इनका क्रियाकलाप भी अवशनीय व्यवहार (बिहेवियर) वाला है। कथासृष्टि मे ये व्यवहार कर्मचक्र, सस्कार, नियतिचक्र, भावचक्र आदि के सिद्धांतो मे गुथ गये है। इसी वजह से केंद्रीय पात्र मनु में मनोवैज्ञानिक चिंता और अकेलापन छाया हुआ है जो विचार—आक्रांति (थाट—ओब्सेशन) के प्रतिफलन है।

इस तरह 'कामायनी' मे मनोविज्ञान की ये सीमाएँ, एव सभावनाएँ भी हैं। यह मनोविज्ञान मिथक, आध्यात्मिक प्रतीको एवं अन्यापदेश से सीमित एव अवशनीय एवं आक्रात है। जब हम इस निरूपण मे मनोवैज्ञानिक शब्दों का व्यवहार करते हैं तो यह चौकने की बात नही है। न्यूटन के पहले भी गुरुत्वाकर्षण था, आइस्टाइन के पहले भी सापेक्षता थी, मार्क्स के पहले भी ऐतिहासिक भौतिकवादी नियम थे। इन विचारको ने इन्हे खोज कर सिद्ध कर दिया। इसलिये 'कामायनी' मे मनोविश्लेषण के भी कुछ तत्व प्राप्त हो सकते हैं।

इस सदर्भ मे सर्वप्रथम हम प्रसाद के सृजनात्मक मनोविज्ञान से भी अवगत हो लें। आनन्दवादी प्रसाद के मनोजगत मे आनन्द तथा वेदना के घ्रुवांत हैं। वे वेदना को यथार्थबोध का मूल भाव मानते हैं जो जन साधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति को ग्रहण करता है। इसमे मनुष्य की दुर्बलताएँ अनिवार्यत: होती हैं। इसकी तुलना मे वे आनन्द को मानवता का आदर्श मानते हैं जो उसे पूर्णकाम करता है। अत. वे वेदना के आधार पर आनन्द की अभिव्यक्ति करते हैं। वेदना उनका ऐतिहासिक यथार्थवाद भी है, तथा आनन्द चिर-

किन्तु ऐसे अविरोगामी कार्य मनु में आगार पैदा करते हैं । इसीलिए श्रद्धा की पूजा को रखते समय भी मनु विराट् परिवर्तन धारा से अलग भटक जाते हैं, और इड़ा के साथ बलात्कार करने के बाद जीवन-अकेले हो जाते हैं । किन्तु यह प्राकृतिक मनु पाप-पुण्य, अहिंसा-करुणा की सामाजिक भावना से भी विमुक्त है। और जब वह सामाजिक यथार्थ सामना करता है तो उसका अहं-आदर्श अहंकार में ढल जाता है, औ अहंकार आदर्श की रक्षा के लिए वह व्यक्ति स्वातंत्र्य की ढाल लेता है। फिर मुक्त मनु 'निरबंधन हीन' हो जाते हैं। इस रूपांतरण में पुनः उन्हें का सामना करना पड़ता है जो जलन और अंतर्दाह के रूप में उत्तेजित है। यही चिंता (इड़ा सर्ग में) आत्मचिंतन भी बनती है। प्रकृति से करने वाले सामाजिक मनु, तथा राज्य एवं समाज की व्यवस्था के बनाने वाले प्रजापति-नियामक मनु एक तो स्वयं को समाज से भी उत्तम मानव मानते हैं, और दूसरे नियम-परतंत्र नहीं होना चाहते। अपनी लय गतिमय होते हुए उन्मुक्त विश्व की तरह वे भी अपनी मुक्त-लय पर 'स्वच्छ रहना चाहते हैं। अतः मनु प्रकृति से संघर्ष करने से अधिक समाज से करने लगते हैं और अराजकता को चिर-स्वतंत्रता बनाना चाहते हैं। सारांश उनकी व्यक्तिचेतना रागपूर्ण होने के कारण स्वतंत्र है, लेकिन द्वेष-पं सनी-रहने के कारण परतंत्र भी है।

काम के मनोविज्ञान (Psychology of Sex) के निरूपण में मि भूमिका सक्रिय रही है। कवि ने काम और रति के मिथकी प्रतीकों, न और रति के चिरंतन प्रतीकों के भी माध्यम से काम का मनोविज्ञान एवं सौंदर्य बोधशास्त्र उद्घाटित किया है। काम तृष्णा का, रति तृप्ति का, लज्जा गौ शालीनता एवं सौंदर्य विलास के प्रतीक होकर भी आते हैं। इन तीनों संयोग से कवि ने 'कामकला' या 'प्रेमकला' की धारणा को प्रस्तुत किया है जो प्रकृति एवं सृष्टि की मूलशक्ति है। इसी तरह कवि ने आकर्षण को रति उद्भूत माना है। रति को अनादि वासना भी कहा है। कवि ने काम सर्गेच्छा का परिणाम माना है। काम में इच्छा, मोह, उन्माद, विनोद और तृष्णा अनुस्यूत हैं। अतः रति-काम के युगल को कवि संस्कारित और मान-वीय 'मंगल काम' के रूप में प्रतिष्ठित करता है। वासना के अंतर्गत कवि ने वासना के सुकुमार रूप स्नेह की तरलता और स्निग्धता और शीतलता को उभारा है। वासना में मिलन, आकर्षण और समर्पण को मिलाकर प्रेम के महाभाव को उभारा ... इस उत्थान में काव्यशास्त्रीय विभावानुभाव क्रम तथा

चतुर्विध अभिनयानुभावों को भी संश्लिष्ट किया गया है। लज्जा सर्ग मे एकातिक रूप से नारी की आत्मरति (Narcissism) का आत्मपीडन रति (Masochism) मे क्रातिकारी गूढ परिवर्तन निर्दिशित हुआ है । यहाँ रतिमूलानारी (Erotic Woman) के कर्तव्यमूला नारी (Dutiful Woman) मे परिवर्तन की, तथा अवचेतन के चेतन मे स्थापन की धारणाएँ भी अभिव्यंजित हुई हैं । मूलत: कवि ने दमित कुंठाओ के उद्भूत यौनवृत्ति(Sex) के फ्रायडीय चक्र के स्थान पर आकर्षणमयी अनादि वासना रति से निसृत आनुरता-उत्कंठा के आधार पर ही 'सुकुमार वासना रति' का उदात्तीकरण एवं नैसर्गिक स्वरूप ही प्रस्तुत किया है । कर्म सर्ग के अत में मनु श्रद्धा के मिथुन की मादक एवं उत्तेजक सुरति क्रिया भी अकित हुई है ।

इसी सांस्कृतिक काम के साथ, इसमे ही निसृत सौदर्य के मनोविज्ञान (Psychology of Beauty) की दिशाएँ उभरी है । कवि ने काम एवं सौंदर्य के मनोविज्ञान को अंकित करने मे प्रत्यभिज्ञा तथा स्मृति तथा कल्पना- इन तीनो का व्यवहार किया है । प्रत्यभिज्ञा मे भूतकाल मे अनुभूत वस्तु का स्मरण होता है और वर्तमान काल मे उसका प्रत्यक्ष होता है । अत प्रत्यभिज्ञा मे वर्तमान वस्तु का प्रत्यक्ष भूत के अनुभवो के आधार पर होता है । भूतकाल के अनुभव हमारे मन मे सस्कार रूप मे पडे रहते हैं जिनका ज्ञान नही रहता। लेकिन उद्बोधक कारण से ये सस्कार जाग जाते हैं । अत. स्मृति सस्कार से उत्पन्न ज्ञान कही गई है । स्मृति कभी पूर्वानुभव का अतिक्रमण नही करती । इसकी तुलना मे कल्पना पूर्वानुभव के बधन से परे स्वच्छद होकर वस्तुओं की नई नई रचनाएँ करती है । काम के निरूपण मे कवि ने देवसृष्टि के पूर्वानुभवों की प्रत्यभिज्ञा कराई है लेकिन उसे कल्पना से नवीन भी बनाया है । इसी तरह सौंदर्य भी 'अनत रमणीय' की मानवकृत प्रत्यभिज्ञा है । सौंदर्य का एक सूत्र रति के आकर्षण की लीला से जुड़ा है, तो दूसरी ओर विश्वसुंदरी (विश्वात्मा) प्रकृति की कुतूहल माया से । प्रकृति–रमणीयता मे अलस चेतना का कुतूहल रहता है (उदात्त), लेकिन मानवीय एव मानवकृत सौंदर्य मे चेतना का उज्ज्वल वरदान (सुषमा) । ये कवि की ही सस्थापनाएँ है । कवि ने दोनो प्रकार के सौंदर्यबोधो को आकर्षण (रति) के रहस्य (प्रकृति), तथा रहस्य के आकर्षण से अनुस्यूत करके मूलभावना और मूलशक्ति इन दो मे सौंदर्य के श्री एव समृद्धि वाले स्रोत ढूढे है । कवि ने मानवीय एव मानवकृत सौंदर्य को इन्द्रिय - चेतना का विशेष (उज्ज्वलमय) एव मगलमय (वरदान) कृतित्व माना है जो आतरिक अभिलाषाओ को उद्बुद्ध करता है । कवि ने सौंदर्य के अभिज्ञान को रहस्यात्मक

अनुभव के क्षेत्र में भी सवाहित किया है। किन्तु सौंदर्य—साक्षात्कारों के प्रसंगों मे कवि के द्वारा रंगों का प्रयोग, रेखाओं की रचना तथा अंगो (नखशिख) का वर्णन कवि के मनोवैज्ञानिक रहस्यो को खोल देता है। प्रसाद ने मूलतः झुकी हुई, वेलदार रेखाओं, वर्तुलाकार उभारो के प्रति आसक्ति दिखाई है। जो उसकी सुकुमार शरीर रचना की कल्पना का द्योतन करती हैं। कवि ने लाल मुख, नीली अलसाई आंखो, कांपते सूखते अधरों, भुजमूलों और हांफते-उसांस भरते हुए वक्ष के पीन पयोधरो का सर्वाधिक चित्रण किया है। रति क्रियाओं में आलिंगन और चुंबन की अधिकाई है। रंगों मे नीला और लाल (अवचेतन और उत्तेजकता), काला या धनश्याम और धवल (वेदना और उल्लास) के युग्म सर्वाधिक आए हैं। इसी प्रकार रजनी के पिछले प्रहर, तंद्रा, आलस्य, अलसाई, उन्माद, विस्मृति, नील आवरण आदि शब्द महाकाव्य के प्रारंभिक दो तिहाई खंड मे भरे पड़े है जो कवि के सूक्ष्म आभ्यंतर भावों के अवचेतन स्पर्श से पुलकित हो उठे हैं। इन शब्दों मे ही कवि का अवचेतन, तथा अर्थमीमांसक मनोविज्ञान (Semantic Psychology) प्रस्फुटित होते हैं। स्वानुभूति को शब्द प्रकट कर सकते हैं, अर्थ नही। यही ऐहसास पंडित राज जगन्नाथ को भी हुआ था। अनिर्वचनीय अनुभूति की अभिव्यक्त करने मे या तो व्यंजना निखरती है, अथवा अर्थ भ्रांति। कर्म—सर्ग मे मनु के अविवेकगामी कार्य आन्तर मनोद्वंद्व मथते हैं। अतः कुछ शब्द मात्र अर्थभ्रांति (Ambivalence) पैदा करते हैं जो अन्यापदेश का मूल बनती है ('श्रद्धा के उत्साह वचन फिर काम प्रेरणा मिल के, भ्रात अर्थ बन आगे आये बने ताड थे तिलके'; तथा 'बन जाता सिद्धांत प्रथम फिर पुष्टि हुआ करती है'); यथा, सोमपान की यज्ञ 'ज्वाला' कर्म की ज्वाला (अतर्दाह) तथा वासना की ज्वाला में परिवर्तित होती है; ज्ञान से सत्य विकृति होती है; अनसुंख से अतर्दाह की भ्रांति उत्पन्न होती है; सोमपान के क्षण की अमरता सुख की क्षणिकता हो जाती है; अतीत वर्तमान का अभाव हो जाता है; श्रद्धा का बोध छल हो जाता है; मिलन का अर्थांतर भोग हो जाता है; इत्यादि। इन अर्थभ्रांतियों से ही आगे दुहरे तिहरे प्लाट प्रकट होते हैं और आन्तरिक मनोद्वंद्व ब्रह्माण्ड के अन्यापदेशिक पदम (त्रिलोक, कैलाश, सारस्वत नगर आदि।) पर परामनोवैज्ञानिक कार्यकारणक्रम का आभास उत्पन्न करते हैं।

सारस्वत नगर में मनुष्य के आत्मपरायेपन का सामाजिक मनोविज्ञान (social Psychology of self alienation) भी परिकल्पित किया जा सकता है। पंगत्व एव विच्छिन्न, विरमुक्त एव विरमकेले मनु जब सामाजिक

दस्तर्दन के स्तरों से हटते हैं तब उन्हें प्राकृतिक स्वच्छता और आदिम सुरक्षा के स्थान सर्व एक स्तरों के फलस्वरूपों में पनिगम पाता है। भिन्न-भिन्न सामूहिक क्षेत्रों में इस एक इन से स्वरूप मनु अपने को निर्वासित, निराश्रित और प्राकृतिक नहीं बना पाते। अब वे अकेलेपन और अजनबीपन के शिकार होते हैं; उनमें स्वभाव तथा प्राकृतिक संस्कृति में कोई भी राग एवं प्रेम नहीं मिलता-जुलता, वे आत्मनिर्वासित होकर अपने स्वार्थ एवं विराग के लिये अपने समग्र परिवेश से पृथक हो जाते हैं। सामाजिक आवासों में उनकी यह विफलता (frustration) आक्रामकता (aggrassion) में प्रतिफलित होती है। मनु का अस्तित्ववादी (existential) आत्मनिर्वासन भी है जो चिन्ता सर्ग से लेकर सर्ग तक कुण्ठा, अस्तित्व एवं मृत्यु की यदी में भय और चिन्ता के रूप में विघुलहन होता है। यहां मनु अस्तित्व की ज्वाला और नियति के अभिशाप से दहित हैं।

आध्यात्मिक अनुभवों का मनोविज्ञान(Psychology of Religious experience) भी दर्शन सर्ग से उन्मीलित होता है। यहाँ कान्तासीय अन्यादेशों की निर्मितियाँ हुई हैं। यहा मिथकों के सामूहिक अवचेतन का अवमुंसी मथन हुआ है और धार्मिक प्रतीक दिवास्वप्नों का इन्द्रजाल रचते हैं। यहाँ मध्यकालीन दर्शनों का वह चतुर्विद तार्किक यत्र (logical structure) लागू हो जाता है जिसकी चर्चा इस अध्याय के आरम्भ में हो चुकी है। यह अनुभव रहस्यात्मक एव लोकोत्तर है जिसमे मनोवैज्ञानिक कार्यकारण शृंखला के बजाय चमत्कार और उन्मेष का 'प्रकाश' है; इसमे ज्ञान के बजाय स्वानुभव का आहरण हुआ है; इसमे 'प्रत्यक्ष' के बजाय सुषुप्ति स्वप्न एव इन्द्र जाल के विकल्प अधिक प्रामाणिक हैं, और इसमे मानवीय अनुभव के धरातल पर दिव्य अनुभवों की पारलौकिकता तथा अतिमानवीयता का आरोपण हुआ है। इस तरह के आध्यात्मिक अनुभवों का क्षेत्र नृतत्वशास्त्रीय (एथ्रोपोलाजिकल) भी है। अत: इसमे टैबू, मिथक, कर्मकाड जादू, निषेध (इसेस्ट) प्रजाति (sib) आदि के आदिम तत्त्व भी अनुस्यूत हैं। अत महाकाव्य के इन अशों मे तांत्रिक, यौगिक शाक्त एव शैव ढगो के मेल जोल से त्रिभुवन, त्रिलोक का ऐकीकरण, कैलाश की मानसी-गौरी, शिवतत्व मे लीन विश्व सुन्दरी प्रकृति, आनन्द की सामरस्यावस्था आदि के अलौकिक अनुभवों की कोटियाँ उन्मीलित हुई हैं। इनमे यात्रा, मिलन और समाधि परक रूपक दिशाओ मे इन अनुभवों के भेद पुलकित एव उन्मिषित हुए हैं।

इस कड़ी के सबसे अत मे हम परिपूर्ण मनुष्य (Perfect man)

तथा निर्विकल्प मानस (Absolute mind) की धारणाओं का कलाचित्र रोमांटिक अभिषेक पाते हैं। इसे हम प्रसाद का 'अंतर्मुखी मानवतावाद' कहेंगे। यह इतिहास के सांस्कृतिक बिंबों संस्कृत काव्यों के चरित्रों आध्यात्मिक, आदर्शों तथा कवि की यूतोपियाई आकांक्षाओं के चतुष्टय से रच गया है। इसमें पूर्ण मनुष्य में भोग एवं योग का समन्वय है, उसके अंतर्जगत में इच्छा-क्रिया ज्ञान का ऐकीकरण है, तथा पूर्णकाम मन का अमृतमय (आनन्द वाला) संपूर्ण संसार है। यह सृष्टि व्यक्ति मोक्ष पर आधारित है और इस सृष्टि का एक नैतिक आदर्श (ethical ideal) है ऐसे निर्विकल्प मानस में सामाजिक प्रक्रियाएँ कोई असर नहीं करतीं। सामाजिक यथार्थता का अतिक्रमण हो जाता है, और सामाजिक परिवर्तनों की विषमता, पीड़ा, द्वंद्व, संघर्ष आदि समाप्त हो जाते हैं। इस अमूर्त मानवता (abstract humanity) में मूर्त मानवीय यथार्थ, और उसकी वेदना, अभाव तथा पतन सहसा चमत्कार से खत्म हो जाते हैं। इस तरह ऐसे परिपूर्ण मनुष्य के निर्विकल्प मानस में देश एवं काल एवं व्यक्ति एवं श्रम के सभी आयाम पर्यवसित हो जाते हैं। यह अंग होकर भी अंगी हो जाता है। अस्तु।

अतः 'कामायनी' में मनस्तत्व और मनोविज्ञान की ये भूमिकाएँ उदाहरण के लिये एक बहुत बड़े अप्रासंगिक विस्तार की अपेक्षा रखती हैं। पहले इन्हीं सही दिशाओं को समझना अनिवार्य है। हमने यही किया है।

---

७ | 'काम' और 'रति' की संस्कृति

समाज गठन, सामाजिक प्रक्रिया, सामाजिक शक्तियों और सामाजिक परिवर्तन के प्रति प्रसाद का दृष्टिकोण रोमांटिक, व्यक्तिमुखी, मनुष्य के नैतिक मोक्ष वाला, तथा आधुनिक जगत की हलचलों एव विप्लवों से संदेहयुक्त पलायन करने वाला रहा है । हम उनकी विचारधारा (idcology) तथा कल्पलोक (utopia) के अभिधानों में इसे स्पष्ट करेंगे । किन्तु 'काम' के दर्शन तथा मनोविज्ञान के निरूपण में प्रसाद ने भावकल्पों और राग-कल्पों की कई अछूती मादक ऊँचाइयों का स्पर्श किया है । सृष्टिमाया तथा सौंदर्यछाया, और प्रणयलीला तथा आकर्षण क्रीड़ा के चारों आंचलों में उन्होंने अपने 'काम' एव 'रति' के दर्शनतत्त्व और मनोविज्ञान का विनयन (कला विलास के द्वारा) प्रदर्शित किया है । कवि का यह इन्द्रजाल हमें अवश्य मन्त्रमुग्ध कर लेता है ।

देशिकरण (allegorization) की शिल्प-विधियाँ अपना कर कवि ने काम के विभिन्न स्वरूपो तथा दशाओ को एक निर्विकल्प, आर्केटाइपल, वैश्वक और चितिनित्य भूमि में अभिषेकित किया है। इन तीन सर्गों के अलावा श्रद्धासर्ग, सघर्षसर्ग, आनन्दसर्ग मे भी काम दर्शन के कुछ सूत्र फैले हैं।

हम पहले इन तीन सर्गों की त्रयी की विचार वस्तु (थीम) को सूत्ररूपों में निवद्ध कर लें। ये तीनों सर्ग मधु और माधव काम और रति, पुरुष और नारी, रति और लज्जा–इन चार युगलों को क्रमश: अमूर्त (abstract) एवं प्रतीक (symbol) के द्वारा नरिआंकित करते हैं। इनमे देश (space) तथा काल (time) के आयाम शिथिल है। अत: ये धारणाएँ आर्केटाइपल एव वैश्वक (यूनिवरसॅल) भी हो गई है। इन सर्गों के ग्रहण के धरातल स्वप्न, अलस चेतना (उपचेतन) तथा अन्तर्निहित छाया (मायावरण या इल्यूजन) वाले हैं जो इनको शिल्प के बिल्कुल नये - नये सामर्थ्यों से समृद्ध कर देते हैं। इनमे से कामसर्ग मे 'काम' का दर्शन, वासना सर्ग मे सेक्स का क्रांतप्रवर्तन तथा लज्जा सर्ग मे नारी के समग्र मानस का त्रिचेतन-स्तर पर मनोविज्ञान अभिभावित हुआ है। इस त्रयी में से कामसर्ग मे काम का वसतलोक (स्वप्न), वासना में प्रणय लोक (अलस चेतना) और लज्जा सर्ग मे नारी का अंतर्लोक विकसित हुआ है। इसी को रूपायित करने के निमित्त कामसर्ग मे मधुमय वसंत का चित्रण, वासना मे देवदारुओ पर चांदनी का चित्रण और लज्जा सर्ग मे नारी के अंतर्भूत अनुभावित नखशिख का सूक्ष्मांकन हुआ है। सम्पूर्ण महाकाव्य मे से इस सर्ग - त्रयी में ही इतनी विविधता तथा विपुलता और परिपूर्णता (भी) है।

6 शैवाद्वैत मे शिव एव शक्ति (गौरी) के साथ 'पुरुष' रूप को साख्य दर्शन से, और 'माया' को वेदात से ग्रहण किया गया है। इसमे माया भ्रम न होकर शिव की एक शक्ति है जो प्राण शक्ति का स्वरूप धारण करती है। तब वह बुद्धि एव देह पर निर्भर होती है। अतएव माया चित् शक्ति द्वारा सचालित होकर विश्व सृष्टि करती है।

इन शैवशाक्त दर्शनो मे 'नाद' एवं 'बिंदु' की धारणाएँ प्रकट हुई हैं। सारे विकल्पों से मुक्त शिव 'नाद' के प्रतीक को ग्रहण करता है। जब शक्ति से शिव की ओर प्रयाण होता है तब नाद की धारणा उभरती है। और, जब शिव से शक्ति की ओर प्रयाण होता है तब बिंदु की धारणा उभरती है जहाँ शिव अहंरूप में प्रकट होता है और बाह्य में फैलता है। यह सदाशिव अवस्था अहं प्रधान है। इनमें से नाद और प्रधान बिंदु बनते हैं। बिंदु में क्रियाशक्ति

सक्रिय होती है। 'बिंदु' शिव प्रधान है; 'नाद' में शिव शक्ति का सामरस्य है, तथा 'बीज' शक्ति प्रधान है। इस तरह 'बिंदु' 'बीज' और 'नाद' के प्रतीकों का यह व्यापार रचा गया है।

प्रकाश एवं विमर्श की ऐक्यता को 'काम बिंदु' माना गया है। यह सूर्य रूप है। विमर्श के अंतर्गत प्रकाश एक श्वेत बिंदु (चंद्रा) है, तथा प्रकाश के अंतर्गत विमर्श एक लालबिंदु (अग्नि) है। इस तरह यह एक अर्तविनिमय है। श्वेत बिंदु और लाल बिंदु का मिलन ही 'काम' है। ये दोनों बिंदु काम की 'कला' हैं। अतएव प्रकाश और विमर्श और काम का मिलन 'काम-कला' है। इस कामकला से ही शब्द और वस्तु रूप संपूर्ण 'सृष्टि' उत्पन्न होती है।

'कामायनी' में उपरोक्त प्रतीक-व्यवस्था के बड़े क्षीण संकेत हैं जो कथा-सृष्टि में इतिवृत्त होकर फँस गये हैं। आशा सर्ग में मधुर प्राकृतिक भूरा के समान मनु में 'अनादि वासना' नवीन होकर जागती है। इसके उपरांत तारे के व्याज से सात्विक शीतल 'बिन्दु' के दर्शन होते हैं। श्रद्धा सर्ग में कामबाला श्रद्धा मनु को स्मृति-जलनिधि की तरंगों से फेंकी हुई एक प्रभावान 'मणि' (प्रकाश का श्वेत बिंदु) बताती है। श्रद्धा ललित कला का ज्ञान सीखती हुई आई है। वह मनु को 'काम' का दर्शन समझाती है। श्रद्धा अरुण वर्णा (लाल बिंदु) है। इस तरह 'काम' का संदेश सुन कर मनु और 'कला' का ज्ञान सीखी हुई श्रद्धा का प्रथम परिचय होता है। (बाद के काम—वासना—लज्जा सर्गों का उपचार अन्य प्रकार का है)। काम सर्ग में जिस लीला का विकास होता है वह 'प्रेम कला' है (यह लीला जिसकी विकास चली वह मूल शक्ति थी प्रेम कला)। रहस्य सर्ग में त्रिदिव विश्व के त्रिकोण के मध्य बिंदु मनु बनते हैं। इच्छा क्रिया और ज्ञानशक्ति के तीन भुवनों को श्रद्धा अपनी स्मिति से एक

के नद मे तिरते रहे, उनकी भरी वासना की सरिता का मदमत्त प्रवाह था। देवता नित्य विलासी थे। उन्हें निरतर अनंत-पीड़ा का अनुभव होता था। वे विकल वासना के प्रतिनिधि थे। उनकी सस्तुति मे बेहद सुख केंद्रीभूत हुआ था और शक्ति केन्द्रित हो गई थी। अत' देवयजन के पशु-यज्ञो की पूर्णाहुति की ज्वालाएँ प्रलय लहरियो की मालायें बन गई। इस तरह वासना की ज्वाला और सुख के स्वार्थ के कारण ही प्रलय हुआ। मनु पर मृत्यु और भय की ये काली छायाएँ मँडराती रहती है। जब वे आशा सर्ग में पाक यज्ञ करके पुनः कर्मनिरत होते है तो उन्हे उन ज्वालाओं की स्मृति का ग्रास जकड़ लेता है। लेकिन उनमे मधुर प्राकृतिक भूख के समान वही 'अनादि वासना' नवीन होकर जगती है। यह अनादि वासना रति है जो आकर्षणरूपा है (जो आकर्षण बन हँसती थी रति थी अनादि वासना वही)। यही अनादि वासना (रति) कर्म सर्ग मे 'तरल वासना' हो जाती है सोम-मादकता से उत्तेजित होकर (जाग उठी थी तरल वासना मिली रही मादकता)। अतः इस नवीन अर्थात् मानवीय अनादि वासना के जागने पर मनु को अकेलापन और शून्यता पीड़ा देती है। तपस्वी मनु देवसृष्टि की त्रासदी से पाठ सीखकर तप को जीवन सत्य मान लेते हैं। उनकी आदिम स्मृति मे काम एक अभिशाप और जगत की ज्वालाओ का मूल है। किन्तु मनु अकेले एक है और प्रकृति वैभव से भरा यह विस्तृत भूखण्ड है।

श्रद्धा मनु को 'काम' और 'कर्म' की ओर प्रेरित करती है और काम के प्रति उनकी झिझक को अस्वस्थ मानती है। वह कहती है कि काम से ही महाचिति व्यक्त होकर 'लीलामय आनद करती है काम ही विश्व का अभिराम उन्मीलन है जिसमे सभी अनुरक्त होते हैं, काम मगल से मडित होकर श्रेय और सर्ग इच्छा का परिणाम हो जाता है, और काम ईश का रहस्य वरदान है। इस तरह श्रद्धा काम को स्वार्थ से हटाकर मगल से और शक्तिमय सुख से हटाकर लीलामय आनन्द से निबधित कर देती है। कर्म के विषय में भी वह कहती है कि कर्म का भोग तथा भोग का कर्म ही जड का चेतन आनन्द है जिसमे विजय निहित है। अत काम और कर्म का मिलन मानवता को शक्ति और विजय प्रदान करेगा। श्रद्धा मनु को देव-परिणामों को दुहराने की निरर्थकता का बोध कराती है। वह देवताओं की शक्ति के बजाय मानव की कामशक्ति का और पशुयज्ञकर्म के बजाय मनुष्य की कर्मविजय का आह्वान करती है। किन्तु यह सब हो कैसे? श्रद्धा कौन है? क्या वह सहचरी हो सकती है? मनु तो अकेले हैं; एक आकर्षण हीन तपस्वी है!!

इन [illegible], रमणीय और रहस्य भरे विषयों से मनु का घोर अंतर्म-न्थन होता है। वे इस [illegible] जगत के रहस्य को लगभग विस्मित-सा कर लेते हैं। उनके सामने देवों के काम (वासना) और कर्म (शक्ति) का दूसरा-उज्ज्वल पक्ष भी उभरता है। जहाँ काम मधुर एवं आनंदमय हो सकता है, [illegible] कल्याण और विजय प्रदान करने वाली। उनमें आतुरता और उत्कटा जागती है।

इस भूमिका में वे अकेले किन्तु [illegible]-से होकर कामसर्ग के मंच पर अवतरित होते हैं। श्रद्धा के संदेश उनके निराश कानों में गूँजते रहते हैं। उनके अवचेतन में यह सब कुछ मलिन हो जाता है। प्रकृति के बाह्य रमणीय दृश्य उनके जीवन-वन का मधुमय वसन्त बन जाते हैं। उन्हें यह पता भी नहीं चल पाता कि यह चुपके से कब आ गया था। देवताओं के अनंत वसन्त (आज तिरोहित कहाँ हुआ वह मनु से पूर्ण अनन्त वसन्त) के असमान यह मानवीय मधुमय वसन्त अचानक प्रकट हो गया। वसन्त काम का सेनापति है। कवि ने वसंत का छायावादी ढंग से चित्रण किया है जिसमें फूल, हँसी, सौरभ, झरनों की कलकल कोकिल की काकली और आनंद-प्रतिध्वनि की गूँज है। प्रस्तुतों के इस माध्यम से कवि जीवन की वृत्तियों का एक सांगरूपक-सा रचना चाह रहा है लेकिन ये अप्रस्तुत हैं। अब सांगरूपक की सम्पूर्णता का आयत्तीकरण करने में भटक गई हैं। किन्तु फूल, हँसी, कलरव, सौरभ और संगीत नवजीवन में मान, हास, उल्लास और नवीन जागरण की धुंधली लाक्षणिकता प्रेषित कर देते हैं।

दूसरे चरण में मनु में जगती के नील आवरण के रहस्य और सौंदर्य को समझने की आतुरता जागती है। अब वे रमणीय दृश्य को अनन्त एवं विराट

रूप में उद्घाटित होती है। यह सृष्टि एवं सौंदर्य दोनों का रहस्य खोल देती है। इस तरह अपनी इन्द्रियों की चेतना से ही सृष्टि की 'लीला' और 'माया' का अभिज्ञान करते हैं। श्रद्धा ने 'काम' और 'कर्म' की पहचान कराई थी। मनु लीला और माया का अभिज्ञान करते हैं।

इन तीन चरणों में जीवन का अभिज्ञान करके मनु रूप, रस, गंध भरे स्पर्श का पान करने लगते हैं (पीता हूँ, हाँ मैं पीता हूँ यह स्पर्श, रूप, रस, गन्ध भरा)। यह मन की काम प्रवृत्ति है (कामसूत्र, १.२.११)। इस पान की वजह से उनमें स्वप्नों का उन्माद, मादकतामाती नींद, शिथिल चेतना छाती जाती है। रजनी के पिछले प्रहरों में वे स्वप्न में डूब जाते हैं।

उन्मादक स्वप्न में उनमें मनोजन्मा काम उदित होता है और वह उनके मन के रंगमंच (क्रीड़ागार) में मनु को संदेश देता है। श्रद्धा के काम एवं कर्म के सन्देश सुनने के उपरांत मनु काम के सन्देश सुनते हैं। ऐंद्रियिक स्पर्श को पीने वाले मनु का काम (मनोज) प्यासा और अतुष्ट है (प्यासा हूँ मैं अब भी प्यासा हूँ सन्तुष्ट ओघ से मैं न हुआ)।

पहले काम देवसृष्टि में अपनी भूमिका का स्पष्टीकरण करता है। उसका अतिचार सबको घेर कर उन्मत्त कर रहा था, उसका संकेत विधान बना था, मोह देवविलास का वितान बना था और उसका साहचर्य देवविनोद का साधन था। देव उसकी उपासना करते थे और वह देवों का कृतिमय जीवन था। यह अकेले काम की भूमिका थी।

इसके बाद वह रति के साथ की अपनी अतीत भूमिका का निवेदन करता है। जो अनादि वासना उनमें आकर्षण बनकर हँसती थी, वही रति थी। उसकी चाह अव्यक्त प्रकृति के उन्मीलन की भी थी। अतः प्रकृति के यौवन में माधव के मधुहास ने दो मधुर रूप ढाल दिये।

काम कथन है कि हमारे (काम और रति के) युगल से 'मूलशक्ति' उद्भूत हुई। वह मूलशक्ति प्रेमकला थी (यह लीला जिसकी विकस चली वह मूलशक्ति थी प्रेमकला)। उसकी लीला विकसित होने लगी। माधुरी छाया में आकर्षण और मिलन प्रारम्भ हुआ और सृष्टि अपनी मतवाली माया में बनी। फलतः प्रत्येक नाश सृष्टि और विश्लेषण संश्लेषण हो गया। यह मिलन आकर्षण वसंत (ऋतुपति) में कुसुमोत्सव के रूप में प्रतिनिधित्व पाता है। इस भूमिका में काम स्वयं कहता है कि सभी ओर दो दो साथ हो गये और हम दोनों (काम-रति) साथी भी झूल चले। हम आकांक्षा-तृप्ति के समन्वय में भूख प्यास से जाग उठे। अतः देवताओं की शाश्वत युवावस्था की रचना में हम

भोली भाली सुन्दर संतान (काम बाला) संसृति में आई है। वह सौंदर्य की गरिमा है, भुज-भुजगों की पुलक है, जड़ के चेतना में इसने ही प्रेम दी है। अगर उसको पाने की इच्छा है तो योग्य बनो।"..... अनोखे स्वप्न के भंग होने के संकेत से मनु के अवचेतन में संचित पूर्वस्मृतियों और इच्छाओं की पूर्ति का स्वप्न-प्रतीकों (dream symbols) के रूप में आना रुक जाता है। मनु आँख खोलकर स्वप्नदेवता से पूछते हैं : "कहाँ कौन सा पथ पहुँचाता है? कहो, कोई उस ज्योतिमयी को कैसे पाता है?" स्वप्न भंग हो चुका था और सुन्दर प्राची में अरुणोदय का रंग-रंग (रंग-नाटक) हो रहा था।

अब हम श्रद्धा सर्ग में दिये गये (श्रद्धा के संदेश) तथा कामसर्ग में दिये गये(काम के संदेश)के बीच भेद करके कवि के काम के दर्शन का अनुमान कर सकते हैं। श्रद्धा कामबाला है, पिता की प्यारी संतान है, कामायनी अर्थात् कामगोत्रजा होने के कारण उसमें काम के गुण विशेष ढंग से विकसित हैं। वह काम को मंगल मानती है, विश्व का अभिराम उन्मीलन मानती है, महाचिति की वह मजग अभिव्यक्ति मानती है जो 'प्रेमकला' है। वह हृदयसत्ता का सुन्दर सत्य खोजने में व्यस्त है। वह विजयिनी मानवता की कामना करती है। इसकी तुलना में देवसृष्टि का सहचर काम तृष्णा विकसित करता है, केवल विनोद का साधन है, हृदयसत्ता के सुन्दर सत्य के खोजी के बजाय दंभ और मोह को सन्निपातित करने वाला है। कवि ने मूलशक्तिरूप (दिव्य, काम तथा समृद्ध काम के बीच भेद करके अपने रोमांटिक आदर्शवादी काम का निरूपण किया है। श्रद्धा काम एवं रति की अमला, सुन्दर और भोलीभाली संतान है। अतः उसमें इन दोनों के विकसित मानवीयरूप के मिलन की प्रतिकल्पना कवि ने की है। मूलतः कामायनी के इस स्वरूप में इच्छा श्रद्धा बन जाती है, और व्यक्ति सुख समष्टि मंगल। कवि ने इन दो केंद्रीय बिन्दुओं को चुना है। स्वयं कवि ने काम के इस रूपांतर को एक सूक्ष्म प्रतीक के द्वारा इंगित कर दिया है। जागने पर मनु के हाथों में देवों के सुधारस की बेल रह जाती है। सोमलता का यह प्रतीक बहुत व्यापक है। यह मानवसृष्टि की बेल (श्रद्धा कथन: बनो संसृति के मूल रहस्य तुम्हीं से फैलेगी वह बेल) से लेकर मनु के पशुयज्ञ में सुख और हिंसा की बेल होती हुई, आनन्द सर्ग में धर्म के प्रतिनिधि धवल वृषभ (पशु) को ढांकने वाली सोम बेल बन जाती है। जिमर ने शिव के नन्दी को आनन्द-युक्त माना है। वेदों में यह निर्भरता और शक्ति का प्रतीक है। वेदों में सोम अमर्त्य (ऋ० ६. ६. ६) कहा गया है जो मनुष्य के पास इला को बाँध ले आता है। मनु को सोम सुख, वासना, भोग और हिंसा की ओर ले गया था

लेकिन गत्यात्मक मनु को यह आनन्द (सुख के बजाय) और मोद (मोह के बजाय) की ओर ले जाता है। अत काम पूर्णकाम हो जाता है श्रद्धा के कारण (वह विश्व चेतना पुलकित थी पूर्ण काम की प्रतिमा)। अतएव कवि ने इन सूत्ररेखाओ के द्वारा अपने काम - दर्शन एवं यौन-आदर्शो को उद्घाटित किया है।

● वासना सर्ग मे दृष्टव्य सोम बेल (सृष्टि रहस्य) के साथ मनु उस ज्योतिमयी को पाने के लिये उस पथ की खोज करते हैं। इस सर्ग का विधान यात्रा की प्रगति, तथा मनु एवं श्रद्धा, दो के मिलन के हेतु हुआ है। इस सर्ग मे काम के ये ही सदेश मनु के कान भर रहे होते हैं (काम के संदेश ये ही भर रहे थे कान)। अतएव इस सर्ग मे पिछले सर्ग वाले काम का ही मानवीय एवं मांसल (ऐंद्रियिक) विकास-पक्ष प्रतीकीकृत हुआ है। जिस तरह काम सर्ग मे काम एव रति 'हम दो' बने थे, उसी तरह इस सर्ग मे परस्पर अपरिचित मनु और नारी (श्रद्धा) का मिलन होता है और वे भी 'हम दो' बनते हैं। इस तरह वासना सर्ग मानुषी आकर्षण एव मिलन की व्यावहारिक काम-गीता बन जाता है। उस ज्योतिमयी को पाना ('उस ज्योतिमयी को देव ! कहो कैसे कोई नर पाता है', तथा,'ज्योत्स्ना निर्झर ! ठहरती ही नही यह आंख'), और उस तक पहुँचने वाला पथ इन दोनो को लेकर यह सपूर्ण ललित सर्ग सौंदर्यच्छादित है। कई दृष्टियो से तो यह सर्ग 'कामायनी' का प्रसाद प्रणीत अभिनव काम सूत्र और शृ गार रस का छायावादी नाट्य शास्त्र भी बन गया है।

इस सर्ग मे मनु का अकेला अस्तित्व—श्रद्धा से मिलकर—मानव सत्य की सुन्दर सत्ता बनना है अर्थात् अस्तित्व (existence) से सत्ता (essence) का आविर्भाव होता है। यह क्रम कई चरणो मे निबधित हुआ है: पहले दो अपरिचित हैं, फिर मनु मे आकर्षण (रीति) का उदय होता है, फिर दो अपरिचितो का मिलन होता है; फिर मन की अधीर अतृप्ति जागती है; फिर मिलन सगीत गूजता है, और अन्तत. नारी लज्जा के कारण मौन समर्पण कर देती है।

इस सर्ग का प्रारम्भ नदी तट के क्षितिज मे बिजलियों भरे बादलों वाली संध्या से होता है जो सर्गांत तक चद्रशालिनी ज्योत्स्ना मे बदली होती है। यात्रा करते हुए गृहपति मनु और समर्पित अतिथि ऊँचाईयों मे चढते हुए देवदारु निकुंज गह्वर आदि भी लांघते हैं। शुरू मे सध्या का निस्तेज सूर्य जलधि में गिरता है और अत मे नीहार को पार करके आए हुए ज्योत्स्ना मे विधु निकल आता है। प्रखर ज्वालाओं के शांत होने के उपरात चद्र की शीतल किरणें दोनों

के हृदयों (चित्र) के राग कल्प का भी सूक्ष्म इंगित करती हैं। सर्ग के शुरू में ही कवि कह देता है कि विजन पथ पर मधुर जीवन खेल खेलने दो हृदय ही (दो पथिकों से) चल पड़े हैं। इस यात्रा का लक्ष्य दो अपरिचितों का मेल है क्योंकि यही नियति चाहती है क्योंकि ये दो परस्पर पूरक हैं (एक गृहपति है दूसरा अधिक, एक प्रश्न है, दूसरा उत्तर, एक जीवन सिंधु है,दूसरा लघु लोल लहर, एक नवल प्रभात, दूसरा स्वर्ण ; और किरण, एक वर्षा का आकाश तो दूसरा किरण रंजित श्री घनश्याम) । ये दो अपूर्ण एव अर्धांश मिलकर ही एक पूर्ण एव सर्वांश बनाते हैं। अतिथि मे समर्पण का सुनिश्चित भाव पहले से वर्तमान है क्योंकि वह मनु से प्रथम मिलन मे ही समर्पण कर चुका है (समर्पण लो सेवा का सार) । मिलन की ललक और पुलक और तड़प को बादल में अविरत लड़ती हुई दो बिजलियों मे इंगित किया गया है जिनमे से कोई एक दूसरे को फाँस नही सकती थी। मिलन का दूसरा सूक्ष्म इशारा तुरन्त आगे है। एक ओर धूसर क्षितिज से उठती हुई कालिमा और सूर्य के अंतिम वैभव हीन आलोक का मिलन है, तथा दूसरी ओर शोक भरे कोक बिछुड़ रहे रहे हैं। इस तरह दो की पूरकता, और मिलन के द्वंद्व (बिजलियाँ, कोक) को उभारा गया है।

हृदय की इस प्रतीकात्मक यात्रा मे मनु को नई इच्छा खींचे लिए आ रही है। उनके कानो में काम के संदेश गूँज रहे हैं। अतः मनु अपनी नियति का बंधन मुक्त खेल देखते हैं। अभी वे स्वयं नही खेलते।

बिजलियाँ और कोक के प्रतीकों के बाद कवि रंगशीर्ष पर पशु का महत्तम प्रतीक प्रस्तुत करते हैं। यह मनु के मनोविज्ञान को गाढ़े रंगों में रंग देता है। कवि ने पशु की क्रीडा का अकन कालिदास के 'शाकुंतल' के मृग के अनुरूप किया है। किन्तु पशु का अतिथि के प्रति स्नेह और अतिथि की पशु प्रति ममता, और उन दोनों का मधुर मुग्ध विलास मनु मे चिंता और निराश के भाव के बाद पहली बार ईर्ष्या उत्पन्न करता है। उनमे अहं और अहंकार का तीव्र प्रबोध होता है । इनसे उत्पन्न स्वाधिकार की मूलप्रकृति (Instinct of Possession) मनु मे उभरती है। आशा सर्ग के अनंत रमणीय 'कौन' के स्थान पर यहाँ मनु मे 'मैं ?' 'कहाँ मैं ?' 'सभी मेरी', 'मैं' आदि के प्रश्न संबोधन उगते हैं। लेकिन श्रद्धा के सुकुमार उपचार के कारण उनकी ईर्ष्या का दृप्त फण झुक जाता है। अतः ईर्ष्या के विरोधी भावों के रूप में कवि ने अन्त से सरल सुंदर स्नेह, ममता और करुणा की भावनाओं को लिया है। मनु पहली बार यह जान पाते हैं कि विश्व मे सरल सुन्दर महान विभूति स्नेह

है (जो ममता एव करुणा से आर्द्र है) । इस तरह मनु को मधुर प्राकृतिक भूख के समान 'अनादि वासना' के बजाय सरल-सुन्दर-'चिरतन स्नेह' का भान होता है (मिल रहा तुमसे चिरंतन स्नेह-सा गभीर)। यहाँ कवि ने सेक्स-टोटेम एवं प्रतीकात्मक कर्मकाड के रूप में पशु का अनुप्रवेश कराकर स्नेह-ईर्ष्या,अधिकार करुणा की वृत्तियों का भी अभ्युदय कराया है ।

चिरतन स्नेह का पहला मधु उन्हे यह भी बोध कराता है कि काम के सदेश की 'ज्योतिमयी' तो यही 'ज्योत्स्ना निर्झर है । मनु अनुभव करते हैं कि अतिथि मे कोई छविमान करुण रहस्य छिपा है जो पशु तथा पाषाण सब मे नृत्य की नव छद भरता है और सबको आलिंगनबद्ध करता है । स्नेहभूना अतिथि मनु को छविधाम लगता है । इस 'छवि' का सौभाग्य गुण दूसरा है । कवि ने 'रमणीयता' और 'सौंदर्य' की उच्चतर ऐस्थेटिक दशाओं को (आशा सर्ग, एवं लज्जा सर्ग मे) स्पष्ट किया है । यह छवि वासना की मधुर छाया (वासना एव स्थायीभाव की सधि) और हृदय की सौंदर्य प्रतिमा (अबोध पूर्वा स्मृति) है जिसमे स्वास्थ्य, बल, विश्राम है । यह 'छवि' रमणीयता के यौवनपरक आधार का गहन उद्घाटन है । तो, छवि वासना को स्नेह (अर्थात् ऐस्थेटिक फीलिंग) मे रूपातरित करती है । सौंदर्य शास्त्रीय दृष्टि से 'छवि' प्रकृति की रमणीयता तथा मानव कृति के सौंदर्य से भिन्न हृदय की सौंदर्य प्रतिमा अर्थात् कवि के सस्कार का कृतिपूर्व साधारणीकरण है ।

इस गूढ और गोपन अवचेतन की यात्रा मे नाम और रूप के परिचय व्यर्थ हैं । अतिथि यही कहता है (कहा हँसकर "अतिथि हूँ मैं, और परिचय व्यर्थ) । इसके साथ पुन एक रूपकात्मक भाषा (metaphorical language) मन का मुक्ति और स्वच्छद रोमास का आह्वान कराती है । अतिथि सकेत देता है कि चाँदनी रात निकल आई है (अतिथि के मन की उद्विग्नता शान्त हो गई है), और वह सरल हँसमुख विधु जलद के लघु खडो का वाहन साज कर बुलाने आया है । यह प्रणय चन्द्रमा है । इस सकेत का पूर्ण प्रतीकीकरण बाद मे हुआ है (प्रणय-विधु है खडा नभ मे लिये तारकहार) । बादलों के रथ मे आरूढ चद्रमा के साथ-साथ मनु और अतिथि यात्रा करते हैं । यह यात्रा अतर्चेतन('स्वप्नपथ')मे होती है और यह यात्रा पथ काम-साधना का है । एक ओर प्रकृति का 'स्वप्नशासन' है जहाँ ऊँचा शिखर व्योम का चुबन कर रहा है, चन्द्रिका रास रजित है, देवदारु निकुज सुधास्नात होकर कौमुदी-उत्सव मना रहे हैं, माधवी की गध से पवन मधुप्रभ हो गया है, निशा की छाया शिथिल अलसाई पड़ी है और शिशिर कणो की सेज पर सो रही है और

उसी झुरमुट में 'स्वप्नपथ' में हृदय की भावना भ्रांत हो गई है। अतः स्नेह अवचेतन से उद्भूत होकर स्वप्निल मादकता में कुछ नये स्वरूपों में विकसित हो रहा है। इसकी भूमिका है मनु के अधीर प्राण, और अतिथि की सव्रीड़ छवि। अधीरता और व्रीड़ा का उदय होता है। इसके बाद मनु की अधीरता बढ़ती है, और अतिथि की व्रीड़ा।

अधीर मनु के मन में छवि के भार दबे अतिथि को देकर स्पृहणीय मधुर अतीत की, याद पुनः जागती है जब मदिर घन में वासना के गीत गूँजते थे। यह संकेत मनु को उद्विग्न बना देता है। चन्द्रमा का संकेत अतिथि कर चुका है, और देवसंस्कृति की वासना की स्मृति मनु में जागती है। अतः मनु की धमनियों में रक्त का सचार होता है, हृदय में धड़कन काँपती है। यह मनु की नवीन चेतना है जो यज्ञज्वाला की तरह न जलकर शलभ (अग्निकीट) की तरह उत्साह भरी जलती है। इसकी ज्वाला विभिन्न भावोंवाली (रंगीन ज्वाला) है। मनु को इस सूफी प्रतीक के बोध से भी चेतनामय किया गया है। इस भावभूमि पर मनु को अतिथि प्राणसत्ता (हृदयसत्ता से आगे) का सुकुमार मनोहर भेद-सा लगता है। वह एक विश्व-माया-कुहुक सी साकार हो जाती है। यह भी एक ध्यान देने योग्य तथ्य है कि सूफी रंगत में ही इस सर्ग में लगभग आदि से अल्पांत तक अतिथि को पुल्लिंग ही बताया गया है।

प्राणसत्ता की मधु भूमि पर मनु की अधीरता उनके अधीर मन की 'अतृप्ति' भी हो जाती है। यह रतिविहीनता का भागवत है अर्थात् मनु में काम की वासना के जागरण के बाद रति का अभाव जागता है। अतिथि मनु की अतृप्ति, क्षोभयुत उन्माद, उच्छ्वास मय सवाद (संचारी भावों) को पढ़ लेती है। वह पुनः रूपकात्मक भाषा में एक दूसरा सकेत देती है : यह अनुभव अनिर्वचनीय है (मत कहो पूछो न कुछ, देखो न कैसी मौन, विमल राका मूर्ति बनकर स्तब्ध बैठा कौन !)। यह मौन दर्शन है। सामने विमल राका मूर्ति-सा कौन बैठा है। यह विमल राका-मूर्ति अतिथि का आत्मरूपक है। चारों ओर विभव मतवाली प्रकृति का नील आवरण शिथिल हो जाता है और सुन्दर तामरस चरणों पर राशि राशि नक्षत्र कुसुमों की अर्चना बिसर पड़ती है। यह समर्पण का सकेत है। मनु यामिनी (विमल राका मूर्ति) का रूप निरखते जाते हैं और (काम के संदेश के उपरांत) मिलन का सगीत होने लगता है।

मनु के अधीर मन की अतृप्ति के उद्दाम वेग एवं आवेश (छूटती हुई चिनगारियाँ, उद्भ्रांत, उत्तेजना, मधुर धधकती ज्वाला, विवश, अशांतवश)

का स्वप्न सदृश दृश्य देखते हैं जहाँ चेतना, प्राण एवं मन विलीन हो जाते हैं। मनु उन्मन हो जाते हैं। किन्तु मनु देखते हैं कि ज्योत्स्ना निर्झर सा कलिंदि और विश्वमस्तकशाली प्रकृति में फैली ज्योत्स्ना अन्धकारशोषक ढंग से बहती है। वे यह भी देखते हैं कि कलिंदि द्वारा दिखाया गया जलदरपाश्व चन्द्रमा स्वच्छ बिन्दु में रूपान्तरित हो गया है और वह तारकहार लिये हुए उन दोनों के मिलन के लिये आतुर खड़ा है। उन्हें याद आता है कि जो काम बाला थी और जिसका मधुर नाम श्रद्धा था और जिसकी फूलों से अर्चना की जाती थी, वही तो (रूपान्तरित होकर) यह 'रम्य नारी-मूर्ति' है। यह अपनी सुकुमारता में रम्य नारी-मूर्ति है। इस तरह विमल राका मूर्ति का रागात्मक रूपांतरण रम्य राका मूर्ति में हो जाता है। मनु को यह अनुभव होता है कि रम्य नारी-मूर्ति के सामने वे एक शिशु से छोटे हैं जो आज तक श्रान्त होकर भटकता था (मैं पुरुष शिशु-सा भटकता आज तक था श्रांत)। मनु को यह भी अनुभव होता है कि नारी विजयिनी सी दीखती थी। काम रहस्य का यह गूढ़तम मनोवैज्ञानिक रहस्य है कि आत्मसमर्पण के विभोर क्षणों में पुरुष नारी की गोद में एक नन्हें शिशु-सा हो जाता है। आश्चर्य और हर्ष है कि प्रसाद ने इस क्षण को भी पकड़ लिया (एक सफलता था न कोई दूसरे को पकड़ि)। अतः यहाँ केन्द्रीभूत गुरु (देवसृष्टि) के बजाय साधना की स्मृति केन्द्रीभूत होती है (हुई केन्द्रीभूत-सी है साधना की स्फूर्ति)। और, मनु अपनी चेतना का समर्पण दान कर देते हैं रम्यनारी मूर्ति के सम्मुख 'अब अतिथि 'विश्वरानी', 'सुन्दरीनारी' और 'जगत की मान' होकर साकार हो उठता है। काम लीला ने दोनों को शिशु-बालिका सा बना दिया!! एक अद्भुत उन्मीलन!!

पुरुष ने अपनी चेतना का समर्पण किया (शायद हृदय का नहीं) फलतः सतत सुकुमारता में दृढ़ रहने वाली रम्यनारीमूर्ति पुरुष के इस नर्ममय उपचार से लदकर सुकुमारता के भार ही सव्रीड झुक चली। उनमें सात्विक अनुभाव एवं अयत्नज अलंकार प्रकट हो जाते हैं। झुकी नासिका नोक, गिर रही पलकें, आकर्ण भ्रूलता, कदंब-सा खिला पुलक, गद्-गद् बचन, लज्जा, ललित कर्ण कपोल, आदि। कवि ने व्रीडा को नारीत्व का 'मूल मधु अनुभाव' कहा है। यही मधु अनुभव उसके भीतर हुल उठता है। अतः व्रीडा–चिंता–उल्लास से मिलकर हृदय का आनन्द 'रास' करने लगता है। यह मधुर अनुभाव ही अगले लज्जा सर्ग का बीज बनता है। इस सर्ग में 'अतिथि नारी' की रचना अनुभावरूप अलकारों से हुई है। यह प्रयोग एक परम्परा का अनूठा नवीनीकरण है।

नारी को एक चिंता भी व्याकुल करती है। आज का आदिम एवं

चिरंतन समर्पण कहीं दुर्बल नारी-हृदय के लिये चिरंतन बन्धन न बन जाय ! यह पुरुष का यह दान क्या ले सकेगी जिसे उपभोग करने में प्राण विकल हों ! इस बिंदु से नारी के मनोविज्ञान (मुग्ध मधु अनुभाव) की सलिल धारा फूट निकलती है लज्जा सर्ग में ।

प्रसाद ने 'हृदय के आनन्द गान का रास' नामक एक मौलिक धारणा पेश की है (आनन्द सर्ग में विश्व सुन्दरी प्रकृति के 'लास रास' की धारणा भी इसी तरह की है) यहाँ रास की वैष्णव मधुरोपासना वाली छायाएँ भी घुली हैं । रस समूह को रास कहते हैं (रसानां समूहो रासः)। रास में कृष्ण ही अनेक कृष्ण के रूप में गोचर होते हैं। यहाँ नारी का हृदय अनेक रूपों मे उन्मीलित हुआ है । रास गोपियाँ करती हैं । यहाँ क्रीड़ा, लिप्सा, उल्लास और अनेक मधु अनुभाव नारी के हृत्प्रदेश में आनन्द रास कर रहे हैं । रास में चन्द्र की चन्द्रिमा पर मुग्ध होकर कृष्ण गोपियों के साथ क्रीड़ा एवं रहस्यलीला करते हैं। यहाँ मनु और नारी चन्द्र की चन्द्रिमा में मुग्ध होकर मधुर जीवन खेल(लीला, क्रीड़ा) करते हैं । मनु के संसर्ग से इन प्रणय लीलाओं में यह रस समूह (रास) उत्पन्न होता । अतः सम्पूर्ण वासना सर्ग इस अकेली धारणा के आलोक में एक अभिनव प्रणय-रास की विच्छित्ति प्राप्त कर लेता है ।

सारांश में, हम कह सकते हैं कि यह सर्ग चिरंतन (पुरुषत्व भी) और चिरंतन नारी (नारीत्व भी) की शाश्वत और चित्रमय प्रणयलीला का विकास है । यहाँ काम तात्त्विक अनादि वासना (तृष्णा, वासना, मादकता, लालसा, अधीरता आदि) शनैः शनैः काव्यशास्त्रीय रति (विभावानुभावादि) हो गई है । इस सर्ग मे अनादि वासना का रूपातरण चिरंतन स्नेह मे हुआ है । इसमें एक ओर 'प्रकृति' (विभव मतवाली प्रकृति) तथा 'रम्य नारी मूर्ति' तथा 'सृष्टि' का हास, गान, नृत्य, लास आदि है तो दूसरी ओर अधीर मन की उद्विग्नता है । यहाँ दो बिजलियो, दो कोकों, पशु, अग्निशलभ, विधु, विमल राका मूर्ति आदि के संकेतो का सुन्दर, मधुर, मृदु, नवीन प्रतीको तथा

मूर्तित किये गये हैं। इस सर्ग में [illegible] नारी और उसकी अंतर्लीन [illegible] के बीच द्वन्द्व है। यहाँ मनु अनुपस्थित हैं। इसमें नारी की अन्तश्चेतना का उन्मीलन हुआ है। मनोविज्ञान में जैसा ही है : पहले नारी स्वयं को मुग्धा की छायावादी शैली में प्रदर्शित करती है, इसके बाद उसका ही आश्रय लेकर उसकी ही लज्जा-प्रतिमा उत्तर देती है। काम सर्ग में मनु को काम ने स्वप्न में उत्तर दिये थे। इस सर्ग में गोधूलि और संध्या के धूमिल पट में नारी की लज्जा-प्रतिमा उत्तर देती। वासना सर्ग में 'छवि' की धारणा प्रस्तुत हुई है, और इस सर्ग में सौंदर्य की धारणा प्रस्तुत हुई है। इस सर्ग से पहले केवल मनु काम बाला को 'श्रद्धा' नाम से याद करते हैं केवल एक बार। इस सर्ग में लज्जा निश्चित रूप से नारी को 'केवल श्रद्धा' घोषित कर देती है। इसके उपरान्त सारे सर्गों में 'श्रद्धा' या कामायनी नाम ही चलता है। यह नाम-प्रतीकीकरण भी महत्त्वपूर्ण है। कवि ने इसके लिये कालिदास से भी प्रेरणा ली है।

इस सर्ग के केन्द्र में रति, लज्जा एवं नारी की अमूर्त धारणाएँ हैं। सबनीजी सौन्दर्य के लिये कवि ने नारी के चिरन्तन नारीत्व (eternal feminine) में प्रतीकीकरण किया है, तथा अमूर्त रति का मानवीकरण (personification) किया है। इस सर्ग में नारी की चिति (psyche) उसके रति मनोविज्ञान (सेक्स-साइकोलाजी), उसकी रमणीधर्मता (वूमेनहुड) और उसके अन्तर्लोक (इनर वर्ल्ड) को जितनी सूक्ष्मता और भावुकता और रागात्मकता के साथ प्रसाद ने निबंधित किया है, वैसा हिन्दी में अन्य दूसरा कवि नहीं कर पाया है। अलबत्ता घनानन्द, आलम बोधा ने अवश्य कुछ गहराई छुई है तथापि उनका बोध कोरमकोम मध्यकालीन था। प्रसाद भी नारी के इस अंतर्लोक को अंकित करने में अपने रोमांटिक आदर्शवाद तथा दार्शनिक मध्यकालीनतावाद के दृष्टिकोण से बँधे हैं जिससे उनकी 'रम्य नारी मूर्ति' परिपूर्ण एवं समसामयिक भी नहीं हो पाई।

इस सर्ग में नारी एक चकित (स्वभावज अलंकार) बाला अर्थात् अंकुरित यौवना (जिसमें लज्जा एवं काम की समरति हो) के रूप में अपनी ही मुग्ध अंतर्छाया अर्थात् लज्जा का विबोध करती है। नारी को अनुभूति होती है कि 'यह कौन' (लज्जा) माया में लिपटी बढ़ती चली आ रही है (माया में लिपटी होने के कारण यह चिति शक्ति को अवगुंठित करके रति से लज्जा हो गई है और नारी को कई स्वभावज अलंकारों से शृंगारित कर रही है।) यह (लज्जा) माधव के कुतूहल से पूर्ण [अधरों पर उँगली धरे हुए—]

आलिंगन का जादू पढ़ती है। यह इन्द्रजाल के कण बिखराने वाले पुलक (रोमांच) रूपी कदंबों की माला अन्तर में पहना देती है और अपना वरदान सदृश झीना-नीला-हल्का अंचल डाल देती है। इस मर्म प्रक्रिया से नारी रति में अग्रापदेशित हो जाती है।

वरदान के द्वारा परिवर्तित चितिजगत् वाली नारी (रति) में पूर्ववर्ती सर्ग की प्रगल्भता (किसी प्रकार की शका न होना), शोभा (शारीरिक शोभा), कांति (विलास से बढ़ी हुई शोभा) औदार्य (सदा विनय भाव), धैर्य (आत्मश्लाघा से मुक्त अचंचल मनोवृत्ति) आदि अयत्नज अलंकारो के स्थान पर कई स्वभाव अनुभावालंकार (विलास, कुतूहल, चकित मद, ललित, विहृत आदि) उदित हो उठते हैं। ये सब नारी की आतरिक रति के शृंगार हैं जिन्हें कवि ने छायावादी अप्रस्तुत विधानों और उत्प्रेक्षाओ और लाक्षणिकता के द्वारा अभिव्यंजित किया है। इस प्रसग मे उन्होने एक और प्रयोग किया है। नारी के इन अनुभावालंकारों को आपस मे घुलामिला कर अनुभूति (फीलिंग) और संवेदना (सेंसेशन) को प्रकट करने वाली भाषा की रचना की है। इस भाषा की खोज थोड़ा आगे चलकर सौन्दर्य के मूर्तीकरण मे अपनी सिद्धि प्राप्त करती है। लज्जा के अतर्प्रवेश के कारण नारी के सब अग मोम-से हो जाते हैं और वह कोमलता मे बल खाने लगती है (ललित); वह अपने में सिमिट सी रहती है (सकोच); उसकी तरल हँसी स्मित बन जाती है और नयनों में बाँकापन आ जाता है (हाव); उसके यौवन मे सुख की अभिलाषाएँ जाग जाती हैं (केलि); छूने मे हिचक होती है और देखने मे पलकें आँखो पर झुकती हैं (ब्रीडा) और कलरव परिहास भरी गूँजें अधरो पर आकर रुक जाती हैं (किलकिंचित्); रोमाली सकेतो से मना करती है और भौंहों की काली रेखा बनकर भ्रमित हो जाती है (विलास)। इन कारणो से नारी स्व-अवश हो देती है। यह चेतना-सकोच उसे रस के निर्झर मे धँसकर आनन्द शिखर की ओर बढ़ने से रोक रहा है (काव्य शास्त्रीय एल्यूजन)। नारी की चिति (psyche) को इस अवशता ने स्वप्निल, भ्रमित और अवगविन बना दिया है। इस लाक्षणिक भाषा की दूसरी मध्यमाशक्ति भी है। इस वर्णन में दस सौंदर्य गुणों का समावेश भी हुआ है। इसमें शरीर की विभिन्न अवयवों की रेखाओं मे स्पष्ट होने वाला 'रूप' है, आँखों को विभिन्न प्रकार से तृप्त करने वाले 'वर्ण' हैं (यह [किरणो का] अवश किनना हल्का-सा किनने सौरभ से सना हुआ); विभिन्न प्रकार के आकर्षण से बाग झिलमिलाने वाली 'प्रभा' है (प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो वह बनता जाता है मधना); अधरों

पर सहज भाव से खेलती रहने वाली आकर्षण हँसी का 'राग' है (स्मित बन जाती है तरल हँसी); फूलो के समान मृदुल और कोमल 'आभिजात्य है (सब अग मोम से बनते है कोमलता मे बल खाती हूँ); यौवन जनित उल्लास से प्रकट होने वाली विभ्रम-विलास चेष्टाएँ 'विलासिता है (छूने मे हिचक, देखने मे पलकें आखों पर झुकती हैं; कलरव परिहास भरी गूँजे अधरों तक सहसा रुकती है); शारीरिक अवयवो को चन्द्रमा के समान आह्लादित करने वाला 'लावण्य' है, 'छाया' है और सहृदयो को आकर्षित करने वाला 'सौभाग्य' है। (प० हजारी प्रसाद द्विवेदी : "मेघदूत— एक पुरानी कहानी" पृ० २१, १२३, सस्करण १९५७) ।

अतएव इस हृदय परवशता ने उसकी नैसर्गिक रति की सारी स्वतंत्रता छीन ली है (स्वच्छद सुमन जो खिले रहे जीवन वन से ही बीन रही) ।

अब लज्जा रति (नारी) के इस लाछन का प्रत्युत्तर देती है। वह भी काम की तरह अपनी आत्मकथा कहती है कि मैं देवसृष्टि की वह रति रानी हूँ जो अपने प्रिय काम (पचबाण) से वचित हो गई। मैं अपनी अतृप्ति सी सचित होकर एक दीन 'आवर्जना–मूर्ति बन गई। अब मैं एक अतीत असफलता सी अपने अनुभवो मे अवशिष्ट रह गई हूँ। अत. मैं लीला–विलास की खेद भरी अवसादमयी श्रमदलिता सी दीन आवर्जना-मूर्ति हूँ।

इसके बाद लज्जा अपने क्रियाधर्म (फक्शस) बताती है · मैं पंचबाण से वचित आत्म अतृप्ति हूँ। अब मैं रति की प्रतिकृति हो गई हूँ, और प्रतिकृति हूँ। मैं शालीनता सिखाती हू; चचल किशोर सुन्दरता की रखवाली करती रहती हूँ; सरल कपोलो की लाली और आखो का अजन तथा मन की मरोड होती हूँ; मै वह हल्की सी मसलन हूँ जो कानो की लाली बनती हूँ। मैं

रंजन-गुण का विन्यास है जो हमें स्वमेव आकृष्ट करता है। यह आन्तरिक वशीकरण धर्म सौभाग्य है। यह इन दोनो सुन्दरताओं के रूप, वर्ण, राग और विलासित मे घुल गया। पंचबाण से वंचित रति के अभाव को लज्जा नारी में इंद्रजाल और कुहक के द्वारा भरती है। इस तरह इन दो लघु सौन्दर्यो-भेदों का सौंदर्यतत्त्व विनियोजित हुआ है।

इसी संदर्भ मे लज्जा एक महत्तर 'सौंदर्य' का भी अभिधान करती है जिसकी धात्री वह स्वयं हो बताती है। यह 'चपल सौंदर्य' चेतना का उज्ज्वल वरदान है और इसमें अनंत अभिलाषा के स्वप्न जागते रहते हैं। इसी के स्त्रैण प्रतिरूप (फेमिनीन फॉर्म्स) मातवाली सुंदरता तथा चंचल किशोर सुंदरता है। इस सौंदर्य मे लज्जा गौरव-महिमा का सन्निवेश करती है तथा आतुरता के दुष्परिणामों से बचने का विवेक देती है। सौंदर्य के इस विन्यास में जो सौंदर्य-गुण प्राप्त किये गये हैं वे कथा-सृष्टि से भी संलग्न हैं। यह एक गूढ़ उद्घाटन है। इस तरह 'चेतना के उज्ज्वल वरदान रूप चपल सौंदर्य' का स्वरूप कथानक का पर्यावरण ढालता है। लज्जा इस कथा यात्रा के संकेत देती है। इस सौंदर्य का विनयन कब से होता आ रहा : यह अंबर चुंबी हिमशृंगों से कलरव कोलाहल साथ लिए आ रहा है (देख लो, ऊँचे शिखर का व्योम चुंबन व्यस्त), इसमें विद्युत की प्राणमयी धारा उन्माद लिये बहती है (अंतरिक्ष के मधु उत्सव के विद्युत्कण मिले झलकते से); इसमें मदन कुंकुम की सी है जिसमें ऊषा की लाली निखरी है (ऊषा की सजल गुलाली जो घुलती है नीले अंबर मे), इसमें भोला सुहाग इठलाता है; यह कल्याणकारी आनंदधर्मा है; इसका स्वर वसंत मे पिक-सा है (क्या तुम्हें देख कर आते यों मतवाली कोयल बोली थी); इसके मर्मर स्वर मूर्च्छना उत्पन्न करते हैं और आँखों मे रमणीय रूप बन कर बसते हैं (सौंदर्यमयी चंचल कृतियाँ बन कर रहस्य हैं नाच रहीं; मेरी आँखों को रोक वहीं आगे बढ़ने मे जाँच रहीं); यह नयनों में रस भरता है; इसमें अनुराग (वसन्त) का हिंडोल भरा है (प्रत्येक नाम विशेषण भी मनिर्दिष्ट हुए, बन सृष्टि रही, अनुराग के पर कुसुमोत्कर था—); यह मानस की लहरों पर-सी मद मदिरा का निर्झर भरता है (ज्योत्स्ना सी निकल आई पार कर नीहार), इसके अभिनन्दन में फूलों की कोमल पंख-ड़ियाँ बिखरती हैं और स्वागत के कुंकुम-चरण मे अपना मकरंद मिलाती हैं (मधु बिखरा था उसी से मिलने को नूतन, छिड़का करते अलि मकरंद, कुसुमा पुंज), इसका अब यौवन प्रकृति गुंजाती है (विकसित सी बीन की गुंज माधुरी की ओर) और इसके मन के गुन-गुन निर्झर मन-रंजन करते हैं (मधुर चौरस मिथ

लिए रूप से उन्माद, हृदय का आनंद कूजन लगा करने राग)। अत. चेतना के ऐसे उज्ज्वल वरदान को 'सौदर्य' कहते हैं।

इस निरूपण से स्पष्ट है कि कवि ने 'प्रकृति' की 'अनत रमणीयता' से वासना-सस्कारित 'छवि' (वासना सर्ग) का विधान किया ; और तदुपरान्त 'छवि' से चेतना दशा के मगल, श्री, सौभाग्य, कल्याण आदि से मडित आनंद धर्मी 'सौदर्य' का विधान किया। इस सौदर्य तत्त्व मे मूल शक्ति, मूल भाव (अभाव) और मूल चिति काम है जिसे कवि ने ऋतुपति, माधव (चैत्र), मधु (वैशाख); वसत, रति और प्रीत की रेखाओं से रजित और अकित किया है। यह प्रकार का सौदर्य शास्त्रीय (ऐस्थेटिक) बोध है । इसमें वैष्णवो का महाभाव (सीता और राम रूप मे), शैवों का परमभोग (चिति, इच्छा, आनंद, माया, रूप मे) और सस्कृत के सौदर्यबोध शास्त्रियो की आद्य रस (शृंगार रस) का सौतानिकेतन यह जगत सयुक्त हो गया है। इसमे अनादि वासना चिरतन स्नेह मे द्रवीभूत हुई है, और चिरतन स्नेह अनत अभिलाषा की सुप्त इच्छाओं मे डूब हुई है (जिसमे अनत अभिलाषाओ के सपने सब जगते रहते हैं)। इसमे मूल शक्ति (रति + काम = कामकला, या प्रेमकला) की प्रतिकृति लज्जा की अभाव पूर्ति की प्रक्रिया का योग दान कवि की अपनी सवित् है। लज्जा 'चरम सौंदर्य' की धात्री है और वह इस आशसा बोध में गौरव महिमा सिखलाती है, वह 'मतवाली सुन्दरता' की मानविमोचिका है और इस आशसाबोध मे शालीनता सिखाती है, तथा वह 'किशोर सुन्दरता' की रखवाली करने वाली है और इस आशसा बोध मे रंजन करती है। और, सबसे अन्त मे : यह सौंदर्य तत्त्व चपल, चचल, किशोर है। ये विशेषण सहृदय के क्षण-क्षण नवीन होते चित्त की द्रुति, दीप्ति एव द्रवण का समिश्रण कराते हैं। हमे तो यह भी लगता है कि यहाँ नारी एक सौंदर्य कृति तथ्य (arte fact) हो गई है, तथा लज्जा एक जागरूक आभिजात सहृदय-हृदय !

इस लज्जाशील रतिरूपा नारी का सौदर्यबोधात्मक उन्मेष तो यथावत् है ही। यही उनकी 'रम्यनारी मूर्ति' का चिरतन बिंब है जो उनकी सारी श्रेष्ठ कृतियो मे प्रतिबिंबित हुआ है। लेकिन जीवन और समाज की भूमिकाओं मे यही बिंब नारी को 'केवल श्रद्धा' या अप्सरा, या देवी या आश्रिता बना देता है। प्रसाद इस अतर्विरोध को आदर्श के द्वारा सुलझाते रहे हैं। किन्तु यह मध्यकालीन आदर्श है, पुराणों, सस्कृत काव्य नाटको द्वारा पोषित और सस्कारित आदर्श। यह नारी इस क्षेत्र मे अदक्ष लज्जा से अगला महान् प्रश्न पूछती है : 'हाँ यह तो ठीक है। परन्तु यह भी बताओगी कि मेरे जीवन का पथ क्या

है ? और प्रकृति की इस अँधेरी रात में मेरे सामाजिक ज्ञान की किरण (आलोकमयी रेखा) क्या है ?'

और ऐसे ही प्रश्न मनु ने काम से पूछे थे : 'कामबाला के पास कौन-सा पथ पहुँचता है ? उस ज्योतिमयी को कोई अब कैसे पाता है ?' कामना सर्ग में इस दुरूह पथ की माया और ज्योतिमयी नारी (श्रद्धा) को पाने की साधना प्रकाशित हुई है । किन्तु समर्पण और मिलन के बाद नारी प्रकृति (स्वभाव) में अपने जीवन पथ को पूछती है । यह प्रश्न एक महान् ऐतिहासिक एवं सामाजिक समस्या भी है । सज्जामंडित रमणीया नारी स्वयं अपनी सीमाओं तथा मनोवृत्तियों (एटीच्यूड्स) का कथन करती है ।

नारी 'आज' समझ पाई है कि वह दुर्बल है, दान ले सकने में असमर्थ है (आह मैं दुर्बल, कहो क्या ले सकूँगी दान !) । वह इस दुर्बलता में ही नारी है (अन्यथा पहले 'विगत विकार अनिधि' थी) । अवयवों की सुन्दर कोमलता के कारण ही वह सबसे हारी है, वह अपने मानस की गहराई में निस्संबल होकर गिरती है । वह आवेगमयी है । अतः चिन्तनहीन (सोच विचार न कर सकती) है । वह सर्वस्व समर्पण करने की ममता में बँधी है ताकि विश्वास के महावृक्ष की छाया में पड़ी रहे और संतुलन खोकर नरन्तरु से अपनी भुजलता फँसा कर झूले-सी झोंके खाती रहे, और अपने स्वप्नलोक की सुन्दरता छोड़कर जागरण के यथार्थ में आने की चाह न रहे । वह केवल दान देना चाहती है ग्रहण करना कुछ भी नहीं । अतः उसके अर्पण में केवल उत्सर्ग छल कता है, कुछ और नहीं । वह स्वयं पूछती है कि नारी-जीवन का चित्र क्या यही है ? नारी की दुर्बलता तो जैविक (बायलाजिकल) है; लेकिन निस्सबलता, कोमल निरीहता, सर्वस्व समर्पण, निष्क्रिय स्वप्नचर्या उसका पर्यावरणमूलक चरित्र (एन्वायर्मेंटल कैरेक्टर) है । और, यह चरित्र कई शताब्दियों वाली मध्यकालीन सामंतीय संस्कृति की देन है । सामंतीय संस्कृति में नारी पुरुष आश्रिता, कामयष्ठि, सुकुमार, अबला, दुर्बल, मंदमति, असूर्यम्पश्या, कामिनी, सर्पिणी, देवी आदि न जाने क्या क्या थी । वह समान, स्वावलंबिनी और मानवी ही नहीं थी । वह सुख भोग्य नारी (woman of pleasure) तथा कर्तव्यमयी नारी (woman of duty) ही थी । कवि ने उसकी इन दो मध्यकालीन सामाजिक भूमिकाओं का ही रोमांटिक आदर्शीकरण कर डाला है । फलतः यह बिंब उनकी विचारधारा तथा स्वर्णयुगीन दिवास्वप्नों में बिखर कर धुँधला हो गया है । भोग और योग की समानुरक्ति की साधना करने वाली उनकी नारी केवल आँसुओं की ताकत रखती है ।

लज्जा का यही उत्तर है कि नारी तो पहले ही अपने संकल्प रूपी अश्रु-जल से अपने जीवन के सपने दान कर चुकी है। (अतः उसका स्वतन्त्र एवं स्वावलम्बी जीवन पथ अकल्पनीय है)। अतः वह 'केवल श्रद्धा' है और उसे विश्वासरूपी हिमालय के पगतल में आश्रित होकर जीवन के सुन्दर समतल में पीयूष-स्रोत सी बहते रहना है। यह मध्यकालीन गुप्त सम्राटों की संस्कृति के कवि कालिदास के आदर्श श्लोक का भावानुवाद है जिसमें भवानी को श्रद्धा तथा शंकर को विश्वास रूप बनाकर उनकी वंदना की गई है। कामायनी की मिथकीय या ऐतिहासिक या रूपकात्मक स्थितियों से यह धारणा बहुत पीछे खींच ले जाती है जिसे आधुनिक युग में सामंतीय बोध कहेंगे। कवि ने नारी का पगतल वाला पथ बताने के बाद आलोक रेखा भी बताई है कि उसे आँसू से भीगे आँचल पर मन का सब कुछ रखना होगा, तथा इसके बावजूद भी हँसते हँसते अपने हृदय

के अंतर्द्वंद्वों को दबाने का संधिपत्र लिखना होगा। अंतर्द्वंद्व से विहीन नारीत्व मात्र श्रद्धा होगा। पगतल में पीयूष-स्रोत सी बहने वाली श्रद्धा मात्र आंसुओं की धारा होगी। प्रसाद यही चाहते थे। 'कामायनी' में यही किया। दर्शनसर्ग तक वह श्रद्धा को वह कथापात्र बनाकर रखता है और तदुपरांत इसे त्रिपुर सुन्दरी, पूर्णकाम की प्रतिमा, शिव की शक्ति (तत्व) आदि धार्मिक-दार्शनिक प्रतीकों में ढालकर वायवी और देवी-सा बना देता है। वह नारी और सामाजिक मनुष्य नहीं रह जाती। कर्म सर्ग में एक स्थल पर वह अवश्य मनुष्य बनती है जब सुरति उत्तेजना से उसके अधर सूखते हैं और वह मादक सोमसुरा पीकर नूतन भाव जगाये हुए स्फूर्तिमयी हो जाती है ('स्फूर्तिमयी हो चली चित्त था नूतन भाव जगाये'—पांडुलिपि के एक अंश से उद्धृत।) इस अवसर पर वह प्राण को ढँकने वाला लज्जा का आवरण उतार फेंकती है और पुनः अपने 'चिरतन नारीत्व' को प्राप्त करती है। रति सुख के समय उसमें केलि और किलकिंचित् उदित होते हैं : एक रक्त खौलाने वाले व्याकुल चुंबन के साथ वे मिथुन हो जाते हैं और श्रद्धा के 'रोम रोम चिनगारी-से हो जाते हैं, सघन जघन थहराते हैं, शिथिल वेणी खुली पड़ती है और पलक अश्रु भर लाते हैं, (—पाडुलिपि का कटा हुआ अंश)। कवि के अनुसार श्रद्धा की पलभर की इस चचलता ने हृदय का स्वाधिकार खो दिया (ईर्ष्या सर्ग)। इसकी टिप्पणी अनापेक्षित है।

कामशक्ति के क्रिया एवं ज्ञान के अक्षों पर हम दूसरी सशक्त नारी को उभरते हुए पाते हैं। वह इडा है। हमारे विचार से पूर्णकाम और चिरंतन नारीत्व इन दो ध्रुवातो की द्वंद्वात्मक एकता है। कवि अततः काम और चिंतन से मुक्त मात्र 'भावमयी नारी' को आदर्श मानता है। प्रसाद का सामाजिक विकास इतना ही हुआ है कि वे रम्य नारी के स्थान पर भावमयी नारी का अभिषेक कर सके हैं। यह उनके अतर्विरोध का ही प्रसार है। यहाँ हम केवल काम एव रति के हाशियो में आई ईडा का ही निरूपण करेंगे। इसके पहले हम मनु के माध्यम से की गई काम की आलोचना का भी जिक्र कर दें क्योंकि यह आगे सहायता करेगी। काम ने मनु को भ्रम में डालकर जीवन का सुख एवं विश्राम छीन लिया है, उनके अनुसार काम मे अभिशाप-ताप की बही। (देवसृष्टि से चली आ रही—) ज्वाला जल रही है जिसमें मनु के अंग और मन, दोनों झुलसे हैं। मनु अनुभव करते हैं कि श्रद्धा बिना वे 'पूर्णकाम' नहीं हो सके, अर्थात् वे समृद्ध काम की साधना नहीं कर सके, अर्थात्

मनु पूछते हैं तुम किसकी हो ? इड़ा इसका सीधा उत्तर नहीं देती। वे गृहपति की तरह-से ही स्वाधिकार चाहते हैं और कहते हैं कि 'प्रजा मेरी नहीं है, तुम मेरी रानी हो। मेरी तृप्ति करो। अपने मधु अधरों के रस से मेरी प्यास बुझाओ।' मनु का नर-पशु हुंकार उठता है। वे आलिंगन करते हैं। यह एक अनाचारी मनु और उस दुर्बल नारी का आमना-सामना है जो नर-पशु की भुजा का अवलम्ब पाने की या अंधविश्वास के रजतनग के पैरों तले बहने की अभ्यासी नहीं है। वह अबला श्रद्धा नहीं है। वह राष्ट्रस्वामिनी है। वह ज्ञानशक्ति और स्वावलंबन स्वा स्वामिनी नारी (भी) है। वह मनु के प्रभुत्व युक्त और बलपूर्वक काम-भोग को 'पाप' की परिभाषा में बांधती है। इस धारणा के साथ ही काम या सेक्स का समानीकरण एवं सामाजिकीकरण हो जाता है। अब काम केवल बन्धनहीन व्यक्ति मनुष्य (मनु) का अधिकार ही नहीं रहता, बल्कि यह युगल सहमति और एक सामाजिक नैतिकता भी बन जाता है। मनु के हृदय में दुर्धर्ष प्रवृत्ति से भी महान् संघर्ष चलता है किन्तु वे केवल इड़ा-बालिका को ही चाहते हैं, वे केवल एक सुख क्षण चाहते हैं। (इस हताश जीवन में क्षण सुख मिल जाने दो)। इड़ा उन्हें समय देती है और धैर्य धरने का तथा उस (इड़ा) पर विश्वास करने का आग्रह करती है ताकि सब बात बनजाय। किन्तु प्रमाद के एक क्षण में मनु उसे अपनी भुजाओं में रोक लेते हैं। सारस्वत-रानी इड़ा और प्रजापति मनु के बीच के नये संबधों को

निर्धारित करने वाला कोई वासना-सर्ग न होकर एक संघर्ष-सर्ग है। यहाँ मनु 'अकेले' हो जाते हैं। यहाँ जीवन-पथ न होकर जीवन-रण है। यहाँ कौमुदी-उत्सव न होकर मरणपर्व है। इड़ा मनु से आतंक खत्म करने को कहती है। वह कहती है कि सबको जीने दो और फिर तुम भी सुख से जिओ। किन्तु अंतरिक्ष में 'मूलशक्ति' के उठकर खड़ी होने के स्थान पर 'महाशक्ति' हुंकार कर उठती है। मनु वासना-सरिता के बजाय रक्त-नदी मे डूबे हुए हैं। इस तरह 'काम' का हाशिया कवि की अक्षमता, कथा-सृष्टि के विकास, तथा इड़ा के प्रतीकत्व–इन तीनो कारणों से विलुप्त हो जाता है। एक बड़े शानदार और क्रान्तिकारी आयाम को प्रसाद अपने हाथ से गँवा देते हैं। इसके बाद तो कवि जनता की क्रान्ति तथा इड़ा के चरित्र दोनो का ही विद्रूपीकरण (distortion) करता है। इसे हम कवि की विचारधारा एवं यूतोपिया के अभिधान के अंतर्गत स्पष्ट करेंगे। निर्वेद सर्ग मे घृणा और ममता के द्वन्द्व में ग्लानि से भरी इड़ा मिलती है जो अग्नि शिखा-सी धधकती है। अततः प्रतीक-इकाई में इड़ा स्वयं को अपराधी समझने लगती है (इड़ा आज अपने को सबसे अपराधी है समझ रही)। अस्तु।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रसाद ने काम-रति के इन मिथकीय, दार्शनिक मनोवैज्ञानिक और (सर्वाधिक) सौंदर्यबोधात्मक आयामो में यथेष्ठ सिद्धि पाई है लेकिन उसका सामाजिक आयाम उनसे बिखरता चला गया है। वे रम्य नारी का विकास भावमयी नारी मे करके विश्रान्त-से हो गये हैं लेकिन सामाजिक नारी एवं कर्मशीला नारी या ज्ञानशीला नारी की धारणा को अपने स्वप्नो एव आदर्शों से परे की मानते हुए दिखते हैं। देवसृष्टि, बसंत, कौमुदी उत्सव, हृदय की रागपूर्ण यात्रा आदि की मनस्सौंदर्यात्मक स्थितियों मे उन्होंने मधु और माधव, काम और रति, पुरुष और नारी, रति और लज्जा—इन चार युगलों को क्रमशः अमूर्तों एव प्रतीकों के द्वारा अभिव्यंजित किया है। इसके लिये उन्होंने रूपकात्मक भाषा, ऋचात्मक भाषा आलंकारिक भाषा आदि के भेदों का व्यवहार करने के साथ-साथ स्वप्न, आत्मकथन, मायावरण की तकनीकी पद्धतियों का भी इस्तेमाल किया है। उन्होंने बसंत लोक प्रणय लोक और नारी के अन्तर्लोक को 'मधुमय बसंत', 'जगती के नील आवरण', 'माधवीनिशा' और 'माधुरी छाया' के वातावरणों में उभारा है। उनके इन संवेदनशील निरूपण में सौंदर्य बोधशास्त्र का, वैष्णव एवं शैव एवं छायावादी मीनाओं से मण्डित अभिनव कामसूत्र का, तथा शृंगार रस की छायावादी छायाओं से निर्मित शास्त्रीय नाट्यशास्त्र का भी अन्यतम सम्मेलन हुआ है। कवि ने इन सर्गत्रयी में अनादिकालीनता और मूलशक्ति को निरन्तर स्नेह और प्रेमकला में उदात्त तत्व से रूपान्तरित किया है।

८ । कुछ अस्तित्ववादी स्थितियाँ

जब सूक्ष्म और व्यापक इन्द्रियेतर मानसिक प्रतीकों, मिथकों या अन्या-पदेशिक (एलीगोरिकल) इन्द्रियों का निरूपण करते करते कहीं-कहीं और यदा-कदा, अस्तित्व की समस्याओं का भी सामना करने लगते हैं। इस प्रकार की सूक्ष्म और सम्पूर्ण सम्बन्ध वाली विश्वरूपम् (कोर्ट) के उत्सार में तत्त्व (essence) के साथ साथ अस्तित्व (existence) की समस्याओं का भी उत्तर सम्भव हो जाता है। सूक्ष्म माध्यमों का प्रयोग करने वाले तत्त्व वेत्ताओं को अनिर्वचनीय अनुभवों की अभिव्यञ्जना के लिये प्रतीकात्मक भाषा का भी सहज गूढ़ शब्दाश्रय करना होता है। इन्हें शब्दों के माध्यम से गूढ़ सार्थक अर्थों को प्रकाश करते करते निरर्थकता के छोरों पर भी पहुँच जाना पड़ता है। जब वे देश और काल के छोरों का अतिक्रमण (transcend) करते हैं अर्थात् जब वे निरपेक्षों (absolutes) का अन्वेषण करते हैं तभी महत्ता और सूक्ष्म–इस विराट इकाई का लघुतम अंश अर्थात् क्षण और कण का अस्तित्व भी इनके मानस को झकझोरता है। 'कामायनी' का विनयन प्रतीक, मिथक और अन्यापदेश इन तीनों की भूमिका पर भी हुआ है। इसीलिए इसमें महाकाल और क्षण, प्रकृति और कण, पुरुष और अकेला मनुष्य, मृत्यु और अमरता, विनोद और नारस्वत नगर, आनन्द और सुख के विरोधी घ्रुवांत भी प्रकट हो गये हैं। इस तरह विराट् द्वंद्वों के विपरीत छोरों पर तत्त्व तथा अस्तित्व के ध्रुवांत भी बन गये हैं। इसलिये इस आधुनिक महाकाव्य में भारतीय मानस में उभरने वाले आधुनिक अस्तित्ववाद के जीवन्त संकेत मिलते हैं। 'कामायनी' में अस्तित्ववाद के उदय की सैद्धांतिक भूमिका यही है।

सुमित्रानन्दन पंत में तत्त्वचिन्तन की गहराई नहीं है और वे इसे सौन्दर्य के मूल्यों द्वारा उदात्त बना देते रहे हैं। निराला का समग्र विकास तात्त्विक (essential) हुआ है। वे महत् और महान् के द्रष्टा रहे। 'राम की शक्तिपूजा' में

अस्तित्व का संकट गहराई से एक बार अनुभूत हुआ है जब अँधेरी रात में घने अंधकार को उगलने वाले गगन के कारण दिशा का ज्ञान खो जाता है, पवन स्तब्ध हो जाता है, पीछे विशाल अवुधि गरजता है, और पीछे जलती हुई मशाल स्थिर राघवेन्द्र को संशय से फिर फिर हिलाती है तथा राघवेन्द्र मे रावण की जय का भय अहरह उठता है। निराला के इसी क्षण का सदुपयोग करके नरेश मेहता ने संभवत. अपनी 'संशय की एक रात' में अस्तित्ववादी राम को भी प्रस्तुत किया है। लेकिन निराला का विकास आगे व्यग्य (satire) से बढ़कर फूहड़ता (absurdity) के सौंदर्यतत्त्व मे हो गया। अतः वे अस्तित्व की समस्याओं को मोड दे सके। लेकिन आनन्दवादी गम्भीर प्रसाद व्यग्य और फूहड़ता के बोध में रुचि नही रख सकते थे क्योंकि वे अपने समय की सामाजिक प्रक्रियाओ के प्रति तटस्थ से थे। अतएव सामाजिक विषमता और जीवन-अपूर्णता की उनकी अनुभूतियाँ विराट् के रूप मे प्रकट हुईं। किन्तु इस प्रकाशन के साथ साथ ही यह मूल अनुभूति अस्तित्व के प्रश्नो के रूप मे भी उदित हुई है। 'कामायनी' का रूप एवं विषयवस्तु एव प्रतीकात्मक औजार ऐसे थे कि [व्यंग्य हास्य और फूहड़ता के अभाव मे भी—] मनुष्य की कई अस्तित्ववादी स्थितियाँ उद्घाटित हो। और ये केवल संकेत रूप में हुईं। इस लेख मे हम 'कामायनी' की गवेषणा केवल इसी एकांतिक नजरिये से करेंगे।

'कामायनी' मे चिंता सर्ग से लेकर कर्म सर्ग तक जलप्रलय और मृत्यु तथा शून्यता का भीषण संत्रास (हॉरर) छाया हुआ है। मानों मनु मिथकीय इतिहास से कटकर केवल वर्तमान, और वर्तमान मे भी केवल क्षण के भोग तथा कण की स्थिरता का दाह एव दंश झेलना चाहते है (ये सभी शब्द'कामायनी' के हैं)। मनु मे मृत्यु भोग तथा अकेलापन('कौन' 'क्यों' 'कैसे' 'किसके' 'कहाँ'आदि के रूप में) सर्वोपरि है। कर्म सर्ग से उनमे स्वतत्रा और परिस्थितियों के नियत चुनाव के बोध जागते हैं। संघर्ष सर्ग मे आकर वे आत्म पराये (सेल्फ ऐलियिनेटेड) हो जाते हैं। इसके बाद मनु अंतर्भूमि पर पुनश्च तात्विक अनुभव करने लगते हैं। इस तरह चिंता सर्ग से लेकर संघर्ष सर्ग तक (महाकाव्य के दो तिहाई खण्ड मे) अस्तित्ववादी बोध भी कही कही झिलमिलाता है। इस खण्ड में क्षण का, एवं अस्तित्व का बोध आद्यन्त है। इसीलिये क्षण कण, बिंदु, परमाणु आदि कई बार आये हैं। इसीलिए विराट् के विरुद्ध (द्वंद्वहेतु) अस्तित्वमानक की उभरे हैं: यथा, प्रकृति और नियति, सृष्टि और प्रलय, अमरता और मृत्यु, जीवन और भय, चेतना और अस्तित्व, क्षण और काल, प्रजापति और अकेले मनु, आनन्द और अभिशाप, सहज

अराजकता और स्वतन्त्रता, कर्म और रिक्तता द्वद्व और दंश, आलोक और अधकार, शून्य और अर्थ, आदि आदि । इन धारणाओं की अर्थभूमि एक ओर तो भारतीय दर्शनो के प्रतीकों से मिश्रित है और दूसरी ओर कवि की अनुभूति का आधुनिक प्रक्षेपण है । ये दोनो दिशाएँ हमेशा ध्यान मे रखनी होंगी । इस भाँति 'कामायनी' भारतीय अस्तित्ववादी चिंता की भी सबसे पहली कृति है । इस दृष्टि से छायावादी प्रसाद पहले अस्तित्ववादी कवि भी माने जा सकते है । इस अनुच्छेद के अन्त मे हम पुनः यह दोहरा देना चाहते हैं कि अपने काव्य सृजन के अतिम चरण मे प्रसाद और निराला दोनो ही रहस्यात्मक तथा रहस्यान्वेषी होते चले गये हैं, दोनो ही एक न एक अद्वैतवादी दार्शनिक दृष्टिकोण को मानते हैं और दोनो ने ही सामाजिक यथार्थता का अतिक्रमण किया है । प्रसाद ने यह अतिक्रमण अस्तित्ववादी दिशा मे भी किया-कभी कभी और कही कही, और संभवतः केवल 'कामायनी' मे ।

हम एक बात और स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि 'कामायनी' की इस अस्तित्ववादी आलोचना मे पश्चिम की अस्तित्ववादी विचारधारा हमारी सहायता लगभग नही कर सकेगी । इसके तीन कारण हैं : एक तो ये अस्तित्ववादी बिंब तथा प्रतीक भारतीय षड्दर्शनो के सदर्भ वाले है, दूसरे ये 'कामायनी' की कथा-सृष्टि के बीच से उभरे हैं और तीसरे ये द्वद्व रूप मे अपने विरोधाभासित (पैरोडाक्सिकल) विराट् बिंब अथवा प्रतीक से सबद्ध हैं । एक अन्य बात शेष है । हम इस अस्तित्ववादी व्याख्या मे अन्य दार्शनिक धाराओं से जुड़े हुये प्रतीकों तथा कथावृत्तो पर विचार नही करेंगे जब तक कि वे इन अस्तित्ववादी इकाइयो के उपजीव्य नही बनते । अस्तु ।

चिंता सर्ग अव्यक्त प्रकृति से शुरू होता है जहाँ पच तत्त्वो मे से केवल एक तत्त्व की प्रधानता है जो या तो जड है अथवा चेतन, अर्थात् जो विवेक की अनुमिति से परे है । किन्तु प्रलय वर्णन की स्मृति मे हम केवल पचभूतो का भैरव मिश्रण पाते हैं । मानो जड़ एव अव्यक्त प्रकृति की नियति यही है—शून्यतापरक और अधकारपूर्ण । इस अस्तित्ववादी स्थिति मे प्रकृति विखरी हुई है तथा पुरुष भीगे नयनो वाला निष्क्रिय दर्शक । साख्य दर्शन की धारा भी अस्तित्व को तत्त्व के पहले मानती है । प्रलय ही तत्त्व और सृष्टि को समाप्त करके पुनः अस्तित्व मे लय करने वाली एक मध्याकालीन धारणा है । चिन्ता सर्ग मे सहार, ताडव, जड तत्त्व आदि एक आदिम एव प्रथम अस्तित्ववादी स्थिति को स्थिर कर रहे हैं । इस स्थिति मे मनु में चिन्ता की पहली रेखा के रूप मे

जीवन का नागर बोध उदित होता है क्योंकि वे देवसृष्टि के महाप्रोत से बने हैं, अनादि समय तक चलने वाले मृत्यु के काले शासन को भोग चुके हैं, देवताओं की अमर वेदना को लिये हुये मर-जी रहे हैं; देवताओं के ज्वालामय अभिचार (अभिचार, स्वागत, हठ, प्राण पूजा आदि) में मग्न रहे हैं और सहसा महाप्रलय द्वारा इस प्रकार में छोड़ दिये गये हैं। चारों ओर शून्यता, मृत्यु और चिन्ता है। इस स्थिति में प्रकृति दुर्जेय रही थी और सभी पराजित हो गये थे। मनु यही कामना करते हैं कि जड़ता से उनका शून्य भर दिया जाय। वे देवयजनों की पूर्णाहुति की ज्वालाओं तथा प्रलय लहरों की मालाओं में विलीन होकर चेतना के स्तूप हो रहे हैं।

जीवन के ध्वंसांश के रूप में वे मात्र मृत्यु-भोग करते हैं क्योंकि मृत्यु के काले शासन में वे जी आये हैं। उनके लिये मृत्यु का अनुभव एक चिर निद्रा है जिसका अंक हिमानी–सा शीतल है, अथवा एक शीतल निराशा है, अथवा एक अमर वेदना का अनुभव है जिसमें जीव और जीवन दोनों निरर्थक हैं (तो फिर क्या मैं जिऊँ और भी जीकर क्या करना होगा ?)। इसी मृत्युभोग की अमर वेदना में गलते हुए मनु ईर्ष्या सर्ग में श्रद्धा से कहते हैं कि जब स्वर्गीय सुखों पर प्रलय नृत्य हो चुका है और जिसके बाद केवल नाश और चिर निद्रा है तब विश्वास को सत्य क्यों माना जाय ? इस जीवन में एक निरन्तर संघर्ष चल रहा है जिसमे प्रशांति और मंगल के मूल्य भी मिट जाएंगे। अतः वह केवल अपनी ही चिन्ता को महत मानते हैं। यही उनकी 'प्रतिबद्धता' है। कर्म सर्ग मे वे जो पशु - यज्ञ करते हैं वह केवल स्वतंत्रता के चुनाव के लिये। उनकी स्वतंत्रता केवल दु.ख पाने की है (मुझको दुख पाने दो स्वतन्त्र)। वे न तो श्रद्धागेह के बन्धन स्वीकार करते हैं और न समाजकल्याण के। वे केवल कर्म की प्रतिबद्धता चाहते हैं, न कि मूल्य की। उनका मृत्युभोग भी चिर अशांत है (तुम जरामरण में चिर अशांत)। संघर्ष सर्ग मे मनु पुनः एक मरण-पर्व देखते हैं जहाँ भयानक अवस्था, पददलित व्यवस्था, सामूहिक बलि, और अंतरिक्ष मे हुंकारती अदृश्य महाशक्ति है। अंधकार की शक्तियों के प्रतीक रुद्र के नृत्य से पुन. प्रकृति त्रस्त हो उठती है। इस प्रलयमयी क्रीड़ा मे नियति विकर्षणमयी है, परमाणु विकल हैं और सभी त्रास से व्याकुल है।

'कामायनी' मे मृत्युभोग के ही साथ प्रलय और विनाश (संहार) के धार्मिक तत्त्वप्रतीक भी जुड़े हैं। इसका आवेग भीषणता और तीव्रता है। 'कामायनी' में ऐसी स्थितियों मे हम भीषणता [illegible]

व्यस्त, विकल और बिखरे हुए परमाणुओं को पाते है। यह कवि के अंकन का पैटर्न है। इस पैटर्न मे क्रूरता और कठोरता की नियति के बीच मनु को हमेशा अपने अस्तित्व की रक्षा का ख्याल आता है। क्रूर और कठोर प्रलयों के तीव्र तथा भीषण परिवर्तन के दौरान 'कामायनी' के मनु मे जडता का बोध होता है क्योकि प्रकृति भी चहुँ ओर जड़ और भूत हो जाया करती है। यह जड़ता शून्यता का उजड़ापन देती है (शून्यता का उजड़ा-सा राज)। मनु इस जड़ता का अतिक्रमण 'अनादि वासना' अर्थात् रति (जो आकर्षण बन हँसती थी रति थी अनादि वासना वही) के द्वारा करते हैं क्योकि उसमे 'अव्यक्त प्रकृति' (जड़) के उन्मीलन की चाह है। इसकी तुलना मे श्रद्धा का रास्ता तात्त्विक है। उसके लिये तो काम सर्ग की इच्छा, और कर्म मानवता को विजयिनी बनाने वाला साधन है।

इस दशा मे तो ऐसा लगता है कि 'कामायनी' मे अस्तित्व एवं तत्त्व (या सत्ता) के द्वंद्व को 'प्रकृति' के बहुमुखी प्रतीक द्वारा उभारा गया है। प्रकृति-नियति ससृति की त्रयी के केन्द्र मे अकेला अस्तित्ववादी मनु बद्धजीव सा हो गया है। उसकी जीवन्मुक्त दशा तो दर्शन सर्ग से शुरु होती है। इस लेख मे वह अप्रासंगिक है। प्रकृति की अस्तित्ववादी अर्थमीमांसा सांख्य, शैव, तन्त्र, वेदांत आदि के अर्थों को घुलामिलाकर हुई है। 'कामायनी' मे एक ओर तो वैदिक प्रकृति शक्तियाँ (विश्वदेव, सविता, पूषा, सोम, मरुत) हैं, दूसरी ओर प्रकृति का सौंदर्य (अलसाई वनस्पतियो के जगने से प्रकृति प्रबुद्ध होने लगी, आवरण मुक्त प्रकृति हरी हो गई, पाषाणी हिमवती प्रकृति सोमन हो गई इत्यादि) है, तथा तीसरी ओर प्रकृति तत्त्व है। इस प्रकृति तत्त्व की ही अस्तित्ववादी नैसर्गिता अभिहित हुई है। इस सदर्भ मे भी हम देखते हैं कि पुरुष विहीन अकेली प्रकृति प्लावन के बाद की मर्मवेदना को सुनती है, प्लावन के बाद त्रस्त प्रकृति का मुख फिर से हँसने लगता है, ध्वंसनाश के नृत्य करते ही प्रकृति त्रस्त हो जाती है, संघर्ष मे वह आतंक विस्तारित हो जाती है, इत्यादि। जब प्रकृति सकर्मक होती है तब उसके सान्निध्य मे जीवन भी निज अस्तित्व बनाये रखने मे व्यस्त हो जाता है। इसी प्रकृति से अहंकार और सातत्य का बोध होता है अर्थात् यह अस्तित्ववादी मनुष्य का आधार है। इस सर्ग मे यही काल-नियति-कला-राग-विद्या के अंश पर मनुष्य को सीमित करती है। अतः प्रकृति विनाश, प्रलय, नियति का धुंधला प्रतीक हो गई है।

इसकी वजह से प्रकृति दुर्ज्ञेय तथा व्याख्यातीत हो गई है। इसी वजह से मनु मे अस्तित्व की निरर्थकता अर्थात् शून्यता का बोध जगता है (सु-सु

करता नाच रहा था अनस्तित्व का तांडव नृत्य) जिसकी अनुभूति उष्मा भरा जीवन न होकर शीतल मृत्यु है। इस अनस्तित्व की अविवेकगामिता (इरॅशनालिटी) का सूत्र है : 'देव न थे हम : और न ये हैं।' इसी की तुलना में अस्तित्व बोध है जिसका सूत्र है : 'मैं हूँ : मैं रहूँ।' इस सूत्र मे अस्तित्व और सत्ता मिल गये हैं। 'मैं हूँ' और 'मैं रहूँ' शैवाद्वैत की उपायावस्थाएँ भी हैं। लेकिन इनके बीच मे व्याख्याविहीनता का जो बोध है वह दृष्टव्य है। कवि ने इसे कुतूहल-आकर्षण की भावदशाओ से व्यक्त किया है। 'अनजान' की यह अवस्था एक ओर तो भविष्य के प्रति अज्ञान है, दूसरी ओर विराट् की सत्ता के प्रति अविवेकगामिता है, तथा तीसरी ओर आधुनिक सघर्षशील समाज की अव्यवस्था की विषम पीडा की यंत्रणा है जहाँ समाज महायंत्र का- तथा मानवीय चेतना क्रियातंत्र की गुलाम है (श्रममय कोलाहल, पीडनमय विकल, प्रवर्तन महायन्त्र का, क्षण भर भी विश्राम नहीं है प्राण दास है क्रियातंत्र का)। तो, इस महायंत्र और क्रियातंत्र मे बँधा हुआ प्राणी अस्तित्व के चिरंतन धनुष से विषमतीर सा- न जाने कब छूट पडा है और शून्य को चीरता हुआ न जाने किस लक्ष्य को वेधना चाहता है (इड़ा सर्ग का पहला पद्य)। अत. मनु की गति मे कर्म तो है किन्तु लक्ष्यधर्मिता के अभाव मे प्रतिबद्धता नही है। इसीलिए कर्म सर्ग मे यज्ञ करने वाले, और सघर्ष सर्ग मे नियम बनाने वाले मनु पहले तो अपने को चिरमुक्त मानते हैं, तथा दूसरे कही भी प्रतिबद्ध नही होते : न तो श्रद्धा के प्रति, न राष्ट्रस्वामिनी के प्रति, न सारस्वत नगर की व्यवस्था के प्रति, और न ही जनता (प्रजा) के प्रति। मनु अपनी इस स्वतंत्रता का प्रयोजन जानते हैं : दुख पाना (तुम अपने सुख से सुखी रहो मुझको दुख पाने दो स्वतत्र) स्वतत्रता का यह बोध उच्छृखलता तथा अराजकता की सीमा तक (सघर्ष सर्ग मे) पहुँचता है। लेकिन यहाँ मनु चुनाव करने के लिये स्वतंत्र हैं। दोनो ही विकल्प त्रासद एव फूहड़ हैं : मेरी रानी इड़ा अथवा सामूहिक वलि (युद्ध)। 'है' से 'होने' के इस बोध मे मनु की स्वतत्रता का सारतत्व है . 'कुछ मेरा हो।' इसके लिये भी मनु की जो स्वतत्रता है वह केवल अपनी रुचि के लिए है। ऐसे मनु जीवन मे सारी श्रद्धा से विहीन हो चुके हैं। श्रद्धाविहीन विश्व मे मनु अकेले हैं। मनु की अशांति मनु के अस्तित्व का घाव तथा अभिशाप है। इसीलिये इन दो सर्गों मे मनु व्यक्ति (इंडीजुअल) से अधिक पुरुष (पर्सन) हैं। इसलिये चिर अतृप्ति ही जीवन है (निर्वेद) जो अस्तित्व के लिये भटक रहा है। जीवन के ये निष्ठुर

—

दंशन है जिनसे आतुर पीड़ा, व्यथा, अवसाद मनु झेलते हैं। ये अभाव के विकल घाव हैं जिन्हें अस्तित्ववादी स्वतंत्रता देनी है। नीत्शे ने भी इन्हें पाश्चात्य सदर्भ मे 'अस्तित्व का घाव' कहा है। सारांश मे 'कामायनी' में अस्तित्ववादी मनुष्य के स्वरूप की धारणा यही है। एक ओर वह काल-कला नियति-राग-विद्या से सकुचित है तो दूसरी ओर स्पर्श-रूप-रस-गध-ध्वनि की चेतना से सीमित है, तथा तीसरी ओर भटके हुये क्षुद्र अस्तित्ववाला है।

ऐसे मनुष्य की अस्तित्ववादी स्थितियों मे अकेलापन, अपरिचय और अनजानापन प्रमुख होजाया करते हैं। पहला बोध अकेलेपन का है जिसमे अस्तित्व-वादी छायाएँ हैं। यह तीन कारणो से उद्‌बुद्ध हुआ है : एक, आत्म विश्वासपूर्ण देव सृष्टि के विनाश के बाद वे अकेले बच रहते हैं, दो, समाज रहित तथा कर्म-विरत हैं, और, तीन आत्मविश्वास का लोप तथा अस्तित्व का सकट उन्हे शून्यता, मृत्यु जड़ता चिंता आदि से आबद्ध कर लेता है। यह बोध मौनता तथा अँधेरे के परिवेश मे उभरता है। अत: वे निर्जनता एव नीरवता की गहराई मे अकेले रहने को दंडित हैं; उन्हे स्वय पता नही है कि अकेले कब तक रहना होगा (कब तक और अकेले ? कह दो हे मेरे जीवन बोलो), वे इस निर्जन मे एक अकेले हैं। यह अकेलापन जीवन के अवरुद्ध हो जाने से उद्‌भूत हुआ है। इसका अगला छायानुवेश संघर्ष सर्ग मे हुआ है जब नियम बनाकर भी वे सारस्वत नगर की नियम व्यवस्था के प्रति उदासीन हैं, समाज मे रहकर भी समाज के किसी त्यागपूर्ण उत्तरदायित्व को नही स्वीकार करते और स्वय को प्रकृति तथा उसके पुतलो के भीषण दल मे 'अकेला' पाते है। जीवन-रण मे यह अकेलापन आत्मपरायेपन (seltalienation) की उपच्छायाओं को भी धारण करता है क्योकि इसमे मनु के अंधे प्रारब्ध का सवाल भी सलग्न है। इस नये अकेलेपन मे निरर्थकता है जिसमे कि मनु शापित जीवन का कंकाल लेकर भटकते रहते हैं और उसी के खोखलेपन मे मानो कुछ खोजते हुए अटक जाते हैं (निर्वेद सर्ग)। सारस्वत नगर मे इतना सब कुछ करने के बाद भी मनु मात्र फूहड़ता (Absurdity) के शिकार होते हैं : भोग मे अतृप्ति, प्रजापतित्व मे परतत्रता, व्यस्त सारस्वत नगर मे आत्मनिर्वासन आदि। इस भाविता (becoming) के अन्धकार, नीरवता और पहले की निर्जनता के बीच मनुष्य (मनु) मे अजनबीपन का विकास होता है जिसे कवि ने अनजान और 'अपरिचय' जैसे शब्दो से मुखर किया है। इस अजनबीपन का निराकरण कवि की श्रद्धा या कामायनी मगल, विश्वकल्याण के द्वारा कराना चाहती है

लेकिन मनु 'मैं की मेरी चेतनता' (being becoming)द्वारा भी करते हैं, तथा कुतूहल के द्वारा भी । यह कुतूहल पूर्णत: अविवेकगामी (इरेशनल) है और यह मनु का अद्वैतवादी प्रारब्ध है । यहाँ ये तत्व भारतीय धर्मचिंतन से अनुस्यूत किये गये हैं । यह कुतूहल बुद्धि (इडा) अनुमोदित कतई नहीं है; बल्कि अहं, भय, काम (मूल शक्ति), अस्मिता तत्व, (प्राकृतिक भूख) अभिशाप, अपराध आदि के अस्तित्ववादी संवेगों (exis tetialemotions) से जुड़ा हुआ है । अत यह मनु को इतिहास के चरण में निजस्थान उजड़ापन देता है । महाकाव्य की केन्द्रीय घटनाओं में बिखरे अनेक प्रश्नवाचक अध्याय इस कुतूहल के बोध बिंदु हैं । अब तक मनु जीवन में अनजान बनकर ही चलते आ रहे हैं क्योंकि वे इतिहास को भूलते जा रहे हैं (चलता है विस्मृति का मार्ग, चल रहा हूँ बनकर अनजान); और दक्षिण अर्थात् सारस्वत प्रांत के समाज में उनको आत्मनिर्वासन के डर चुभते हैं ('अब कोई रहकर निर्वासित तुम, क्यों लगे डर ?) । इसीलिए मनु में एकांतिक बोध वाला जीवन एकांत स्वार्थ ही उभरता है जो उन्हें आगे विनाश की चरम स्थिति में जकड़ता जाता है (यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा) । उनका यह एकांत उनकी समृद्धि की सीमारेखा है। इसी सीमा और संकोच की वजह से मनु का मनोविज्ञान भी उद्भ्रांत क्यों बाधा हो जाता है । वे विशिष्ट अनुभूति से यही जान पाते कि यह देव है या देवता है या व्यक्ति है अथवा क्या और

(दिशा विकंपित, पल असीम है; क्षण भर में सब परिवर्तित अणु अणु थे विश्व कमल के)। मनु के अस्तित्ववादी क्षण पर विनाश और अभाव और वर्तमान की काली छायाएँ गहरी होकर पड़ती है। ऐसे क्षण ही उन्हें अतीत से और इतिहास बोध से काटकर वर्तमान के उन अप्रतिबद्ध कार्यों (कर्मों) में जुटा देते हैं जिनकी नियति भयानक तथा त्रासद है। अत. ऐसे क्षण उनमें वर्तमान के बोध को जगाते हैं। ऐसे क्षणों में अतीत सपना हो जाता है, भविष्य के प्रति रुद्धता रहती है और मात्र वर्तमान शेष रहता है। इस वर्तमान की दुविधा वाली नियति है · मनु वर्तमान में जीकर भी वर्तमान से वंचित हैं (हो वर्तमान से वंचित तुम अपने भविष्य में रहो रुद्ध) और इस वर्तमान के सब क्षण रोकर बीत जाते है (रोकर बीते सब वर्तमान क्षण सुन्दर सपना हो अतीत: इडा सर्ग)। अतः जीवन के इस अस्तित्व अभिशाप के कारण मनु श्रद्धा और इडा और सारस्वत जनता तीनों के साथ रह कर भी परस्पर अजनबी बने रहते हैं। अत. मनु का क्षण तर्क तथा श्रद्धा दोनों में निरर्थक है। यह मनु की नियति का बहुपक्षीय आत्म परायापन (self alienation) है।

अस्तित्ववादी तनाव अगर इतिहास को वर्तमान के एक क्षण में केंद्रीभूत करता है तो प्रकृति या सृष्टि को भी कण-कण में बिखरा देता है। 'कामायनी' में साख्य दर्शन और शैव दर्शन के अनुकूल इन कणों को ताडव नर्तन, नियति, सहार-सृष्टि-स्थिति आदि के द्वारा अनुशासित किया गया है। किन्तु इन कणों में अस्तव्यस्तता विकलता, निस्सारता भी है। अत 'कामायनी' में क्षण के साथ साथ 'कण', 'अंश', 'बिंदु' आदि की भी इकाइयाँ विनीत हुई हैं। श्रद्धा का पराग शरीर परमाणुरचित है, जीवन एक क्षुद्र अंश है कणों में बिखरी हुई शक्ति निरुपाय है, सौंदर्य कण कण में उलझ जाता है अणुओं को विश्राम नहीं है; रुद्र ताडव में परमाणु विकल हो जाते हैं, वसुधा के अणु-अणु सजग उठते हैं; इत्यादि। इनका प्रयोजन भी विराट् को भूत एव लघु में केंद्रीभूत करना है।

निष्कर्ष रूप में, 'कामायनी' में ये अस्तित्ववादी संकेत शुरू दूसरा सर्ग सर्ग तक (और यदाकदा निर्वेद सर्ग तक) टूटने-मिटने फूटने मिटने चलते हैं। इनमें सम्यक् योजना नहीं है क्योंकि कवि का आदर्श अस्तित्व के बजाय समग्र का दिग्दर्शन करना रहा है। अस्तित्व के प्रश्न तो कथा सृष्टि के माध्यम तथा की प्रकृति और कवि के पुनोत्थित मानस के सहोग सुख उन्मेष के रूप में सहसा उभरे हैं। इनका सारांशीकरण स्वयं कवि ने ही (इडा सर्ग के प्रारंभ में) कर दिया है "अस्तित्व के चिरन्तन धनु से न जाने कब जीवन का यह विषम तीर छूट पड़ा है और शून्य को बींधता हुआ न जाने किस लक्ष्य का संधान करेगा !!......!!"

१ । रसदर्शन के आयाम

यह एक बेहद उचित और रोचक प्रश्न है कि हम 'कामायनी' में रस दर्शन की चर्चा करें। स्वयं प्रसाद ने अपने निबंधों में रस सिद्धान्त की व्याख्या की है, और नाटकों में शास्त्रीय तत्वों एवं आधुनिक रोमांटिक तत्वों को मिलाकर इसे नई व्याख्या देने की कोशिश की है। नगेन्द्र ने इस मर्म को पकड़ा है। इसीलिये वे प्रायः प्रसाद के नाटकों को नारी-त्रासदी (she-tragedy) मानते हैं जिसका अंत न तो सुखान्त है और न ही दुखान्त, बल्कि कवि प्रसाद के नये बोध के अनुरूप 'प्रसादान्त'।

'कामायनी' का मूल रस क्या है? कामायनी में कौन-कौन से रस हैं? 'कामायनी' में रस है अथवा रसाभास? क्या 'कामायनी' में रस-परिपाक हुआ है? — ये सवाल निरंतर चर्चित हुए हैं और शास्त्रीय पंडितों के बीच अच्छा खासा शास्त्रार्थ और वितंडावाद मचाते रहे हैं। यदि हम 'कामायनी' को छायावादी महाकाव्य और आधुनिक युग की सफल अथवा असफल रचना मानते हैं तो हमें कृति के प्रतिमानात्मक माध्यम, अमूर्त चरित्र विधान और कवि की मौलिक प्रतिभा की तुला पर ही इन प्रश्नों को तौलना पड़ेगा। ये सभी प्रश्न केवल इसी लक्ष्य की ओर ले जाते हैं कि 'कामायनी' शास्त्रीय रस के तुलामानों में तुल नहीं पाई। इसके लिये शास्त्रीय विदग्धजनों को उद्विग्न रस, रमणीयरस, शृङ्गाररस आदि के नये साँचो की ढलन भी करनी पड़ी क्योंकि वे इस अमूल्य कृति को अपने क्लासिकल पाश से निकलकर रोमांटिक सौंदर्यबोध के झीने रहस्यपूर्ण अंचल से नही ढँकने देना चाहते हैं। हम इस चर्चा को सौंदर्य बोधशास्त्र (aesthetics) की दृष्टि से उठायेंगे। हमारा मूल उपसाध्य यह है कि इस कृति मे रस दर्शन के सैद्धांतिक सूत्र ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। इसलिये हम रसनिष्पत्ति के बजाय रसदर्शन को केन्द्र मे रखेंगे। यह स्पष्ट है कि प्रसाद पर माहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त के मतो का मधुर प्रभाव पड़ा है। यों उन्होने

वेदान्त की दृष्टि और शैव की आनन्द-दृष्टि को भी अपने ढंग से ग्रहण किया है ।

'कामायनी' में निश्चय ही तो बहुत कुछ ऐसा है जो हमें रस के रूढ लक्षण निरूपण की प्रवृत्ति से दूर ले जाता है—तरंगों में फेंकी मणि की तरह । पहले तो इस कथा सृष्टि में पात्रों और घटनाओं के साथ-साथ बीच बीच में—मानव जाति का इतिहास तथा मानव मनोविज्ञान का विकास भी गुंथा है। दूसरे, इसमें (विशेष के द्वारा रूप में) स्थूल एवं इतिहास घटनाओं के अन्तराल में सूक्ष्म अनुभूति या भाव का विकास रूप के रूप में अभिव्यक्त है (दे० कृति का अनुभाव)। तीसरे, इसमें कथा के कार्य-व्यापार को गौण बनाया गया है और सांकेतिक रूपों के सूत्र भी बिखेरे गये हैं जिससे विभावादि का क्रम भी बिखर जाता है। चौथे, इसमें जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह संवेगों (emotions) तथा विचारों (thoughts) के शब्द-शक्तियों वाले विधान को लांघकर अनुभूतियों (feelings) तथा संवेदनाओं (sensations) की एक अनिर्वचनीय माया को रचती है जिसमें ध्वन्यात्मक उद्बोधन, रूपकात्मक अर्थ-भ्रांति, सार्थक अप्रस्तुतियाँ, शब्द एवं अर्थों के बीच की माया का अंतराल आदि के तत्त्व सन्निविष्ट हुए हैं । पाँचवें, यह एक कुशल नाटककार के द्वारा लिखा गया भावों का महाकाव्य है जिसकी वजह से कवि ने स्वप्न, स्वगत कथन, पात्रागमन, मानसिक प्रतीक, संवाद आदि का तकनीकी परिशोध किया है ताकि वे महाकाव्य के माध्यम के अनुकूल हो जाएँ । और अंततः, कवि ने इस कृति में नृत्य, गान, अभिनय, चित्र, वाद्यादि कलाओं के अन्तर्संबंधों को कायम करके एक संपूर्ण सौंदर्यतात्विक प्रभाव (Total aesthetic effect) उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है । इसलिये कवि के ये मौलिक प्रयोग शास्त्रीय 'रसविघ्न'- से हो जाते हैं और दिग्गज विद्वानों के लिये अन्धेर हो जाता है । इसका सौंदर्य तो सौंदर्यबोध शास्त्र ही पकड सकता है । सौंदर्यबोध शास्त्र में हम भाव या विचार की अभिव्यक्ति को स्थायीभाव या स्वयं प्रकाश्य ज्ञान तक पहुँचाना अनिवार्य नहीं मानते । सौंदर्यतात्विक प्रभाव की इकाई मुद्रा (gesture) तथा प्रत्यक्ष (percept) है । सौंदर्यबोध की मूल गहराइयाँ अनुभूति एवं संवेदना हैं । शास्त्रीय दृष्टि इन पर तब विचार करती है जब स्थाई भाव का रूपांतर रस में होने को होता है । सौंदर्यबोधात्मक दृष्टिकोण इनकी मूल इकाइयों का विन्यास पहले और गंभीरतापूर्वक करता है। अतः 'कामायनी' का कलात्मक माध्यम 'अर्थ' से अधिक 'शब्द' है जहाँ 'शब्द' रूढ अर्थों का अतिक्रमण कर जाते हैं । इस महाकाव्य के कलात्मक माध्यम में छनते हुए शब्द

अनुभुतियाँ एवं संवेदनाओं की माया से लिपटे हैं। इसलिये यहाँ शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध के बोधो में अन्त:मिश्रण हो जाता है और इन्हें मिलाजुलाकर कई मिश्रित इंद्रियबोध प्राप्त हो जाते है। ऐसी परिस्थिति में उत्प्रेक्षाएँ थोड़ी मदद करती है। लेकिन एक बिंब को एक विशेषण को एक क्रियाविशेषण रूपक, के द्वारा खोलते चले जाने की प्रणाली ही मिश्रित इंद्रियबोधों, संवेदनाओं एवं अनुभूतियो वाली सौंदर्यतात्विक स्थिति की आत्माभिव्यंजना कर सकती है। इसी वजह से 'कामायनी' में बहुधा दुरूहता लगती है। दुरूहता के कई कारणों में से यह सबसे प्रमुख है। इसीलिये कवि को शब्द और महाकाव्य इन दोनों के परपरानुमोदित ढांचे तोड़ने पड़े है। यह भजन कार्य प्रसाद से अधिक निराला ने किया है।

हमारे मन मे एक बात और है। उसका सम्बन्ध रसनिष्पति के दौरान साधारणीकरण से है। साधारणीकरण, और उसके भावना-व्यापार, का एक प्रमुख क्रियाधर्म (फंक्शन) है कि वह पात्रो (संज्ञा) एवं घटनाओं (क्रिया) को 'काल' के अश मे मुक्त करके शाश्वत कर देता है, 'स्थान' (दिशा) के अश से मुक्त करके शुद्ध (रजो एव तमो गुण मे मुक्त) एव विमल कर देता है तथा 'व्यक्ति' के अश में मुक्त करके स्व-पर-तटस्थ सम्बन्धो से विमुक्त करके मानवीय कर देता है। 'कामायनी' मे एक तो पात्र एव घटनाएँ पहले से ही प्रतीकात्मक हैं और दूसरे इनका सम्बन्ध उन वृत्तियो से ही है जो साधारणीकरण द्वारा भावित होती हैं। इसलिये 'यहाँ साधारणीकरण की भूमिका इतनी प्रभावशालिनी एव सार्थक नहीं होती। यहाँ अभिधा (इतिहास वृत्त) के धरातल की क्षीणता है और वृत्ति की तात्विक भूमि ही सूक्ष्म भाव वाली

शब्दों में–) आशा सर्ग मे एक दुहरे साधारणीकरण की-सी स्थिति मौजूद हो जाती है।

अब हमें 'कामयनी' की 'मूल अनुभूति' को समझ लेना चाहिए (क्योकि कवि ने इसमे मूल प्रकृति, मूल शक्ति, मूल चेतना आदि शब्दो का भी इस्तेमाल किया है)। वस्तुत. यह आर्कटाइपल बिंबो और समस्त मानवता के जातीय अतीत का सहसा (प्रज्ञा के द्वारा) चारु रूप (तर्क के बजाय प्रेय में) प्रकाशन है। यहाँ कवि की मिथक-व्याख्या का बीज है जो 'कामायनी' के आमुख मे मिथक-विश्लेषण हो गया है। कवि के अनुसार सत्य अथवा श्रेय ज्ञान किसी एक व्यक्ति की, एक राष्ट्र की, एक सस्कृति अथवा एक कला की व्यक्तिगत सत्ता न होकर एक 'शाश्वत चेतना' विभिन्न युगो मे इतिहास की वस्तु होकर और विभिन्न सस्कृतियो मे अनुभूति की वस्तु होकर सास्कृतिक पैटर्नों की रचना करती है। अत· साधारण शाश्वत चेतना के ये प्रतिरूप इतिहास की वस्तु भी हैं अर्थात् तब ये अपनी वैयक्तिक 'असाधारण अवस्था' में आलोकित एव ऊर्जस्वित होते है। लेकिन ऐसे परिवर्तमान पैटर्न मूलत शाश्वत है। जब इनका ग्रहण 'मनन' (सकल्प, के द्वारा 'सहसा' किया जाता है ताकि ये चारु एव प्रेय रूप मे प्रकट हो सकें, तब वह 'काव्य' होता है, और कवि ऐसे काव्य की अनुभूति को 'सकल्पात्मक मूल अनुभूति' कहता है।

प्रसाद ने *'कामायनी' के वैदिक आख्यान मे इसीलिये मानवता का विकास* तथा मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास भी अन्वित हो जाने की बात कही है क्योंकि इसकी कथा मे मात्र घटनारूप अर्थात् ऐतिहासिक सत्य ही नही, बल्कि अनुभूति रूप अर्थात् चिरतन सत्य भी प्रतिष्ठित है। इसमे मनु मनन का प्रतीक भी बना दिये गये हैं। इस तरह मन (मनु) की सकल्पात्मक (कामायनीपरक) अनुभूति (चिरतन सत्य का ग्रहण) का सूत्र पू-। हो जाता है। कवि के अनुसार 'सप्तसिंधु के तरुण आर्यों ने आनंदवाली धारा का अधिक स्वागत किया क्योंकि वे स्वत्व के उपासक थे।··· आत्मा में आनद भोग का भारतीय आर्यों ने बडा आदर किया। भारत के आर्यों ने कर्मकाड और बडे-बडे यज्ञों मे उल्लासपूर्ण *आनद का ही दृश्य देखना आरभ किया।' इस तरह कवि आनद का स्वभाव* ही उल्लास मानता है। उसके अनुसार शैवागमो मे आत्मा के विशुद्ध अद्वैत स्वरूप को आनदमय मानने की धारा बही। शैवागमो मे विश्व को भी आत्मा का अभिन्न अग मान लिया गया। इसीलिए उनकी भावना में प्रकृत रस की सृष्टि सजीव थी। अत: सहज आनंद की भी कल्पना हो गई। कवि ने शैव एवं शाक्त आगमों का अतर बताया है. जगत् (इदम्) को आत्मा

(अहम्) में पर्यवसित करने वाले शैवागमवादी हुए; तथा आत्म (अहम्) को शक्तितरंग जगत (इदम्) में लीन होने की साधना करने वाले शाक्तागम वादी हुए । साराश मे, रहस्य साधना शक्ति एवं आनंद प्रधान धारा थी। संभवतः प्रसाद ने महाकाव्य मे प्राकृतिक सौंदर्य को शक्तिवादी धारा तथा आत्म सौंदर्य को शैववादी धारा के दृष्टिकोणो से समन्वित करने की निरतर चेष्टा की है। स्वयं कवि ने 'प्रकृति' अथवा 'शक्ति' के रहस्यवाद के बावत कहा है कि 'विश्व सुन्दरी प्रकृति मे चेतनता के आरोप · की···सौंदर्यमयी व्यजना वर्तमान हिन्दी मे हो रही है।' अत: 'कामायनी' में प्रकृति और साख्य 'प्रकृति' का अतराव लंबन हो गया है । प्रकृति की शक्ति और आनद का तत्त्व 'अनत रमणीयता' के रूप मे बारबार आलोकित एव ऊर्जस्वित हुआ है। इसके साथ ही 'शक्ति' तत्त्व 'मूल प्रकृति' एवं 'मूल शक्ति' के रूप मे भी अनुमित हुआ है। यदि श्रद्धा (आशा सर्ग) मे शक्ति के व्यस्त बिखरे निरुपाय विद्युत्कणो का समन्वय करके मानवता के विजयिनी होने का सदेश देती है, तो मनु मे मूलशक्ति (प्रेमकला) उठ खडी होती है। इन दार्शनिक छायाओ के कारण कृति मे 'काम' की कला एव शक्ति का व्यापक ग्रहण हुआ है । कवि ने चिंता सर्ग मे वैदिक 'काम' के व्यापक अतिचार का वर्णन करके—कथाचक्र के अनुकूल— उसे आगम शास्त्रों की कामकला के रूप मे ढाला है । अत: श्रद्धा कामबाला हो जाती है और मूलशक्ति 'प्रेमकला' । इस तरह श्रद्धा सर्ग से लेकर लज्जा सर्ग तक सौंदर्य एवं आनद एव उन्मद भाव का तात्त्विक मिलन हुआ है।

इन दार्शनिक भूमियो पर प्रसाद ने रस दर्शन की अपनी कल्पना की है। कवि ने वासना सर्ग मे प्रेम का रहस्य तथा काम सर्ग एव लज्जा सर्ग मे कामकला की सौंदर्योपासना का मेल किया है। उन्होने इस आनन्दपथ को रहस्यवादी बनाया है क्योंकि उनका मूलाधार शैवाद्वैतवादियो का सामरस्य वाला रहस्य था। कवि ने आनन्द की प्रतिष्ठा मे एक ओर उल्लास को जोड़ा है तो दूसरी ओर प्रेम एवं प्रमोद को। यह कवि का 'आनन्द रस' है। माहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त ने अभेदमय आनन्दपथ वाले शैवाद्वैतवाद के अनुसार साहित्य मे रस की व्याख्या की थी। प्रसाद ने 'कामायनी' के काव्यरस मे ही नाट्य रस को पल्लवित किया। उनके आनन्द रस मे जो नवीनता है, वह है शक्ति के साथ प्रेम का [illegible] । अब हम इन सूत्रों का स्पष्टीकरण करेंगे।

सत्य शिव एवं सौन्दर्य का। कवि ने इस प्रकार की प्रकृतियों का अर्धनारी-श्वर भी बिना किसी प्रकृत रस और आनन्द रस परस्पर पर्यवसित भी हुए। इस तरह रसानुभूति (प्रकृत) और सौंदर्य (शिव) सृष्टि (प्रकृत) और रचना (कृति), सीमा (प्रकृत) और लीला (लौकिक) की मूल अनुभूति एक ही हो गई। इसके साथ ही कवि ने प्रकृति और चेतना के न्यूनतम अंगों को ग्रहण किया। 'कामायनी' में चेतना के विकास परमाणु, अणु-अणु में नर्तन, कण-कण में गति, आदि के सदर्भ, अनेक बार आए है। यहाँ सत्ता का 'स्पदशास्त्र' है जिसके अनुसार प्रसाद ने 'प्रकृति' 'सृष्टि' प्रेम मधुरता, मादकता आदि को 'ताल' एव 'लय' से बाँध दिया है। ताल और लय का यह निबंध नर्तन हो गया है। अतः 'कामायनी' मे प्रकृति का ताडव नृत्य, विश्वसुन्दरी प्रकृति का लासरास, हृदय के आनन्द कूजन का राग, प्राकृतिक शक्तियो का रुद्रताडव, महाकाल का विषम नृत्य, नर्तित नटेश का आनन्द ताडव आदि गोचर होते हैं। इस तरह कवि ने शक्ति तरग की गति को सौंदर्यपूर्ण नर्तन मे रूपान्तरित किया है। इसी लिये विश्वकमल के कण कण मे आनन्द नर्तन होता है, शोभन आनन्द अंबुनिधि शक्ति तरगायित रहता है, नारी के कोमल अवयवो मे छायाओ का नर्तन होता है तथा सौंदर्य की स्वानुभूति मे उल्लास एव नर्तन होता है। प्रकृति के क्षेत्र मे यह नर्तन सृजन, सहार और स्थिति तीनो अवस्थाओ मे चलता है। चिंता सर्ग मे प्रलय के अवसर पर भी पचभूतो का नर्तन है तो आनन्द सर्ग मे सामरस्य दशा मे भी नर्तन। कवि ने इसे 'प्रकृति' अथवा शक्ति का रहस्य-वाद कहा है जो प्रकृतरस एव आनन्दरस को समरस तथा समानधर्मा बना देता है। कवि ने विभावानुभावसचारियो को भी प्रकृति एव चेतनता के क्षेत्र मे इसी ताल लय मे तरगायित किया है। वासना सर्ग और लज्जा सर्ग मे हम मानवीय भावो तथा नारी के हावो भावो एव सात्विक अलकारो के प्रसगों मे हम इसका विशेष विलास पाते हैं।

कवि ने आनन्द को परम्परा से उल्लास (आल्हाद) से जोडा है। लेकिन इसमे सौंदर्य का मिलन उसकी अपनी रससिद्धि है। कवि ने सौदर्य की मूल शक्ति के रूप मे कामकला या प्रेमकला को स्वीकार किया है। कवि ने मूल शक्ति को 'अनादि वासना' भी कहा है। (जो मधुर प्राकृतिक भूख समान है)। इस तरह अनादि वासना से ही एक ओर तो चेतना के उज्ज्वल वरदान सौदर्य का अन्वयन हुआ है जो रति द्वारा विनियोजित होता है (मैं उसी चपल की धात्री हूँ), तथा दूसरी ओर चिर-स्नेह का विकास। कवि ने स्थायी भाव रति के बजाय चिर-स्नेह की धारणा प्रस्तुत की है। उन्होने चिर-स्नेह को

'वासना की मधुर छाया' कहा है। हमारा परका अनुमान है कि यह मधुर छाया वैष्णवों का माधुर्य है। इसकी मूल भावना समर्पण है। श्रद्धा सर्ग में श्रद्धा जब समर्पण करती है तब वह उसे सेवा का सार (भक्ति) कहती है। इस समर्पण में दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास, सहज हृदय भी शामिल है। यह मधुर छाया द्वैतमूलक है। अतः वैष्णव है। (शैवों की भक्ति अद्वैतमूलक है) इसके अलावा श्रद्धा मे राग अनुराग भी है, और वैष्णव महाभाव भी। यह कवि की मौलिकता है कि उसने आलोक एवं आल्हादमय आनन्द मे पडितराज जगन्नाथ का रमणीय सौंदर्य, तथा वैष्णव भक्तों का माधुर्य भाव जोड़ दिया है। सैंद्धातिक दृष्टि से इसी तरह का एक कार्य आनन्द वर्धन ने किया था, जब उन्होने 'ध्वनि' के अतर्गत रस एवं अलंकार का समन्वय कर डाला था।

प्रसाद की 'अनादि वासना' की मूल भित्ति (देवसृष्टि के) भोग की) अतीत स्मृति है। मनु में इस स्मृति के फलस्वरूप वासना का उन्मत्त, ज्वालामय, अभिपापपूर्ण संस्कार संचित है। अतः प्रसाद ने इसके शिवरूप कामकला को लिया जिसकी कलात्मक अभिव्यक्ति प्रेम (चिरंतन स्नेह) के द्वारा की। यह स्मृति कालिदासीय अबोधपूर्वा स्मृति है जिसमे वेदना मिश्रित उन्मद भाव निरतर विद्यमान है। शास्त्रीय आधार देने के लिये कवि ने इस अनादि अथवा अतीत वासना को पूर्वजन्म या स्पृहणीय मधुर अतीत की स्मृति भी कहा है (पूर्व जन्म कहूँ कि था स्पृहणीय मधुर अतीत; गूँजते जब मन्दिर घन में वासना के गीत)। कवि ने इस उन्मद भाव को रति, सौंदर्य तथा आनन्द, तीनो तत्त्वों के साथ विभिन्न धरातलो मे मिलाया है। अतः यह अभाव (विभाव), कुतूहल और आकर्षण के रूपो मे चिंता सर्ग से लेकर कर्म सर्ग तक विद्यमान है। कवि ने अपनी स्वानुभूति की सर्वाधिक अभिव्यक्ति इन तीन रूपो के अतर्गत ही की है। 'कौन' 'क्यो' 'क्या' 'कहाँ' 'कैसे' 'कब' जैसे प्रश्नो से सारा महाकाव्य महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर अनुस्यूत हुआ है: यथा, हे अनंत रमणीय कौन तुम; कौन तुम ? संसृति जलनिधि तीर; कब आये थे तुम चुपके से रजनी के पिछले प्रहरो मे; नक्षत्रों, तुम क्या देखोगे इस ऊषा की लाली क्या है ?; मनु आँख खोल कर पूछ रहे: पथ कौन कहां पहुँचाता है ?; मन यहीं यह क्या हुआ है ? आज कैसा रंग ? मैं ? कहाँ मैं ? ले लिया करते सभी निज भाग; हृदय की सौंदर्य प्रतिमा ! कौन तुम छवि धाम !; तुम कौन हृदय की परवशता ?; हाँ ठीक परन्तु बताओगी मेरे जीवन का पथ क्या है ?; केवल हम तुम और कौन है ? रहो

न सोने देते; इन कौन ? हटते फिर नहीं नाम; कौन अरी मेरी वेदने । तू किसकी है किसके है ?, कहाँ से चली हो अब सुनाओ मुझे ! मैं थक गया हूँ ; मनु ने पूछा, कौन नये दुख दे है, मदे ! मुझे बताओ, 'हम कहाँ चल रहे' यह सब उनको विस्मित करती, इत्यादि । सारांश मे स्वानुभूत अभिव्यक्ति और कल्पानुभूति के अनुरूप प्रसाद ने आनन्द मे शक्ति, उन्मद भाव एवं सौंदर्य का समाहार किया है । अत. इसके स्वानुभूतिमूलक अर्थात दुर्लभ छायाओं वाले दो आयाम भी उन्मिषित हुए हैं । दुर्लभ छाया', अर्थात् स्वानुभूत संवेदनीय वस्तु की अभिव्यक्ति की प्रमोदमान छाया या स्वच्छन्दछायान्तर स्पर्शी वक्रता (कुन्तक) ! इस तरह कवि की आनन्दवादी धारणा शैवाद्वैतागमों से अधिक 'असाधारण अवस्था' वाली है । इसमे शाक्त, वैष्णव, साहित्य एवं छाया-वादी दुर्लभ छायाएँ भी घुलीमिली हैं ।

इस अनुक्रम मे प्रसाद ने प्रकृति को उद्दीपन रूप लेकर उसका मात्र बाह्यवर्णन नहीं किया है । प्रकृति को विश्व सुन्दरी (आनन्द सर्ग), विश्वात्मा की छाया (आशा सर्ग), सूक्ष्म आन्तरिक भावों के स्पर्श से पुलकित (वासना सर्ग), भूतनाथ के ताण्डव से त्रस्त (चिन्ता सर्ग और स्वप्न सर्ग), चिति-मय (काम सर्ग) आदि रूपों मे अंकित किया गया है । काम सर्ग मे माधव, मधुरजनी, ऋतुरति का उत्सव, तथा वासना सर्ग मे कौमुदी उत्सव आदि प्रकृति की 'छाया' और 'माया' दोनो तत्त्वों को दर्शन तथा साहित्य के स्तर पर उभारते है । इस तरह 'कामायनी' की प्रकृति बहुत कम अंशों मे उद्दीपनस्वरूपा है । इसका अपना ही अनग रमणीयता वाला सौंदर्यबोधशास्त्र है जिसकी मूल वासना 'कुतूहल' है, और अपना प्रकृत रसशास्त्र है जिसकी वासना 'आकर्षण' है (जो आकर्षण बन हँसती थी, रति थी अनादि वासना वही) । इस तरह जब कभी कभी यह कहा जाता है कि 'कामायनी' मे वेदना के आधार पर उद्वि-ग्नता (कालिदासीय आतुर उत्कठा) नामक नया रस सर्वत्र व्याप्त है, तो यह इसी बोध को समझने की शास्त्रीय असफलता है । हम पहले ही निरूपित कर आये हैं कि कवि ने आनन्द के साथ उन्मद भाव का भी सयोग किया है । यह उन्मद भाव कुतूहल एव आकर्षण के युगल के रूप मे—रस बोध एव सौंदर्यबोध के धरातलो पर—अपने विभावानुभावादि की अलग रसनिष्पत्ति करता है क्योकि यहाँ 'प्रकृति' और 'पुरुष' का, काम और रति का, मधु और माधव का भी अन्व-यन होता चला है । यहाँ प्रकृति विश्वसुन्दरी है । प्रकृति विश्वात्मा की छाया भी है । इसलिये 'सृष्टि'—मानवीय एव प्राकृतिक—भी उसी के प्रतिरूप हैं । इसीलिये विश्वसुन्दरी प्रकृति, त्रिपुरसुन्दरी कामकला (श्रद्धा), सारस्वत-रानी

इड़ा, और हृदय-सुन्दरी नारी एक ही 'महाचिति' की लीला (सृष्टि) है। लीला आदर्शवादी एव रहस्यवादी भूमि पर क्रीडा की प्रतिकृति है जिसमें कौतुक का पर्युत्सुकी भाव मौजूद रहता है। इस लीला मे प्रकृति का स्वरूप शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाता है। स्वयं कवि ने इसे प्रकृति या शक्ति का रहस्यवाद कहा है। वैष्णव मत मे लीलाएँ शील-सौंदर्य त्रयी को व्यक्त करती है। प्रसाद की कामायनी में लीला नृत्य के साथ संवलित होकर सृष्टि-स्थिति-संहार को भी अभिव्यक्त करती है। प्रसाद ने प्रकृति लीला में नृत्य एवं सगीत का मेल करा दिया है। कवि ने इस लीला नृत्य के विलास एव ललित को लास्य (आनन्द सर्ग) तथा रास (वासना सर्ग) तथा ताडव (चिंता, दर्शन, एव स्वप्न सर्ग) इन तीन दार्शनिक नृत्य रूपों मे अनुस्यूत किया है। यह सौंदर्य दार्शनिक दृष्टिकोण है। इस भांति प्रसाद ने रस के अतर्गत दर्शन तथा कला दोनो को समन्वित कर डाला है।

कवि ने रस के कई प्रसग को सूत्र या रूपक या छाया रूप में उद्घाटित किया है जिनसे भी प्रकृत रस एव आनन्द रस के सामजस्य की नई दृष्टि उभरती है। कवि ने प्रकाश के श्वेत-बिन्दु (अर्थात् शिव तत्त्व) में सार नव रसों के भरे होने का पहला सकेत किया है (व्यथित विश्व के सात्विक शीतल बिंदु, भरे नव रस सारा)। इस सात्विक बिन्दु का आनन्द रूप आह्लादमय है. लेकिन इसकी अनादि वासना वेदनामय है। अनादि वासना के बाबत कवि की यह एक और नई छायावादी उपपत्ति है। इसके बाद कवि रसभूमि एवं आनन्द-भूमि का द्वय-अद्वय पेश करता है। रति (रूपानारी) पहले रस के निर्झर में धँसती है और फिर आनन्द शिखर के प्रति बढ़ती है (रस के निर्झर में धँसकर मैं आनन्द-शिखर के प्रति बढ़ती)। यहाँ निमग्न या तल्लीन होने के उपरांत उन्मेष या उद्धार की दशा की ध्वनि है। क्योंकि निर्झर का उद्गम शिखर ही होता है। इसलिये रस एव आनन्द मे द्वय-अद्वय दशा है। कवि प्रणीत रस का प्रभाव तद्गालस और स्वप्नकारक है (नयनो की नीलम की घाटी जिस रस घन से छा जाती हो)। यह घनीभूत रस प्रभाव गुण के केन्द्रीभूत होने से भिन्न है क्योंकि इसमें वेदना की अन्तर्धारा बहती रहती है। अत: कवि वेदनामय वासना में रस का उद्गम मानता है। कवि यह भी मानता है कि मानस इंद्रियाँ ही रस का पान करती हैं (शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध की पारदर्शिनी सुघड़ पुतलियाँ; चारों ओर नृत्य करतीं ज्यों रूपवती रंगीन तितलियाँ)। समृति 'आलोक बिंदु' (स्वप्रकाश रसानन्द) को घेरे हुए है और माया रूप में विश्व सृष्टि करती है। इस सृष्टि मे इच्छा की रसव्याप्ति है अर्थात् नव रस

रही है [illegible] । इस [illegible] में नाना प्रकार के रूप विरूप, [illegible] हुए तब सभी की [illegible] अराओं पर दृढ़ हैं (रूप [illegible] सभी है इसी की रस-नाभि घूमती, तब रस भरी अराएँ [illegible] को मन्दिर घूमती)। [illegible] रस [illegible] का चित्र है । कवि ने [illegible] को आनन्द रूप में निरूपित किया है जहाँ मानस (सर) में आनन्द [illegible] है, जहाँ प्रकृतिरस एवं आनन्दरस का सामरस्य है, जहाँ विश्वचेतना पुलकित हो कर विकास करती है, जहाँ सुन्दर भी साकार हो जाता है और जहाँ घना अखंड आनन्द छा जाता है । यहाँ शैवाद्वैतवादी धारा के अनुसार आनन्दलोक में आनन्द की व्याप्ति है। किन्तु यहाँ कवि का भी स्वत्व है : इस आनन्द में सौंदर्य, और शक्ति का भी सामंजस्य हुआ है। इस आनन्द में शिव और शक्ति का पारस्परिक आकर्षण ही 'आदिरस' हो गया है । इसके लिये विश्व व्यापिनी महाशक्ति ने अपने आपको भुवन मोहिनी (त्रिपुर सुन्दरी एवं विश्व सुन्दरी) के रूप में भी व्यक्त किया है। साराश मे, *आनन्दवादी* धारा के उन्नायक प्रसाद ने *'कामायनी'* में रस एवं आनन्द के दर्शन के विवेचन में छायावादी दृष्टिकोण का भी समाहार किया है, तथा वैष्णवों के माधुर्य एवं उपनिषदों के प्रेम एवं शाक्तों की कामकला का भी सामंजस्य कर डाला है। यही उनकी महत्तम देन है जो 'कामायनी' के कलारूप के स्वभाव, माध्यम तथा आदर्शों के अनुसार ढलती-ढलती परिपूर्ण हुई है । इसमे कवि ने एक तो प्रकृत रस एवं आनन्द रस का मेल कराया है, दूसरे दर्शन एवं कला, दोनों का समन्वय रस में किया है, और तीसरे आनन्द के नये आयामों को भी प्रस्फुटित किया है।

इस भाँति हम देखते हैं कि 'कामायनी' में रस दर्शन की अपेक्षा 'कामायनी' का रसदर्शन ध्वनित हुआ है।

++++++++

१० । इतिहास-दर्शन की खोज

इस प्रबन्ध-काव्य में महाकाव्यत्व अथवा महानाट्यत्व, मनस्तत्त्व अथवा मनोविज्ञान, विचारधारा और रूपयोजना की मीमांसा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य इतिहास-दर्शन (Philosophy of History) का अन्वेषण है। कवि ने दावा किया है कि उसने 'श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता के विकास का रूपक भी उभारा है जो 'मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है'। अतः ऐतिहासिक अस्तित्व के साथ सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति हुई है। इस लिए यह कृति इतिहास से अधिक इतिहास दर्शन का वहन करती है। यहाँ हम इतिहास दर्शन के पाश्चात्य दृष्टिकोणों का परिचय नहीं देंगे क्योंकि तब तो यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन जायेगा। हम कवि की इतिहास दृष्टियों का समन्वय करते हुए 'कामायनी' के अन्तराल में ही लुक छिपकर चलने वाले इतिहास-दर्शन की रचना करेंगे।

इस कृति में पात्रों एवं घटनाओं को धारणाओं (concepts) एवं प्रतीकों (Symbols) में रूपान्तरित कर देने से प्रधानतया इतिहास की कथा-सृष्टि से अधिक इतिहासदर्शन का सविधान हुआ है। कवि ने मानवीय कार्यों को यज्ञ के रूपक के इर्दगिर्द अमूर्तीकृत किया है जिसकी वजह से कर्म सर्ग में यज्ञ सुख का, ईर्ष्या में संघर्ष का तथा संघर्ष में युद्ध का रूप धारण करता है। कर्म ज्वाला और वासना और विप्लव का उद्भावक बनता है। यह घटनाओं के साराशीकरण का उदाहरण है। इस क्रम में मनोवृत्तियों के प्रतीकीकरण का भी विन्यास दृष्टव्य है। चिंता और आशा सर्ग में दोनों भाव संबोधित हुए हैं; काम और लज्जा सर्ग में दोनों का मानवीकरण (personification) हुआ है जिसके अंतर्गत मनु के मन में स्वप्न जन्मा काम तो सुख, सौंदर्य, विलास और सृष्टि का संदेश देता है, तथा नारी की अवच्छाया लज्जा, यौवन, प्रणय, शालीनता एवं समर्पण का अनुभावन करती है। यह नारी के अवचेतन से नैतिक

मन (चेतना या संकल्प) तक का उन्नयन है। इसी तरह आरंभ में प्रकृति और मनु पर सांख्य समत 'प्रकृति' एव 'पुरुष' तत्वो का आरोप भी है। मनु मे अहंकार बुद्धि एव मन का मनस्तत्व तथा श्रद्धा मे विश्वास एवं समर्पण का केन्द्रीभवन पात्रो का निर्विकल्प (शाश्वत) प्रतीकीकरण करता है।

यज्ञ, और उसकी ज्वाला एव विप्लव के धर्मों के संदर्भ में हम पात्रों एवं घटनाओं मे प्रतिनिधित्व (representation) भी पाते है। यज्ञ हिंसा का प्रतिनिधि है; प्रजापति नृशंस शासक का और सारस्वत नगर पूंजी-वादी सभ्यता का। इसी तरह जनविद्रोह क्रांति का तथा नगरनिर्माण औद्योगिक क्रांति का प्रतिनिधि हो जाता है।

अंतिम तीन सर्गों मे अन्यापदेश (allegorization) की प्रचुरता है। दर्शन मे सृष्टि-स्थिति संहार के चक्र का नर्तन (ताडव); रहस्य मे इच्छा क्रियाज्ञान का त्रिकोणात्मक त्रिलोक और त्रिपुर सुन्दरी कामकला अर्थात् श्रद्धा; तथा आनद सर्ग मे मनु = पुरुषशिव = पुरातन पुरुष हिमालय और श्रद्धा = त्रिपुरसुन्दरी = प्रकृति का अन्यापदेश इस कृति को दार्शनिक इतिहासवाद से समन्वित करता है। इतिहास का आदर्श आनद हो जाता है, मनुष्य मात्र मन मे अमूर्त हो जाता है तथा घटनाएं मात्र सवेदन रह जाती है।

इसीलिए इस महाकाव्य मे कई प्रतीकात्मक यात्राएँ हुई हैं। मनु यज्ञ पुरुष बनते हैं। तब उनमे काम जागता है। फिर वे गृहपति होते हैं, फिर स्वेच्छाचारी प्रजापति, फिर साधक मनुष्य और अतत शिव तत्त्व। मनु की संगिनी श्रद्धा का पहले कामबाला के रूप मे आविर्भाव होना है। वह अतिथि (पुल्लिंगी) बनती है और तब रम्य नारी मूर्ति के रूप मे उसमे लज्जा उदित होती है। इसके बाद वह मातृमूर्ति, त्रिपुर सुन्दरी, विश्व कल्याणी होती है, और अनतः प्रकृति एव शक्ति रूपा हो जाती है। इसी भांति इडा कर्म और विचार का अद्वय है। वह राष्ट्रस्वामिनी एव जनपद कल्याणी होती है और अंतत. विद्या हो जाती है।

साराश मे, हम देखते हैं कि इस महाकाव्य मे वाह्य एव स्थूल घटनाओं तथा पात्रो को अमूर्त एव सूक्ष्म एव प्रतीक एव रूपक में रूपान्तरित कर दिया गया है। इतिहास दर्शन के लिए इससे श्रेष्ठ भूमिका तो कहीं नहीं मिल सकेगी। यहाँ 'रूपकतत्त्व' के विधान के लिए प्रतीकीकरण, मानवीकरण, प्रतिनिधीकरण और अन्यापदेशिकीकरण की चतुर्मुखी प्रणालियों को अंतर्यथित किया गया है।

इस भांति रूपकतत्व के उपर्युक्त सर्वेक्षण के द्वारा हम 'कामायनी' का

का एक नितांत वैश्वक (universal), अमूर्त (abstract) तथा प्रतीकीकृत (symbolized) रूप प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ हमारा आधार यही कृतिरूप है। यही कृतिरूप इतिहासदर्शन की मूलशक्ति है।

प्रबध काव्य का यही 'प्रतीकीकृत रूप' (Symbolic form) मानवता के विकास, तथा मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास की कवि उद्भूत आकांक्षा को धारण करता है।

प्रसाद ने कृति के आमुख मे ऐतिहासिक तथ्य एवं मानवीय सत्य का प्रश्न उठाया है, और कृति मे **ऐतिहासिक प्रक्रिया** का प्रतीकात्मक रूपांतरण किया है। उन्होंने ऐतिहासिक अस्तित्व के साकेतिक अर्थ की तलाश की है। प्रतीकात्मक रूप अर्थ का ज्ञान देता है अथवा अर्थ की मानवीय अभिव्यक्ति करता है। इतिहास मे तिथि क्रम होता है। कवि इस तिथिक्रम से सतुष्ट नहीं है। वह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा इतिहास की घटना के भीतर 'कुछ' देखना चाहता है। यही 'देखना' उसका मनोवैज्ञानिक इतिहास दर्शन है। उसके अनुसार यह देखना 'आत्मा की अनुभूति' है। यह अनुभूति 'सूक्ष्म भावो' तथा 'चिरतन सत्यो' को प्राप्त करती है। ये ही सूक्ष्म भाव एव चिरतन सत्य 'युग-युग के पुरुषो' (पात्रों), और उनके 'पुरुषार्थो' (घटनाओं) मे अभिव्यक्त होती है। 'कामायनी' के प्रतीकात्मक रूप मे सूक्ष्म भावों और चिरंतन सत्यों का अनुसंधान हुआ है। इस तरह यहाँ इतिहासकार एवं कलाकार के क्रियाधर्म (functions) का मिश्रण हुआ।

प्रसाद कलाकार और कवि दोनों है। कथा के स्रोतों में वे व्यावहारिक तथ्यों की प्रामणिकता को प्रतिष्ठित करते है लेकिन उन प्रामाणिक तथ्यो के पुर्ननिर्माण मे उत्पादक कल्पना को ग्रहण करते है। इस तरह वे इतिहास के भावन मे कला के भावन का मेल कराते हैं। इस मेल के द्वारा वे मानवीय जीवन का आदर्श वर्णन करते हैं। अत: व्यावहारिक जीवन विशुद्ध रूपों मे परिवर्तित हो जाता है। 'कामायनी' वस्तु की यथार्थता (प्रत्यभिज्ञा) से आगे मानवीय भावों का भी स्पर्श करती है। इस तरह मानवीय स्वभाव के अन्वेषण में कला एव इतिहास दोनो क्षेत्रो का समन्वय करती है। प्रसाद ने इस समन्वय को 'संकल्पात्मक मूल अनुभूति' कहा है जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है। इस भाँति कवि की ऐतिहासिक प्रक्रिया प्रातिभ (intuitional) है जहाँ ऐतिहासिक सत्य सुन्दर भाव भी हो जाते हैं (चेतना का सुन्दर इतिहास अखिल मानव भावों का सत्य)। वैश्वक मानवीय स्थिति को कवि ने 'असाधारण अवस्था' कहा है जिसमे सूक्ष्म भाव चिर-

यह कवि की इतिहास-धारणा है। इतिहास एक शाश्वत चेतना है जिसका विशुद्ध स्पन्दन स्वच्छन्द अर्थात् द्वंद्व एवं संघर्षविहीन प्रतीकात्मक परिणति 'आनन्दमय' है। इस द्वंद्वविहीनता के अन्तर्गत एक ओर तो विश्व और मनुष्य एक ही आत्मा के अभिन्न अंग हो जाते हैं, और दूसरी ओर प्रकृति (nature) एवं पुरुष (man) की इतना विलीन हो जाती है। ऐतिहासिक ज्ञान के इस चरण में कवि ने शैवाद्वैतवादी दर्शन के आलोक में इतिहास का दिग्दर्शन किया है। इसीलिए कामायनी के आरम्भ में जलप्लावन में आसक्त प्रकृति एवं निष्क्रिय पुरुष मौजूद है, तो अन्त में लास रास में निरत विश्वसुन्दरी प्रकृति एवं समरस मनु-श्रद्धा भी तन्मय हैं।

यहाँ हम कवि के ऐतिहासिक ज्ञान सम्बन्धी तथा मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास सम्बन्धी भूलों को बताना चाहेंगे। ऐतिहासिक ज्ञान को केवल मनोवैज्ञानिक नियमों में बांधना असम्भव है। इतिहास का विकास द्वंद्वात्मक है, जहाँ सामाजिक यथार्थता तथा वैयक्तिक चेतना के परस्पर संघात होते हैं जहाँ सामाजिक संबंध हमारी वर्गीय विचारधारा की भ्रांतियों एवं स्वार्थों को उत्पन्न करते हैं। हम इतिहास का जो क्रमबद्ध विकास प्रस्तुत करते हैं वह हमारे आंतरिक अनुभवों का तो प्रकाशन है लेकिन वह कम सामाजिक शक्तियों की निश्चयवादी परिणति भी है। हमें आज तक ऐसे किसी भी नियम की उपलब्धि नहीं हो सकी है जो विचारों एवं अनुभूतियों का नियमन करके एक शाश्वत व्यवस्था प्रस्तुत कर सके। इस क्षेत्र में इतिहास के मनोवैज्ञानिक व्याख्याताओं को कोई सफलता नहीं मिली। अतः कामायनी में कथा के विकास के साथ साथ मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास का क्रम स्वीकार करना अवैज्ञानिक है (इसे 'मनस्तत्व एवं मनोविज्ञान' शीर्षक अध्याय के अंतर्गत भी प्रतिपादित किया गया है।) इसी तरह इतिहास को कोरे आर्थिक भौतिकवाद (economic materialism) अथवा सामाजिक मनोविज्ञान (Social-psychology) के आधार पर भी नहीं समझा जा सकता।

हम यह मानते हैं कि इतिहास दार्शनिक अपने ऐतिहासिक तथ्यों को

प्रतीकात्मक भाषा (Symbolic language) का उद्घाटन करता है। इस प्रक्रिया में अतीत वस्तु का रूप नहीं बदलता, बल्कि उसमें एक गहराई खुल जाती है। जलप्लावन की घटना को लेकर कवि ने इतिहास और देवसृष्टि के पतन की गहराई को प्राप्त किया है। उसने यज्ञ की ज्वाला तथा केंद्रीभूत सुरा की विषमता के मूलबोध को मनु में ईर्ष्या की ज्वाला और एकांत हिंसक स्वार्थ में, तथा सारस्वत नगर में युद्ध की ज्वाला और सामाजिक विप्लव में रूपांतरित किया है। किन्तु क्या ये घटनाएँ (मनु की ईर्ष्या, सारस्वत नगरध्वंस प्रक्रिया) ऐतिहासिक सत्य हैं? अपने वर्तमान में स्थित होकर कवि ने कल्पित अतीत से जो प्रश्न पूछे हैं क्या वे भविष्य पर लागू हो सकते हैं? लेकिन प्रसाद ने दर्शन सर्ग से आनन्द सर्ग तक इन्हें धार्मिक इतिहासवाद में ढाल दिया है।

खुद प्रसाद कहते है कि सिद्धांततः आदर्शवादी एक 'धार्मिक प्रवचनकर्ता' बन जाता है और यथार्थवादी 'इतिहासकार' सेअधिक नहीं ठहरता। प्रसाद के अनुसार यथार्थवाद इतिहास की सम्पत्ति है और जीवन-बोध है। 'कामायनी' के कर्म सर्ग में मिथकीय मनु में पहली बार ऐतिहासिक चेतना अभ्युदित होती है जबकि चंचल जीवन में प्रतिष्ठित 'स्वर्ग' की ललक वर्तमान जीवन से मिल कर 'अभाव' बन जाती है। अतः 'कामायनी' के संदर्भ में कवि की यह स्थापना ठीक लगती है कि साहित्यकार न तो आदर्शवादी धर्मशास्त्र प्रणेता है, और न ही यथार्थवादी इतिहासकर्त्ता। इतिहास में दुखदग्ध जगत है और आदर्श में आनन्द पूर्ण स्वर्ग। प्रसाद ने इतिहासकार और धर्मशास्त्रप्रणेता के धर्मों का समन्वय अवश्य किया है। 'कामायनी' में इन दोनों के एकीकरण का आरम्भिक आदर्श तो मिलता है लेकिन संघर्ष सर्ग से बाद से दुःखदग्ध जगत् और आनन्द पूर्ण स्वर्ग पृथक-पृथक हो जाते हैं। कवि ने मिथकीय अर्थात् पौराणिक युग की इस घटना, और विश्वसुन्दरी प्रकृति के इस सौंदर्य को स्वात्व अभिव्यक्ति में ढाल दिया है। फलतः उनकी ऐतिहासिक चेतना की स्पष्टता विलुप्त होती गई है। इतिहास लिखकर भी वे इतिहास के यथार्थ को (संघर्ष सर्ग से आगे) अस्वीकृत करते हैं; नया धर्मशास्त्र लिखकर भी वे (दर्शन सर्ग और उससे आगे—) वे ऐतिहासिक यथार्थ के नाम पर इसे एकांगी मानते हैं, तथा इन दोनों का ऐकीकरण करने के बजाय इन्हें विरुद्ध और शुभ-अशुभ बना देते हैं। यह इतिहासकार और दार्शनिक प्रसाद के बीच का एक जबर्दस्त अंतर्विरोध है।

● उनके इतिहासदर्शन के मूल तत्वों को प्राप्त करने के पूर्व एक बात

ति करती है। वे ऐतिहासिक तत्वों (घटनाओं एवं पात्रों) की व्याख्या कैसे करते हैं, यह समस्या महत्वपूर्ण है। इस ढंग व्याख्या को कुछ एक दिशाओं को इंगित कर चुके हैं : ऐतिहासिक तथ्य 'दृश्य भाव एवं चिरन्तन सत्य' के रूप में स्थापित है। दूसरी दिशा है : व्याख्या चेतना चिरन्तन सत्य को सुन्दर भाव में प्रतिफलित कर देती है। तीसरी दिशा है : इतिहास की शाश्वत चेतना की इन्द्रियातीत एवं स्पर्शातीत प्रतीकात्मक परिणति आनन्दमय है।

इन तीन दिशाओं के आधार पर हमे यह देखना है कि प्रसाद ने मूल इतिहास की व्याख्या किस तरह की है। उन्होंने अपने रहस्यवाद नामक लेख मे कहा है कि आर्यलोग सदैव से अपनें विचारधाराओं मे आनन्द, उल्लास और प्रमोद के उपासक रहे है। उनमे अद्वैत दृष्टि थी। इन्द्र आत्मवाद के, तथा वरुण विवेकवाद के आदर्श थे। आत्मवाद के साथ ही आनन्दवाद की विचार धारा फैली। कवि के अनुसार सप्तसिंधु के प्रबुद्ध तरुण आर्यों ने विवेकवादी धारा की अपेक्षा आनन्दवादी धारा का अधिक स्वागत किया। अत. वैदिक आर्यों मे आत्मवाद और यज्ञवादी विचारधारा की प्रधानता हो गई। इनमे से कुछ प्राज्ञ आर्यों ने विवेक के आधार पर नये नये तर्कों की उद्‌भावना की। उन्होंने बुद्धिवाद के आधार पर नये-नये दर्शनो की स्थापना की। विवेक के तर्क से विकसित इस विचारधारा मे ससार दुखमय माना गया तथा दु ख से छूटना ही परम पुरुषार्थ समझा गया।

अत: आनन्दवाद मे आत्मवाद तथा बडे-बडे यज्ञों का उल्लास एव प्रमोद प्रतिष्ठित हुआ, तथा बुद्धिवाद मे विवेक और विज्ञान। इस तरह वैदिक संस्कृति मे तर्क के आधार पर विकल्पात्मक बुद्धिवाद की धारा और आत्म के आधार पर सकल्पात्मक आनन्द की धारा बह उठी। आनन्द साधना ने विकल्पात्मक विचारो एव तर्कों को छोड दिया। 'कामायनी' मे ये दो धाराएँ और इनकी ऐतिहासिक चेतना स्पष्टरूप से झिलमिलाती है। वैदिक कर्मकाड और आनन्द के लिये श्रद्धा एव आनन्द सर्ग, तथा बुद्धिवाद के लिये इडा एवं स्वप्न एवं सघर्ष सर्ग परिलक्षित हुए हैं। यही नही, कवि ने इन दो धाराओ के आधार पर वैदिक मनु के व्यक्तित्व को भी बाँट दिया है। इसी तरह उन्होंने कथासृष्टि को भी सारस्वतनगर एव कैलाशलोक मे विभक्त कर दिया है। अपनी 'शाश्वत चेतना' की धारणा को वैदिक संस्कृति के दर्पण मे प्रतिफलित कराके उन्होने इस ढंग से इतिहास की वस्तु बनाया है। इसी बोध के द्वारा प्रबधकाव्य मे दु खदायपूर्ण (यथार्थ) जगत् एव आनन्दपूर्ण (आदर्श) स्वर्ग का भी ऐकीकरण किया गया है।

'कर्म' (यज्ञ) के अलावा प्रवाह से वैदिक संस्कृति में 'काम' की उपासना का समावेश किया है। 'कामायनी' में इतिहास के विकास के हेतु श्रद्धा मनु को काम एवं कर्म का संदेश देती है। कामबाला के अनुसार काम से विरत होने पर मानवसृष्टि का अस्तित्व नहीं रहेगा, काम से ही विश्व का अभिराम उन्मीलन होता है, काम में ही महाचिति लीलामय आनन्द करती है और काम ही सर्ग-इच्छा का परिणाम है। इसी तरह कर्म शक्ति संचित करता है। शक्तिशाली मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करता है, सकल समृद्धियों को प्राप्त करता है और मानवता को विजयिनी बनाता है। यही चेतना का सुन्दर इतिहास है। इस तरह आदिम वैदिक परिवेश में कवि ने काम (आनन्द) तथा कर्म (शक्ति) को इतिहास के विकास का अधिनायक माना है। 'कामायनी' के अंतर्गत कवि के इतिहास दर्शन की दृष्टि यह है कि विषमता के कारण देव असफलताएँ हुई थी, लेकिन समरसता एव समन्वय पर आश्रित मानवता का इतिहास मंगलमय होगा।

वैदिक काम की शैवागमो मे कामकला के रूप में उपासना हुई जिसमें आनद के साथ सौंदर्य और उन्माद भाव जुड गया। 'कामायनी' मे काम एवं लज्जा सर्ग में प्रकृति सौंदर्य एव मानवीय सौंदर्य की उन्मादक व्यंजनाएँ हुई हैं, और रामग्रवासना सर्ग प्रमोन्माद के माधुर्य महाभाव से ओतप्रोत है। कामकला की यह सौंदर्योपासना ही रहस्य एव आनद सर्ग मे सारमस्य वाली आनदोपासना मे परिणत होती है। इस तरह हम साफ देखते हैं कि भारतीय साधना पद्धतियों के मनोदर्शन के अधार पर ही कवि इस कृति मे मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास लिखने की कोशिश करता है। यही उसकी एकागिता, एकांतिक्ता एव अपूर्णता प्रकट हो जाती है। हमें तो यह भी प्रतीत होता है कि कर्म सर्ग मे जिस ढंग से कथा- उद्‌घाटन हुआ है उसमें सोम सुरा, मनु, काम तथा श्रद्धा कामिनी बन जाते है। यह कोरमकोर तीनो वज्रयानी धारणाओ के फलस्वरूप पतन का निर्देश है। इसी तरह सभवत. कवि ने आनद सर्ग में केवल शिव की नही, बल्कि योगेश्वर शिव की धारणा की प्रतिष्ठा की है। इसीलिए तंत्र और योग के प्रतीको की बहुलता हो गई है और मनु पर सिद्धो की सहज साधना की भी झीनी छाया पड गई है। कवि के धर्मशास्त्रीय इतिहास वाद (Metaphysical Historicism) की क्षीणरेखायें ये ही हैं। यह दृष्टि कवि प्रणीत मानवता के विकास के रूपक को भारतीय साधना प्रणालियो के विकास में, और मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास को पात्र मनु के चिंतनों एवं अनुभूतियों में काफी सीमित कर देती है। इस तरह 'कामायनी' के इति-

हास दर्शन को विशिष्ट सांस्कृतिक-पैटर्न और उनकी विचार धारा (ideology), दोनो मिलकर सीमित तथा संकुचित करती हैं।

अतः हम भलीभाँति देख सकते है कि कवि ने ऐतिहासिक तथ्यो की व्याख्या किस ढंग से की है।

ऐतिहासिक तथ्यो मे निरपेक्षता (objectivity) होती है लेकिन कवि ने इन्हे आत्मतत्व एव मन की संकल्पात्मक मूल अनुभूति से अनुरंजित किया है। इसी वजह से कवि की ऐतिहासिक व्याख्या एवं निर्णयों का अंतर्मुखी दृष्टिकोण विकसित हुआ है। इसी वेदना एवं आनद, यथार्थ एव आदर्श, भाव एव सत्य के आधार पर प्रसाद ने मानवता का विकास तथा मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास लिखा है। अति कवि 'तिविक्रम' के अनराल मे झाँककर प्रतीक एव धारणाएँ प्राप्त कर लेना है जिनमे से बीज-बिंब (दे० 'रूप-स्वरूप. महाकाव्यत्व या महान-काव्यत्व' शीर्षक अध्याय) प्रधान हैं। 'कामायनी' मे इन बीज-बिंबो के शिखरो पर कल्पना के पख खोल कर उडने के फलस्वरूप इतिहास की चक्राक (cyclic) गति का उद्‌घाटन हुआ है।

प्रसाद ने बीज-बिंबो के द्वारा ही वातावरण की रचना की है तथा सौंदर्य साक्षात्कारों का चित्रांकन किया है। इनकी लडियो से ही क्रमश. धारणाएँ, प्रतीक और अन्यापदेश भी खुल पडते हैं। यह विकास रेखाक नही है, अपितु नियति की ताल एव गति, तथा प्रकृति की लीला एव सृष्टि से अनुमित है। इस तरह प्रसाद ने 'कामायनी' मे इतिहास का उत्थान ताल एव गति, और लीला एव सृष्टि के द्वारा किया है। इस व्यापार के मूल मे एक 'नृत्य' चल रहा है : सृष्टि, ससार, आनद, सौंदर्य का ताडव !! यह बहुधर्मी ताडव ही 'इतिहास' की प्रक्रिया है। यह ताडव सहार से सृष्टि और सृष्टि से सहार के चक्र मे घूमता है; यह ताडव शाश्वत चेतना मे भी मानसलोक का विधान करता है; यह ताडव 'प्रकृति' की उन्मीलन और निमीलन की भी मूलशक्ति है, और इसी मे 'अनादि वासना' की कामकला भी विकसित होती है। यहाँ हमने सभी सूत्रो को एकत्र कर दिया है।

ऐतिहासिक तथ्यो (घटनाओ और वस्तुओ) के अर्थ खो जाया करते हैं क्योकि उनकी यथार्थता भौतिक न होकर प्रतीकात्मक होती है। अत ऐतिहासिक तथ्यो की प्रतीकात्मक यथार्थता हमेशा नई नई व्याख्याओ तथा पुनर्स्थापनो से जीवित रहती है। इन तथ्यो के निर्णय मे हमेशा वैश्वकता (universality) तथा विशिष्टता (particularity) के आधार का द्वन्द्व-द्वन्द्व वर्तमान रहता है। 'कामायनी' मे पात्र मनु और मनु मानवता, पात्र श्रद्धा

और श्रद्धा का त्याग, काम इडा और विवेकशक्ति के प्रतीकों का सहर्ष ग्रहण स्थिति के दृष्टांत हैं ।

लेकिन आगे की कथा जब अधिकाधिक बढ़ती है तब इतिहासकार-कवि प्रसाद इन द्वंद्वों का संशोधन एवं निराकरण करते हैं । इस प्रक्रिया में उनके इतिहासदर्शन का मार्ग स्वयं ही छूट जाता है । इस प्रक्रिया का निर्धारण उनका वैयक्तिक स्वभाव तथा वर्गीय विचारधारा करती है । कवि ऐतिहासिक पुरुषों और मानव चरित्रों में व्यक्ति-वैचित्र्य को अस्वीकार करता है और उनमें 'असाधारण अवस्था' का ही अन्वेषण करता है जो इन्हें साधारण बना देती है। अतः पुरुषों और चरित्रों का साधारणीकरण करके कवि उन्हें अभेदमय और निर्विकार बना देता है । 'कामायनी' में मनु, श्रद्धा और इडा सभी को भावनाओं का एक धरातल दे देता है, तथा इच्छा, क्रिया और ज्ञान की विभिन्नता को समाप्त करके (रहस्य सर्ग में) उन्हें अभिन्नता प्रदान कर देता है । यह प्रतीकात्मक ढंग से तो अवश्य संभव है कि द्वंद्व एवं संघर्ष, विभिन्नता एवं विशिष्टता को समाप्त कर दिया जाय, लेकिन ऐतिहासिक विश्लेषण में द्वंद्वन्याय ही शाश्वत चला करता है । अतः संघर्ष सर्ग के बाद प्रबंध काव्य के विधान में हम इतिहास न पाकर कोरा कल्पलोक (utopia) पाते हैं जो *सामाजिक यथार्थता तथा सामाजिक इतिहास का अतिक्रमण कर गया है ।*

ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रगत समस्याओं के ऐतिहासिक यथार्थ में दुख और विवेक और तर्क विद्यमान रहते हैं । इतिहास के आलोक में जो जीवन उद्घाटित होता है उसमें गहरा यथार्थ प्रज्ज्वलित रहता है जहाँ द्वंद्व और संघर्ष, महत्ता और लघुता, मिलन और विरह, उत्थान और पतन, आदर्श और यथार्थ आदि संवलित रहते हैं । यह इतिहास मानवीय स्वभाव की छानबीन करता है । प्रसाद ने वेदना के आधार पर केवल सहानुभूति की अभिव्यक्ति की है । लेकिन भिन्नता, दुख *और विवेक के सहअस्तित्व को नामजूर कर देते हैं।* यह भी उनका एक अन्य जबर्दस्त अंतर्विरोध (contradiction) है कि वे संघर्ष सर्ग के बाद इडा के विवेक को भावुकता से, समाज के दुःख को कैलाश के आनंद से तथा चरित्र के वैचित्र्य को समरसता से स्थानांतरित कर डालते हैं। अपने इस सृजनात्मक कार्य की कीमत उन्हें ऐतिहासिक चेतना को खो देने में चुकानी पड़ती है ।

दुख और तर्क का यह आदर्शवादी निषेध प्रसाद के इतिहासदर्शन को आनंदवादी बना देता है । इस वजह से वे केवल श्रेय सत्य ग्रहण करते हैं, इस श्रेय सत्य के मूल स्वभाव को ही ग्रहण करते हैं । और उस मूल वास्तव को

ही ग्रहण करते हैं, और उस मूल चारुत्व को भी तर्क एवं विवेक के द्वारा नहीं बल्कि रहस्य एवं प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण करते है। इस भांति इतिहास एक अभेद सुख और मिलन का रसानंद बन जाता है। और इसी भांति, कवि इतिहास दर्शन से चलते चलते इतिहास के सौंदर्यबोधात्मक दर्शन मे अनुप्रवेश कर लेता है। अतः इतिहास के सौंदर्यबोधात्मक दर्शन मे भी रस की लोकमंगलवाली कल्पना का अभिषेक हो जाता है।

सारांश मे, आनंदवादी धारा बनाम विवेकवादी धारा, देव बनाम दानव द्वंद्व, वैदिक काम एवं कर्म, शक्ति एवं समर्पण, नृत्य एव नियति, प्रकृति एव सृष्टि, दुःखपूर्ण जगत् बनाम आनंदपूर्ण स्वर्ग, व्यक्ति-वैचित्र्य बनाम चरित्र साधारणीकरण, अणु बनाम लीला, वेदना बनाम आनद, सृष्टि बनाम संहार आदि के मूलाधारो पर प्रसाद ने अपने इतिहास-दर्शन को प्रस्तुत किया है जिसमे मानवता के विकास के रूपक एवं मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास को भी अनुस्यूत करने की उलझी हुई चेष्टाएँ हुई है। कवि का 'कामायनी'-संभूत इतिहास-दर्शन, आध्यात्मिक इतिहासवाद के रास्ते से होता हुआ, शनैः शनैः इतिहास के सौंदर्यबोधात्मक दर्शन मे उत्कर्ष प्राप्त करता है।

++++++++

११ । रूप-स्वरूप : महाकाव्य अथवा महान्‌काव्य ?

'महाकाव्य' के रचनागठन (structure) का निर्माण करने की कोशिश एक काव्यशास्त्रीय चुनौती रही है। दंडी और विश्वनाथ ने महाकाव्य के जिस स्वरूप का साँचा तैयार किया वह भरत की परम्परा में नाट्यशास्त्रीय वस्तु-नेता-रस की तीन धुरियों पर चर्चित है। दंडी ने महाकाव्य के स्वरूप के संकेत किये और विश्वनाथ ने उन्हें एक सम्पूर्ण मध्यकालीन पौराणिक संस्कृति के धर्म अर्थ काम मोक्ष के चतुर्वर्ग के घेरे में बाँध दिया। यह सविधान धार्मिक और अभिजात्य नैतिकतावाला था। अत: महाकाव्य का रचनागठन नाटक के अनुकरण पर निर्मित किया गया, और उसका ससार धर्मशास्त्रों एवं राजसभाओं के युद्ध एवं रोमांस के वातावरण में रागरंजित हुआ। हम कह सकते हैं कि महाकाव्य की इकाई 'संस्कृति और समाज' है। यह इकाई समसामयिक एवं मध्यकालीन थी। यह इकाई न तो रामायण जैसे आदिकाव्य तथा महाभारत जैसे इतिहास से अनुमोदित है, अपितु यह नाट्यशास्त्र एवं तत्कालीन समाज की अनुवर्तिनी है। इसलिये जब हम बीसवीं शदी के महाकाव्यों पर इस इकाई को थोपते हैं तब पल्लवग्राही होकर 'साकेत' या 'कामायनी' के महाकाव्यत्व को छू भी नहीं पाते क्योंकि इनमें समाज-संस्कृति की संदर्भात्मक इकाई (contexual unit) ही भिन्न है। फिर यह भी सवाल उठता है कि महाकाव्य का आधार क्या हो? पहले यह आधार रचनागठनात्मक स्वरूप (structural form) था। मम्मट ने इसमें 'उत्तमकाव्य' की अन्वीक्षा प्रस्तुत की जो अर्थ एवं अभिव्यंजना (व्यंजना) पर केन्द्रित था। सम्भवत: मम्मट महानकाव्य को प्राथमिकता दे रहे थे जो नाटकीय बोध के कार्यव्यापार की सुव्यवस्था की अपेक्षा काव्यबोध की चर्वणा की अलौकिकता में तन्मय करा सके। महाकाव्य

है वस्तु का [illegible] [illegible] से [illegible] है [illegible] युग के [illegible] हो जाता है, इसके [illegible] के [illegible] की ओर [illegible] किया जाता है। महाकाव्य के [illegible] की इन [illegible] को [illegible] समझकर भी कोई [illegible] नहीं है [illegible]। [illegible] अलंकार, रीति, गुण, रस, [illegible]-[illegible] आदि की चर्चा कर के भी महाकाव्य के [illegible] ढाँचा प्रस्तुत नहीं कर पाते।

यूनानी परम्परा में भी हम कुछ ऐसी ही स्थिति पाते हैं। वहाँ भी त्रासदी के स्वरूपगठन का जो सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है लेकिन महाकाव्य के बारे मूलतः 'काल' की इकाई स्वीकार की गई है। वहाँ 'युगांत' (epoch) का कथात्मक अभिव्यक्ति महाकाव्य है। इस यूनानी परम्परा में महाकाव्य की सदर्भात्मक इकाई काल है। अरस्तू ने अपने गुरु प्लेटो की तरह काव्य को मिथक (Myth) या मिथ्या को स्वीकार किया लेकिन महाकाव्य को अतीत की कथा अर्थात् इतिहास की सज्ञा दी। महाकाव्य के रूप में वे होमर एवं हेसियड की पुनर्प्रतिष्ठा करना चाहते हैं क्योंकि उनके गुरु ने उन्हें मिथ्याचारी और जादूगर कह कर अपने प्रजातन्त्र से निर्वासित कर दिया था। अत अरस्तू ने महाकाव्य में चमत्कार एव आश्चर्य को भी स्थान दिया। अरस्तू ने 'काल' की इकाई को समझकर महाकाव्य को नाट्य से पृथक भी कर दिया। त्रासदी में एक व्यक्ति का प्रारम्भ होता है लेकिन (उनकी परिकल्पना में-) महाकाव्य में एक युगीन जीवन, मानवता का प्रारम्भ भी हो सकता है। अत त्रासदी का छै तत्वों वाला ढाँचा महाकाव्य में उन्होंने ही खुद नामजूर कर दिया। प्रत्युत उन्होंने कार्य-व्यापार की विविधता, व्यापकता, निर्बंधता को प्रतिपादित किया। महाकाव्य का काल सूर्य की एक परिक्रमा के बजाय सीमाहीन काल हो गया। अरस्तू ने महाकाव्य के हेतु [illegible] की स्वीकृति का भी इशारा नहीं किया है। इसके

मिथकीय काल से लेकर महाकाल (शैव) का ग्रहण हुआ है; तथा आदिम मनुष्य (मनु) से लेकर मानवता और मानव के मानस का अभिधान हुआ है। यही नहीं, 'कामायनी' का बोध आधुनिक एवं रोमांटिक, मध्यकालीन एवं भविष्यकालीन, शैवानंदवादी एवं यथार्थवेदनावादी भी है। इसके अलावा इस महाकाव्य का रचनागठन कार्यव्यापार के सूत्रों को तोड़ने-जोड़ने में नये-नये अनूठे प्रयोग करता है। इसीलिये हमे पहले कामायनी के कला माध्यम (art-medium) को समझना चाहिए।

● सौंदर्यबोधशास्त्र की मान्यता है कि लिरिकल बोध के लिये प्रयुक्त माध्यम मुक्तकों का होता है क्योंकि भाव का एक ज्वार उठकर पूर्ण हो जाता है। उस उत्थान मे तीव्रता, केन्द्रीयता और तत्स्फूर्ति होती है। अतः लिरिकल भावों की अभिव्यंजना किसी लघु कलारूप को चुनती है जिसमे शब्द स्वानुभूति की गूढ़ता को उभार लाते हैं जिससे अर्थ के बजाय अनुभव की प्रधानता हो जाती है। 'कामायनी' का बोध ऐसा ही लिरिकल है किन्तु इसे महाकाव्यात्मक माध्यम में विस्तारित किया गया है। अत· महाकाव्य का रूप-स्वरूप तदनुरूप मोम जैसा पिघलकर रुई की तरह अमूर्त हो उठा है। मिसाल के तौर पर चिंता और आशा सर्ग मे वैदिक चेतना वाले मत्र हैं, तो श्रद्धा सर्ग मे छद; काम सर्ग में छायावादी वसंत चित्र है तो इडा सर्ग में लघु लघु मुक्तकों के स्तवक; संघर्ष सर्ग मे इतिवृत्तात्मक वेग है तो आनंद सर्ग मे विवरणात्मक फान्तासी। इससे यही स्पष्ट होता है कि कामायनी का रूप-स्वरूप कई माध्यमों का प्रयोग करते करते लिरिकल बोध के लिये एक महाकाव्य के रचनागठन का अन्वेषण करता है।

'कामायनी' के कलामाध्यम मे हम सवादो के भी कई तरह के प्रयोग पाते हैं। इसकी भी वजह है। इसमें कथा का बहिर्घटना प्रवाह तो केवल तीन सर्गों—कर्म, स्वप्न तथा सघर्ष मे ही है। चिंता सर्ग मे प्रलय की स्मृति है। आशा सर्ग मे मनु द्वारा पाक यज्ञ किया गया है, श्रद्धा सर्ग मे काम बाला कर्म एवं काम का सदेश मात्र देनी है, वासना सर्ग मे मनु और अतिथि चाँदनी मे देवदारुओं के निकुंज मे यात्रा करते हैं, निर्वेद मे मनु और श्रद्धा का मिलन होता है। इसके उपरात कथा ऐतिहासिक स्तर के बजाय आध्यात्मिक साधना पथ पर चलती है। इस तरह प्रसाद को 'कामायनी' में मूलतः अतर्घटना प्रवाह को आद्योपात अंकित करना पडा है। इसी वजह से काम-वासना-लज्जा सर्ग की त्रयी, और दर्शन-रहस्य-आनन्द सर्ग की त्रयी, दोनो ही क्रमशः मनोवैज्ञानिक तथा अन्यापदेशिक (allegorical) हो गई हैं। चिंता सर्ग मे आत्म-

चिंता तथा इड़ा सर्ग मे आत्मचिंतन का स्वानुभव तथा स्मृतिमथन है । इसीलिये बाह्य कार्य व्यापार की क्षीणता के कारण—सिद्धहस्त कवि नाटककार प्रसाद को नाटकीय विधियो का अवलब लेना पडा है। अतः उन्होने या तो स्वगत कथन को आत्मचिंतन मे ढाला है, अथवा दो पात्रो के बीच संस्कृति, काम, कर्म, जीवन और विश्व के प्रश्नो पर सौंदर्यदार्शनिक संवाद कराये है । अब जो ये पात्र युगल (मनु-कामबाला, मनु-काम, नारी-लज्जा, प्रजापति इडा, मनु-त्रिपुर सुन्दरी श्रद्धा) परस्पर सवाद करते हैं, वे कभी तो मिथकीय पात्र हो जाते हैं (मनु - कामबाला), कभी मनोवृत्तियाँ (मनु-काम, नारी-लज्जा), कभी सामाजिक-राजनैतिक प्रतीक (प्रजापतिमनु-राष्ट्रस्वामिनी इड़ा), और कभी अन्यापदेश (साधक पुरुष और शक्ति) । इसलिये इन सवादो मे केवल नाटकीयता और काव्यात्मकता ही नही निबन्धित है, बल्कि चार दृष्टियाँ अनुक्रमिक तथा सहवर्ती हो गई हैं। ये चार दृष्टियाँ है— (१) मनोभावो का उन्मीलन (विकास नही), (२) मानवता के विकास का रूपक, (३) मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास और (४) मनु अर्थात् मन के दोनो पक्षों—हृदय और मस्तिष्क—का (श्रद्धा एव इड़ा के व्याज से) सम्बन्ध निर्देश । कामायनी की 'कथासृष्टि' के ये ही आधार है (दे० 'कामायनी' का कविलिखित आमुख) । और, ये आधार आधुनिक तथा मौलिक है । इन आधारों पर ही 'कामायनी' का महाकाव्यत्व टिका है, न कि विश्वनाथ चतुर्दश लक्षणो पर । इस भाँति 'कामायनी' का माध्यम कई आयामों वाला है । अत यहाँ बिम्ब और प्रतीक, पात्र और भाव, मनुष्य और मानवता के विकास एव उन्मेष के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष धाराप्रवाह मिलते है । कवि इन्हे जितना अधिक गूँथ सका है, उतना ही अधिक सफल उसका महाकाव्य हुआ है । हम उसके इस महान एव भव्य आयोजन से तो आश्चर्यचकित हैं क्योंकि यह अपने ढग का पहला प्रयास है । किन्तु इसकी सफलता की कहानी दूसरी ही है । इसे कहने के लिये हम'कामायनी' के माध्यम की मीमासा कर चुके है। कवि ने जिस भाषा मे यह सूक्ष्म एव अमूर्त एव शाश्वत कथा कही है वह 'दुर्लभ छाया' वाली भाषा जो 'वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति' करती है । इस अभिव्यक्ति के लिये यह भाषा 'नवीन शब्दो की भगिमा⋯नवीन शैली, नया वाक्य विन्यास' रचती है । इसमे 'ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता' के अलावा 'सौंदर्यमय प्रतीकविधान' और 'स्वानुभूति की विवृत्ति भी है । यह इस भाषा की आधुनिक मौलिकता है (दे० कवि का 'यथार्थवाद और छायावाद' शीर्षक लेख) । अत इस कृति का माध्यम तथा भाषा, दोनों ही भिन्न हैं ।

'कामायनी' के इन मूलभूत सौंदर्यबोध शास्त्रीय अनुशासनों पर ध्यान न देने की वजह से इसमे शास्त्रीय रगत वाला रस, मूल रस, नव रस ढूंढे जाते हैं। कभी कभी तो कहीं कही से बटोरकर वात्सल्य से लेकर वीभत्स और शांत रस की कुछ पंक्तियाँ भी इकट्ठी कर ली जाती हैं। हमे तो यह कार्य तिलस्मी तथा जासूसी लगता है किशोरीलाल गोस्वामी जैसा। महाकाव्य के कई सर्गों मे तो सचारी भाव, अनुभाव या विभाव को ही पूर्णता मिली है। और यह पूर्णता सवेदना (feeling) की गहराइयो की है जिसमे विभावानुभाव का शिखर-आरोहण नही है। जब पात्र ही मनोभावो के प्रतीक हैं तब उन पर रस-चक्र थोपना ज्यादा सगत नही है। कुछ मनीषी इसमे नवो रसों के रसाभास पाते हैं। कुछ इसमे उद्विग्नता नामक नये रस की कल्पना करते हैं लेकिन सभी इसमें रस की शास्त्रीय तलाश करते है। यदि रस का मूल धर्म स्थायी सस्कारो का सौंदर्यबोधात्मक (अलौकिक तथा अनुभावात्मक (रसानन्द) हो जाता है, तब तो यह कृति विभावादि के बजाय सवेदना, शब्दशक्तियों के बजाय सौंदर्य-मय प्रतीक विधान, तन्मयीभवन के बजाय स्पृहणीय आभ्यंतर विवृति के सुकुमार मार्ग से भी यही लक्ष्य स्तसिद्ध कर लेती है। अतः हम तो यही कहेंगे कि हम उस 'दुर्लभ छाया' पर ही समाधिस्थ हों जिसका दर्शन एवं अनुभव कवि स्वयं करता है, और हमे भी कराना चाहता है।

इसके कला–माध्यम के स्वभाव, अनुभाव तथा प्रभाव से परिचित होने के बाद अब हम इसके रचनागठन का भी सश्लेषण-विश्लेषण कर सकते हैं।

६१ कार्य व्यापार का साँचा लगभग सभी महाकाव्यों का स्वरूप यात्रा-प्रधान बना देता है। इसमें तो एक वैदिक कथा के विन्यास, मानवता के विकास तथा मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास—इन तीनों का समन्वय हुआ है। इसमें कवि इतिहास की घटना के भीतर भी 'कुछ' देखना चाहता है। उसका यह 'कुछ' चिरतन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित सूक्ष्म अनुभूति या भाव है। इसलिये जब स्वयं कवि ही अपने महाकाव्य के काव्यतत्त्व का अन्वेषण कर रहा है, तब हम भी उसके इस 'कुछ' को परखें। यह कुछ 'मनन शक्ति की असाधारण अवस्था' है। इसमे सत्य और सौंदर्य (चारुत्व) का कान्त सयोग है। अतः 'कामायनी' के महाकाव्य की इकाई 'चिरतन मानवीय सत्य तथा रमणीय सौंदर्य' की है। हम इसे महाकाव्यत्व के महान काव्यत्व में रूपांतर का केन्द्रीय बिन्दु मानते हैं। इस नई इकाई में पुनर्मिलन तथा सस्कृति विलीन वाली भारतीय तथा यूनानी इकाइयाँ स्वयं अन्तर्लीन हो जाती हैं। कवि ने इसीलिये किसी व्यक्ति या समाज विशेष के वध

१. दर्शन में अन्तर्गत प्रकृति एवं सृष्टि एवं

मन (मनुष्यत्व) की चिरंतनता का आनन्दवादी विश्वात्मपरक इतिहास लिखा है (चेतना का सुन्दर इतिहास अखिल मानव भावों का सत्य)।

प्रकृति एव संसृति एवं मन के चिरंतन सत्य की प्रतिष्ठा कराने की इस आकांक्षा ने ही 'कामायनी' मे सूक्ष्म अनुभूति या भाव को भी पात्रत्व से साक्षात् मानवीकृत किया है ; जैसे काम, रति, नारी, लज्जा, चिंता, आशा आदि। कवि ने इन्हे 'कामायनी' की वैदिक कथासृष्टि मे गूथ दिया है । इनके द्वारा मनोभावों का उन्मीलन तो अवश्य होता है । किन्तु हम इसे 'मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास' मानने को अप्रस्तुत हैं । चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना लज्जा, ईर्ष्या, कर्म, स्वप्न, सघर्ष आदि मे कौन सा मनोवैज्ञानिक इतिहास है ? यह 'कामायनी' के पात्रो की विशिष्ट परिस्थितियो के बीच से उन्मीलित होते हुए मनोभावो का तो इतिहास हो सकता है, किन्तु मनुष्यता मे इस क्रम और इस ढंग से मनोविज्ञान के विकास की विकसित होने के दावे को कोई भी आधुनिक मनोवैज्ञानिक कतई नही मानेगा । अत. ज्यादा से ज्यादा हम यह कह सकते हैं कि 'कामायनी' की वैदिक कथा के अन्तर्गत कवि ने मानवता के विकास का जो क्रम गूँथा है, केवल उसी क्रम के मुताबिक-घटनाओ एव परिस्थितियो के चक्र मे बँधकर-कुछ मनोभावो का उन्मीलन हुआ है । यह उन्मीलन केवल कथाक्रम के समानातर है । किन्तु इस उन्मीलन एव विकास ने कृति को एक त्रिविध यात्रा-साँचा अवश्य प्रदान किया है। इसमे पहली है ऐतिहासिक यात्रा जो महावट से शुरू होकर सारस्वत नगर से होती हुई कैलाश मे समाप्त होती है। दूसरी है मनोवैज्ञानिक यात्रा, जो काम-वासना और लज्जा सर्ग मे पूर्ण हुई है । इसके अतर्गत पहले मनु रम्यनारी को प्राप्त करने के लिये (काम

में तीन त्रयियाँ बनती हैं—(i) ऐतिहासिक यात्रा के गुफनवाली—कर्म-ईर्ष्या स्वप्न-संघर्ष सर्ग की चतुष्टयी; (ii) मनोवैज्ञानिक विकास के गुंफन वाली काम-वासना-लज्जा सर्ग की त्रयी; और (iii) आध्यात्मिक साधनायात्रा के गुंफन वाली दर्शन-रहस्य-आनद सर्ग की त्रयी।

चिंता सर्ग मे मनु की अस्तित्ववादी चिंता है, तथा इड़ा सर्ग मे मनु का बौद्धिक आत्मचिंतन। ये दोनो सर्ग स्मृति एव संस्कार प्रधान हैं जिनमें प्रत्यभिज्ञा केंद्र मे है। इनमे से चिंता सर्ग में कथा वृत्त के बाहर की देव संसृति और जल प्रलय की घटनाओ का········है; और इडा सर्ग मे चिंता सर्ग से ईर्ष्या सर्ग तक घटे हुए सम्पूर्ण कार्यव्यापार तथा मानसिक संघर्ष का आत्मविश्लेपण। चिंता सर्ग में कवि आदिम परिस्थितियों मे शून्यता, अकेलेपन, जड़ता त्रास आदि के उस बोध को उद्घाटित करता है जो महाकाव्य मे मनुष्य के अस्तित्ववादी प्रारब्ध की भयानकता लिये है। इड़ा सर्ग में वह कर्म एवं संघर्षशील सामाजिक मनुष्य की व्यथा तथा अपूर्णता, पश्चाताप तथा प्रतिहिंसा सामाजिक संवध तथा वैयक्तिक स्वातत्र्य की स्थितियो की मनोदार्शनिक मीमासा प्रस्तुत करता है। इडा सर्ग मे सभी पूर्ववर्ती घटनाओ का सारांशीकरण करके सूक्ष्म अनुभूति या भाव निर्मित किये गये हैं। अतः इसी सर्ग में परवर्ती सामाजिक जीवन के सभी बीज अकुरित होने को सुगबुगा उठते हैं। इस सर्ग के चिंतन का प्रवाह निर्वेद सर्ग तक चलता है। दर्शन सर्ग से तथा उससे आगे तो महाकाव्य का कथ्य ही एक फान्तासी-सा (fantasy) हो जाता है।

महाकाव्य के रचनागठन को इस तरह खड-खड विश्लेषित करने तथा उन्हें असफलतापूर्वक सश्लेषित करने मे कवि को कई तकनीकों का इस्तेमाल करना पड़ा है। इनकी चर्चा हम आगे करेंगे। किन्तु प्रसाद जैसे कुशल नाटककार को यह सब कृति के माध्यम के स्वभाव-अनुशासन-प्रभाव के अनुसार ही करना पड़ा है। उनके इस महाकाव्य की इकाई 'चिरतन मानवीय सत्य तथा रमणीय सौंदर्य' की है। अतएव उन्होने पात्रो को प्रतीक बनाया है, तथा मानवीय वृत्तियो को पात्रत्व प्रदान किया है। अत. सभी कुछ सूक्ष्म अनुभूति या भाव मे रूपांतरित होने के लिए विकल है। यही उद्विग्नता है जो सम्पूर्ण महाकाव्य मे परिव्याप्त है और मूल शक्ति के रूप मे जागकर सचेतन हो उठी है। इन्हीं कारणों से बाह्य घटनाएँ गायब होती जाती हैं और अतर्निरीक्षण उन्मिषित होता जाता है। कथानक की इस क्षीणता मे उसके ऐतिहासिक आयाम को सर्वाधिक बिखरना पड़ता है। पर अनुपात इतना अधिक है कि काम-वासना-लज्जा सर्ग की त्रयी मे कथा सूत्र नहीं के बराबर है; कर्म-ईर्ष्या स्वप्न संघर्ष की

[illegible] है और [illegible]-सागर सर्ग में मनो-
वैज्ञानिक [illegible] हुए हैं ।

कथा के [illegible] और पूर्ववर्णित बातों [illegible] को
[illegible] करने के लिए कवि ने [illegible] प्रयोग भी किये हैं : चिन्ता सर्ग में
पूर्वदीप्ति (flash back) की पद्धति का व्यवहार हुआ है, काम सर्ग में स्वप्न
(dream) के माध्यम से [illegible] मनु को काम अपनी [illegible] एव प्रतीकात्मक
कथा सुनाकर [illegible] स्वप्न सर्ग में श्रद्धा को स्वप्न में ही
आगामी घटनाओं का पूर्वज्ञान (premonition) हो जाता है , दर्शन सर्ग
में मनु [illegible] के [illegible] का दिवास्वप्न (Daydream) देखते
हैं, तथा रहस्य सर्ग में कवि एक [illegible] प्रतीकों वाली यूटोपिया (utopia)
रचकर सामाजिक [illegible] तथा विश्व निर्माण सबंधी अपना आदर्श प्रस्तुत
करता है । आनंद सर्ग में [illegible] शक्ति की सामरस्यदशा वाली एक फान्तासी
(fantasy) की भी रचना हुई है जहाँ विश्व सुन्दरी प्रकृति और शक्ति
चेतन विश्व और मनुष्य [illegible] आनंद में लीन हैं । इस तरह संवादों
के विविध प्रयोगों के बाद कवि ने पूर्वदीप्ति स्वप्न, स्वप्नपूर्वज्ञान, दिवास्वप्न,
यूटोपिया एव फान्तासी आदि के रूपों का इस्तेमाल किया है जो महाकाव्य के
स्वरूप की विलक्षणता के परिचायक हैं । स्पष्ट है कि ऐसे प्रयोग घटना प्रधान
महाकाव्य में असभव है । इनकी समर्थ सभावना तथा विश्व अनिवार्यता तो
इसी माध्यम में मिलती है जिसमें एक साथ मनोभावों का उन्मीलन, मानवता
के विकास का स्वर, मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास और मन के दोनों
पक्षों का सबध निर्देशन हुआ है ।

कथाबीजों की इन विविधताओं एवं विस्तारों के अलावा मनु का
पात्रत्व इस कृति को महाकाव्यत्व प्रदान करता है । मनु कौन है ? मिथकीय
मनु से हम परिचित हैं । कवि ने पहले सांख्य दर्शन समत एक निष्क्रिय 'पुरुष'
को प्रस्तावित किया है (लेकिन उसका निर्वाह नहीं कर सका) । इसके बाद
मनु पाक याज्ञिक और सृष्टि के प्रथम मनुष्य हैं; फिर (इडा सर्ग में) प्रजापति
तथा नरपशु होते हैं और अत में परम शिवतत्त्व में लीन होते हैं । मनु मन
अर्थात मानस भी हैं जिसके हृदय (श्रद्धा) एव बुद्धि (इडा) दो पक्ष हैं । जो
अतीत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों को ही समेट लेते हैं । मनु श्रद्धायुत होकर
काम बाला का वरण करते है तो निर्बाधित अधिकार भोगी होकर राष्ट्र-
स्वामिनी इडा के साथ बलात्कार करते है । इस तरह मनु अकेले पुरुष से गृहपति,
प्रजापति और साधक में परिणत होते है । वासना सर्ग में काम तथा कर्म संघर्ष

में हिंसा को सीख कर मनु स्वप्न एवं संघर्ष सर्ग मे हिंसा तथा काम से पूर्ण मिलते है किंतु यही हिंसा जन शोषण एव वर्गयुद्ध में, तथा काम अभिशाप एवं पाप में बदल जाता है। इस तरह मनु ही महाकाव्य है। वह अकेला भी है और भीड़ से लड़ने वाला भी। भोगी भी है और योगी भी; नरपशु भी है और देवात्मा भी; मानव के जो भी द्वद्वात्मक पक्ष हो सकते हैं वे सब मनु में केंद्रित हैं। मनु, मानस, मानव, चिरंतन मनुष्य तथा मानवता है। इसी वजह से श्रद्धा एक चिरंतन वृत्ति तथा नारी है, और इड़ा आधुनिक राष्ट्रसत्ता एवं बुद्धि का प्रतीक है। इनके माध्यम से ही कवि एक परिपूर्ण मनुष्य तथा सम्पूर्ण मानवता की अपनी विचारधारा (ideology) को आच्छादित करना चाहता है। इतने विपुल सम्भार से मनु का व्यक्तित्व-दर्पण दरक गया है। इसी तरह हम कम से कम श्रद्धा और इड़ा के मानवी-व्यक्तित्व में कवि की कुछ क्रांतिकारी दिशाओं की झांकी पाते हैं। श्रद्धा की रचना मानों 'एक घूट' 'कामना' की नायिकाओं, 'तितली' की तितली, 'चद्रगुप्त' की कार्नेलिया तथा 'ध्रुवस्वामिनी' की कोमा का संग्रह करके हुई है। उस पर गृहपति मनु का अधिशासन है। इड़ा के चरित्र मे कवि ने ध्रुवस्वामिनी में उठाये गये कदम का अधुनिकीकरण किया है। इडा आत्मस्वत्व और समानता वाली नारी है। राष्ट्रस्वामिनी के रूप में वह नियम पालन और राष्ट्रसत्ता की रक्षा की भी जिम्मेदारी समझती है। सेक्स तथा परिवार के क्षेत्र में वह मनु की दासी या बंदिनी नही रह सकी। वह सगिनी के रूप में यह प्रतिपादित करती है कि सेक्स निर्णय प्रजापति नही, स्वामिनी नारी करेगी, तथा समाज के अधिकारो को मनु निर्बाधित नही भोग सकते। इस तरह कर्तव्यमयी नारी (woman of duty) तथा समानताधर्मी नारी (woman of equality) के बीच प्रसाद बाद मे चुनाव नही कर सके। यहां वे ध्रुवस्वामिनी के बोध [illegible] आधुनिक नर-नारी सबधो मे प्रतिमानीकरण नहीं कर सके, और फलतः [illegible]द्धा के रोमांटिक एव मध्यकालीन सबंधो के प्रतिमानीकरण मे भटक गये। [illegible]क महत्तम बात यह है कि कवि इस महाकाव्यात्मक (प्रतीक एवं प्रतिनिधि [illegible]ले) शील-निरूपण में कवि नैतिकता के प्रति तटस्थ रहा है। वह नैतिकता [illegible]दि से विमुक्त होकर मानवीय सबधो के मूल रूप को पहचानने को उद्विग्न [illegible]। इसलिये सामाजिक सदर्भ मे पाप की धारणा केवल स्वप्न सर्ग मे एक बार [illegible]ई है। देवताओं का सुन्दर पाप हो मानवीय सृष्टि मे पाप की परिभाषा [illegible]न आती है (चिंता सर्ग मे चिंता पुन्य सृष्टि मे सुन्दर पाप थी।) इस प्रकार

हाँ कवि सम्पूर्ण मानवता तथा परिपूर्ण मनुष्य को अंकित करने की यूतोपियाई
महत्वाकांक्षा रखता है किन्तु सामाजिक दृष्टिकोणों से हटते-हटते आध्यात्मिक
रहस्यलोकों में विश्राम ढूंढने लगता है । फलतः मनु और इड़ा— दर्शन सर्ग से
आगे— शैवाद्वैतवादी आनंद साधना करने लगते हैं और ऐतिहासिक पात्र,
मनुष्यता के प्रतिनिधि मन के प्रतीक होने की अपेक्षा रहस्यवादी अनुभवों की
अभिन्न अवस्था में अन्यापदेशित हो जाते हैं । महाकाव्य को चकनाचूर करने
वाली एकान्तिक दरारें ये ही है ।

इस महाकाव्य की 'चिरंतन मानवीय सत्य तथा रमणीय सौंदर्य' की
संदर्भात्मक इकाई में-से पहले अंश की मीमांसा के बाद अब हम रमणीय सौंदर्य
के संदर्भ का अन्वीक्षण करेंगे । 'प्रकृति के सौंदर्य साक्षात्कार' वाले खंड में हम
दूसरे दृष्टिकोण से इसका विश्लेषण कर चुके हैं। यहाँ हम महाकाव्य के
रचनागठन की इकाई के प्रसंग में इसे स्वीकार करेंगे ।

● यहाँ 'रमणीय सौंदर्य' का व्यापक परिवेश लिया जा सकता है ।
कवि और काव्य की मूल वृत्ति नाटकीय कार्य (एक्शन) के बजाय काव्यवर्णन
(डिस्क्रिप्शन) है । कवि ने इस भूमिका में विश्वसुन्दरी प्रकृति तथा (आत्म से
अभिन्न—) आत्मरूप विश्व के द्वारा 'प्रकृत रस' का भी अभिधान किया है ।
इसके लिये प्रकृति और चेतन पुरुष पुरातन का विभाव, तथा विश्व और मनुष्य
का विभाव लिया गया है । प्रकृति की शक्ति उसकी मूलशक्ति है, और मनुष्य
की मूल शक्ति अनादि वासना है। इस तरह मानों प्रकृत रस के लिये मूलशक्ति
और मानवीय रस के लिये अनादि वासना का आधार प्रतिपादित हुआ है ।
पहले के मूल में रमणीयता और दूसरे के मूल में सौंदर्य है । इसीलिये कवि ने
'सौंदर्यमय प्रतीक विधान' की बात की है न कि विभावादि के विधान की ।
विवरण के निमित्त यह 'कामायनी' का महान काव्यत्व है । इस विवरण के
लिये प्रसाद ने दो दृष्टियों का मेल किया है । उनके ही अनुसार यथार्थवाद की
विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात; तथा लघुता से
तात्पर्य है व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख । कवि
के ही अनुसार यथार्थवादिता में अकिंचन साधारण मनुष्य ही क्षुद्रता में महान्
दिखलाई पड़ने लगता है । अतः यथार्थवाद में दुःख सवलित मानवता की वेदना
के अंश प्रचुरता से होते हैं । अतः यथार्थवाद का मूल भाव है वेदना । इसी
तरह आनन्दवादी कवि ने आदर्शवाद का मूल आनंद माना है । इस तरह प्रसाद
ने दुःखदग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण-स्वर्ग का एकीकरण किया है । 'कामायनी'
में चिंता सर्ग की प्रकृति, तथा स्वप्न एवं संघर्ष की मानव सृष्टि के साथ साथ

दर्शन रहस्य और आनन्द सर्ग का स्वर्ग भी अंकित हुआ है। अलबत्ता कवि अपने इस जगत और स्वर्ग का ऐकीकरण नहीं कर सकता है। तांत्रिक प्रतीकों के द्वारा ऐकीकरण कराने से तो संघर्ष सर्ग के प्रश्न और भी धधक उठते हैं। कवि के बिखराव तीनों प्रकार के (मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, आध्यात्मिक) यात्रा-साँचों में दृष्टिगोचर हो उठे हैं।

वर्णन के लिए कवि ने अपने ढंग से यथार्थवादी वेदना तथा आदर्शवादी आनन्द का समन्वय किया है। उसने सभी वर्णन वेदना के आधार पर किये हैं। अतः उन आनंदशिखरों में भी वेदना की अंतर्धारा की उद्विग्नता है। इसके अलावा कवि ने शास्त्रीय ढंग के 'बाह्यवर्णन' नहीं किये हैं, बल्कि (वेदना के आधार पर) छायावादी ढंग की 'स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति' की है। स्पष्ट है कि कवि वर्णन और अभिव्यक्ति जैसे शब्दों के द्वारा अपने आंतरिक स्पर्श की विचित्रता को संप्रेषित करना चाहता है। इसके लिये वह नवीन वाक्य विन्यास, की रचना करता है। कुंतकीय सुकुमार मार्ग का अन्वेषी कवि 'नवीन शब्दों की भंगिमा' अर्थात् दुर्लभछाया की उद्विग्नता से रंजित होना चाहता है। कवि ने इस विचित्र उद्विग्न को 'तड़प' कहा है (पदे०, काव्य और कला तथा अन्य निबंध')। 'कामायनी' के विवरणों का रहस्य, जादू तथा तत्त्व यही नवीन शब्दों तथा वाक्यविन्यास वाली भाषा की तड़प है। ये सब कवि के साक्ष्य हैं। अतएव केवल रीति, गुण, शब्द शक्तियों के जाल में फँसाकर 'कामायनी' की भाषा का अनुशीलन केवल घोंघे, शंख और सीपियाँ ही दे सकेगा। हाँ, इन दृष्टियों से भी यथासंभव अध्ययन किया जा सकता है। हम इसे तो स्वीकार कर सकते हैं। तथापि यहाँ भी प्रकृत रस पर आद्योपांत नजर रखनी होगी। अतः 'कामायनी' में आन्तरिक अभिव्यक्ति करने वाले वर्णन हैं। इन वर्णनों में वेदना, पीड़ा, दुख, व्यथा, चिंता, संवेदन, विकल, अधीर, उद्विग्न विषमता, निरुपाय, करुणा जैसे शब्दों का एक वेदनावादी समूह है तो मधु, मादकता, पराग, सुख, मदिर, राग, रंग, चपल, उल्लास, उन्माद, चंचल, जैसे शब्दों का दूसरा आनन्दवादी समूह। कवि ने इन दोनों शब्द कदंबों को रहस्य कुतूहल, विचित्रता, रमणीयता और सौंदर्य से निबंधित किया है।

संवादों के अतिरिक्त महाकाव्य का दो तिहाई अंश इन वर्णनों से प्रचुर है जिनमें कवि के आंतरिक स्पर्श की विचित्र 'पुलक' तथा 'तड़प' है। इन वर्णनों के कई तकनीकी प्रयोजन भी हैं। ये प्रभाव उत्पन्न करते हैं, संकेत करते हैं, दृश्यविधान रचते हैं, सामूहिक भावों का संप्रेषण करते हैं तथा अलंकारों की शोभा बिखरा[illegible] वर्णन मनोवैज्ञानिक, सौंदर्य बोधात्मक, दार्शनिक तथा

चिन्ता सर्ग में भीषण प्रकृति-प्रलय का बाह्य वर्णन है। भारवि के जैसा ओजस्वी और कलात्मक। यह वर्णन मनु में चिन्ता, अभाव, शून्यता, मृत्यु, अवसाद और अचेतन के अग्नि-ज्वार को प्रलयान्तर में धू धू करके उद्दीप्त करता है। किन्तु यह एक स्वतन्त्र वर्णन खण्ड भी है जिसकी निर्वाह भूमि शान्त दर्शन वाली है। आशा सर्ग प्रकृत रस को प्रसन्नता से व्यंजित करता है। इसमें हिमालय और रजनी के वर्णन हैं। यहाँ अलसाई प्रकृति प्रबुद्ध होकर जागती है और ललित लीलाएँ करने लगती है। श्रद्धा सर्ग में कामबाला का छायावादी पुलक एवं लावण्य की दुर्लभ छाया वाला वर्णन है जिसकी भूमिका काम सर्ग तथा कर्म सर्ग को निवेदित करती है। इस वर्णन में सौंदर्य के विकास परमाणु पराग कण, लघु अवयव आदि प्रकृति की रमणीयता के भी मूल तत्व हैं। इस प्रकृति परमाणु से रचित श्रद्धा का पराग शरीर और हृदय की बाह्य एवं उदार अनुकृति वाला सौंदर्य मिलकर प्रथम सौंदर्य तत्व का सिद्धांत प्रस्तुत करता है। काम सर्ग के अन्तर्गत मधुमय वसंत और माधवी निशा के प्रकृत रस की लीला अंकित हुई है जिसमे सौंदर्यमय प्रतीक विधान के साथ-साथ लाक्षणिकता तथा ध्वन्यात्मकता का भी समाहार हुआ है। यह छायावादी 'अभिव्यंजनात्मक वर्णन' की परम सिद्धि है। इसके पूर्ण कण्ट्रास्ट में रहस्य सर्ग की तांत्रिक भाषा तथा रहस्यात्मक प्रकृति शक्ति की बिंबावली है। इसी वर्णन के पूरक रूप में आनन्द सर्ग की विश्वसुन्दरी प्रकृति के लासरासयुत आनन्दोत्सव है। मानो रहस्य सर्ग की त्रिपुरसुन्दरी श्रद्धा के उपरान्त कवि ने विश्वसुन्दरी प्रकृति के द्वारा जड और चेतन को आत्मा का अभिन्न अंग बना दिया है। कामसर्ग का मधुमय वसंत देवताओं के अनन्त वसंत से तुलनीय है जहाँ पारिजात, कल्पवृक्ष स्वर्गंगा आदि का निवेश हुआ है। देवताओं की क्रीडा यहाँ मनुष्य के अभ्यंतर की लीला बन जाती है। यहां वसंत और निशा के भी बीच में उद्दीपन के रूप में स्वयं प्रकृति ही है। यहाँ भी अणु ही सौंदर्यमयी चचल कृतियों का उल्लास, हास, नृत्य, मान, और जागरण व्यंजित करते हैं। और, वसंत-निशा की यह

कुतूहल जागते हैं और मनोविकारों का जन्म होता है। अतः इस सर्ग मे नारी के सात्विक भाव (स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु व प्रलय) अंगज अलंकार (भाव, हाव, हेला), अयत्नज अलकार (शोभा, कांति दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य), स्वभावन अनुभाव (लीला, विलास, विच्छति किलकिंचित् विभ्रम, मद, ललित, विहृत, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, चकित, केलि) तथा दश सुभग गुणो का भी मिला जुला छायावादी ढग का काव्यतात्विक विधान हुआ है। यह काव्यतात्विक वर्णन शास्त्रीय शृंगार की परम्परा का अनूठा नवीकरण करता है। हम यह भी देखते हैं कि काम, वासना तथा लज्जा तीनो सर्गों की विवृति सवादात्मक है।

कर्म तथा ईर्ष्या सर्ग मे कथा सूत्रो का सघन गुफन है। ईर्ष्या सर्ग मे गर्भावस्था वाली श्रद्धा का रूप वर्णन आलस्य, कृशता व बोझ की विशिष्ट व्यंजना करता है।

स्वप्न सर्ग मे मनुष्य के नगर (city of man) का वर्णन है जिसका विस्तार सघर्ष सर्ग में हुआ है। इस वर्णन के द्वारा प्रसाद ने आधुनिक युग, आधुनिक पूँजीवादी सभ्यता, तथा भौतिकवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि की आलोचना की है। इस वर्णन में प्रसाद की विचारधारा (ideology) और उनके रोमांटिक जीवन बोध का पूरा कलादश कोण (kaleidescope) दिखलाई देता है। इसमे मनुष्यता को नगनरूप, निर्बाधित अधिकार भोगने वाले स्वेच्छाचारी प्रशासक, सामूहिक चेतना का छिन्न भिन्न होना, आर्थिक शोषण और वर्ग सघर्ष, भौतिक हलचल और भौतिक विप्लव आदि का निरूपण विश्लेषण हुआ है। यहाँ वर्णन का प्रयोजन अधुनिक युग एव पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था का यथार्थवादी विश्लेषण करना है। इन्ही दो सर्गों मे जो युद्ध का वर्णन है उसमे भूतनाथ के ताडव तथा रुग्न प्रकृति के निर्णय का, तानाशाह मनु और क्रांति करती हुई जनता का, नरपशु के बलात्कार और राष्ट्रस्वामिनी स्वाधिकार का भी सयोग हुआ है। हमे यह समझ मे नहीं आता कि अधुनिक युग से इस 'युद्ध' मे कवि ने वैदिक अस्त्र शस्त्रो और पौराणिक देवशक्तियों का उपयोग करके कौन सा औचित्य प्रदर्शित किया है। यदि हम इस वर्णन के प्रसग मे कवि की विचारधारा को थोड़ी देर के लिये नजर अदाज कर दें तो निस्सदेह इसका फलक विराट है। कवि ने सामाजिक व्यवस्था और व्यक्ति चेतना की इसी विसगति को मानसलोक मे उभारने के लिये रहस्य सर्ग मे तांत्रिक एव यौगिक भूमि को अपना डाला है। इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान के इस कविप्रणीत त्रिलोक मे जो वर्णन हुए हैं उनमे एक ओर

माया—छाया मनु की इन्द्रियों की चेतना का भी विस्तार करती है। अतः श्रद्धा सर्ग में कामबाला के सौन्दर्य वर्णन में प्रयुक्त कला-शिल्प का विस्तार इस सर्ग में हुआ है।

वासनासर्ग में सांकेतिक वर्णन हुआ है जिसका सूक्ष्म अन्वेषण हमने 'काम और रति' वाले अध्याय में किया है। इस सर्ग में एक ओर बादलों में दो बिजलियों को खोलने वाले मधुरिमा के ज्वार गगन में बिछुड़े हुए कोक युगल, प्रकृति से मानवी के प्रति करुणा-ममता (मनु के माध्यम से), लघु जलदखण्ड के रथ में आरूढ़ चन्द्रमा की यात्रा, प्रकृति का कौमुदी में स्वप्न महोत्सव, विश्व मायावी प्रकृति की विस्मयरागमयी मूर्ति आदि के मोतियों से गुँथी हुई सुहासिनि मनु और विश्वविहार अतिथि (नारी) की भी अन्तर्यात्रा का समानांतर चित्रण हुआ है। बिजलियों के गुम्फन की अविरल लड़ाई मनु और अतिथि की चेतना के पाश में बाँधने का षड्यंत्र है, गगन में बिछुड़े हुए कोक मनु के कानों में काम के संदेश गूँजाते हैं, पशु के प्रति अतिथि की ममता मनु की काम जन्य ईर्ष्या के दृप्त फन को फैला देती है, रथारूढ़ चन्द्रमा की यात्रा मनु की अतिथि के साथ हृदय की सौंदर्य प्रतिमा को पहचानने की यात्रा हो जाती है, प्रकृति का स्वप्नशासन मनु को अवचेतन के स्वप्न पथ में चलाने लगता है जहाँ अनादि वासना चिरन्तन स्नेह में बदल जाती है, विमल राका मूर्ति के रूप को निरखते हुए मनु के सामने अतिथि की रम्यनारी मूर्ति उपस्थित हो जाती है और वे मिलन तथा समर्पण की मंजिलों में पहुँच जाते हैं, तथा अन्ततोगत्वा एक शिशु की तरह बालिका सी नारी के साथ उनकी अधीर वासना का केन्द्रीभूत सुखबोध ही मधुर साधना की स्फूर्ति में ढल जाता है। वासना के विकसित होते हुए विभिन्न रूप अन्ततः दोनों को शिशु बना देते हैं (कामसर्ग के देवता चिर किशोर वय वाले थे।) इस दुहरी यात्रा के द्वारा कवि हमें लज्जा सर्ग में ले आता है।

लज्जा सर्ग में मन की आतंरिक वृत्ति लज्जा को पात्र बना कर उसका वर्णन किया गया है। जिस तरह वासना सर्ग में मनु की अंतर्यात्रा अंकित है, उसी तरह इस सर्ग में चमत्कृत बाला सी नारी की अंतर्यात्रा का विवरण है। इस अंतर्यात्रा में मन के बंधन से मुक्त रति रूप नारी, अपनी ही छाया प्रतिमा लज्जा के कारण, हृदय से परवश श्रद्धारूप नारी में रूपांतरित होती है। महाकाव्य की दृष्टि से तो यह सर्ग अनापेक्षित है, किन्तु यह एक महान् सर्ग है। इस वर्णन में कुतूहल बोध का विस्तार हुआ है। जिस तरह चिंता एवं वासना सर्ग में मनु में कुतूहल जागता है, उसी तरह इस सर्ग में नारी में

कुतूहल जागते हैं और मनोविकारों का जन्म होता है। अत: इस सर्ग मे नारी के सात्विक भाव (स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु व प्रलय) अगज अलकार (भाव, हाव, हेला), अयत्नज अलकार (शोभा, काति दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य), स्वभावज अनुभाव (लीला, विलास, विच्छति किलकिंचित् विभ्रम, मद, ललित, विहृत, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, चकित्, केलि) तथा दश सुभग गुणों का भी मिला जुला छायावादी ढग का वाच्यतात्विक विधान हुआ है। यह काव्यतात्विक वर्णन शास्त्रीय शृ गार की परम्परा का अनूठा नवीकरण करता है। हम यह भी देखते हैं कि काम, वासना तथा लज्जा तीनो सर्गों की विवृति सवादात्मक है।

कर्म तथा ईर्ष्या सर्ग मे कथा सूत्रो का सघन गुफन है। ईर्ष्या सर्ग में गर्भावस्था वाली श्रद्धा का रूप वर्णन आलस्य, दुर्बलता व बोझ की विशिष्ट व्यजना करता है।

स्वप्न सर्ग मे मनुष्य के नगर (city of man) का वर्णन है जिसका विस्तार संघर्ष सर्ग मे हुआ है। इस वर्णन के द्वारा प्रसाद ने आधुनिक युग, आधुनिक पूँजीवादी सभ्यता, तथा भौतिकवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि की आलोचना की है। इस वर्णन मे प्रसाद की विचारधारा (ideology) और उनके रोमाटिक जीवन बोध का पूरा कलादश कोण (kaleidescope) दिखलाई देता है। इसमे मनुष्यता को नग्नरूप, निर्बाधित अधिकार भोगने वाले स्वेच्छाचारी प्रशासक, सामूहिक चेतना का छिन्न भिन्न होना, आर्थिक शोषण और वर्ग सघर्ष, भौतिक हलचल और भौतिक विप्लव आदि का निरूपण विश्लेषण हुआ है। यहाँ वर्णन का प्रयोजन अधुनिक युग एव पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था का यथार्थवादी विश्लेषण करना है। इन्ही दो सर्गों मे जो युद्ध का वर्णन है उसमे भूतनाथ के ताडव तथा त्रस्त प्रकृति के निर्णय का, तानाशाह मनु और क्राति करती हुई जनता का, नरपशु के बलात्कार और राष्ट्रस्वामिनी स्वाधिकार का भी सयोग हुआ है। हमें यह समझ मे नही आता कि अधुनिक युग से इस 'युद्ध' मे कवि ने वैदिक अस्त्र शस्त्रो और पौराणिक देवशक्तियो का उपयोग करके कौन सा औचित्य प्रदर्शित किया है। यदि हम इस वर्णन के प्रसग मे कवि की विचारधारा को थोडी देर के लिये नजर अदाज कर दें तो निस्सदेह इसका फलक विराट है। कवि ने सामाजिक व्यवस्था और व्यक्ति चेतना की इसी विसगति को मानसलोक मे उभारने के लिये रहस्य सर्ग मे तात्रिक एवं यौगिक भूमि को अपना डाला है। इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान के इस कविप्रणीत त्रिलोक मे जो वर्णन हुए हैं उनमे एक ओर

तो मध्यकालीन रहस्यवाद है, तो दूसरी ओर आधुनिक समाज के सामूहिक मनुष्य की इच्छा क्रिया ज्ञान के बीच भिन्नता एवं विषमता। रहस्य सर्ग की इस फान्तासी में दार्शनिक विश्लेषण किया गया है। यहाँ ऐतिहासिक कथा लापता है। रहस्य सर्ग के नये त्रिपुर वर्णन का पूर्ववर्ती दर्शन सर्ग में वर्णित नटेश के आनन्द तांडव का दिवास्वप्न या विभ्रम (illusion) है। यह संघर्ष सर्ग के भीषण नरसहार के कंट्रास्ट मे आनन्द नृत्य की ब्रह्माण्ड लीला को प्रस्तुत करता है क्योंकि दोनों के मूल में शिव (भूतनाथ एवं नर्तित नटेश) ही हैं। एक विराट् ब्रह्माण्ड पटल (cosmic plane) में यह वर्णन *'कामायनी के काल एवं देश बोध को अनन्त और अखिल बना देता है।* संघर्ष सर्ग के युद्ध का यह दार्शनिकीकरण सृष्टि स्थिति-संहार लीला के परिवेश में हुआ है. और दोनों (युद्ध एवं आनन्द) का ही मूल ताल 'नृत्य' है।

इसी तरह चिंता सर्ग मे वर्णित प्रकृति-प्रलय नृत्य के कट्रास्ट में आनंद सर्ग मे वर्णित विश्व सुन्दरी मांसल प्रकृति का नृत्य (लास रास) भी दृष्टव्य है। आनंद सर्ग मे वर्णित हिमालय यात्रा भी वासना सर्ग मे वर्णित हिमालय यात्रा से भिन्न है। इसमे धार्मिक प्रतीकों की इतनी प्रचुरता है कि यह यात्रा अन्यापदेश (allegory) हो गई है। इसी तरह सघर्ष सर्ग के सारस्वत-प्रदेश के निर्माण के कट्रास्ट मे कवि ने आनंद सर्ग के मानस-प्रदेश की शैवाद्वैतवादी यूतोपिया (utopia) की रचना की है। इस आन्तरिक लोक की रचना में दार्शनिक मध्यकालीनतावाद (philosophical medieavalism) की ओर पलायन हुआ है। (इसका विस्तृत विवेचन 'विचारधारा तथा कल्पलोक का अभिधान' शीर्षक अध्याय में हुआ है)।

सारांश मे, इन वर्णनों मे कवि ने स्वप्न, पूर्व स्वप्नज्ञान, दिवास्वप्न, फान्तासी, और यूतोपिया आदि का शिल्पिक विन्यास किया है; इन वर्णनों में कवि का छायावादी वर्णन अभिव्यक्ति वाला काव्य सिद्धांत लक्षित हुआ है; इन वर्णनों में प्रकृत रस एवं मानवीय रस का समानांतर योग हुआ है; इन वर्णनों में विश्लेषण के कई प्रतिमान उभरे हैं; इन वर्णनो में नियति एवं नृत्य की गतियाँ (ताल) एवं लयें समन्वित हुई हैं; तथा इन वर्णनों के पटल कथा सृष्टि की सूक्ष्म अनुभूति या भाव का अभिधान करते हैं। प्रायः ये वर्णन ही कृति को महान काव्यत्व से मंडित करने वाले प्रतिमान हैं। वर्णनों की इस विविधा के कारण भी कवि को अपने कुछ सर्गों का नाम बदलना पड़ा है; यथा, यज्ञ सर्ग का नाम 'कर्म', इला सर्ग का नाम 'इड़ा', युद्ध सर्ग का नाम 'संघर्ष', स्वीकृति सर्ग का नाम 'निर्वेद' आदि ...

और इन सर्गों की लड़ी को जो रचनात्मक देन है, वह है कामायनी में विविध लोकों की परिकल्पना ।

कामायनी में स्वर्गलोक के अवसान के साथ-साथ देवसृष्टि की अपनी विलास मूलक-जीवन की दुनिया है । वासना सर्ग में प्रकृति का 'स्वप्न शासन' है और मनु की वासना की 'साधना का राज' है । लज्जा सर्ग मे नारी का अन्तर्लोक है, कर्म सर्ग मे गृहपति मनुष्य का पहला आदिम परिवार है और संघर्ष सर्ग मे मनुष्य का नगर है । दर्शन सर्ग मे नटेश्वर शिव का नृत्यलोक है; रहस्य सर्ग मे त्रिविध त्रिलोक है और आनंद सर्ग के अन्तर्गत कैलाश मे आनंद एवं समरसता वाला लोक है जहाँ प्रकृति तक सामरस्य निरत है । देवताओं की सृष्टि मे केंद्रोन्मुख सुख है; मनुष्यों के नगर मे विषम प्रभुत्व सुख है; त्रिलोक में इच्छा-क्रिया-ज्ञान की असम्पृक्तता है और कैलाश लोक मे आनंद है । इस भाँति इन चार कल्पलोकों (युतोपियाओ) मे हम सुख मे इच्छा की ओर, और इच्छा से आनंद की ओर प्रयाण करते हैं । संपूर्ण महाकाव्य का प्रतीकात्मक इतिहास यही है । इसमें कर्म और काम की शक्ति की साधना हुई है : वैदिक काम की, तथा शैव-शाक्त शक्ति की । इसीलिए संपूर्ण महाकाव्य का केंद्रीय दार्शनिक रचनागठन यज्ञ, शक्ति एवं भोग के त्रिभुज को एक कथाचक्र से घेर लेता है जिसके केंद्र मे मनु, मनुष्य, मन, मानव और मानवता पर्यवसित होती है । यह एक तत्त्वालोक जैसा ढाँचा है । इस ढाँचे पर कई प्रारूप (माडल) गढ़े गये हैं जिनमें वैदिक प्रारूप, आधुनिक प्रारूप तथा शैव प्रारूप तो बेहद स्पष्ट हैं । वैदिक प्रारूप के केन्द्र मे काम एवं कर्म है, आधुनिक प्रारूप के केंद्र में शक्ति, प्रकाश (चेतनता) एवं आनंद (समरसता) । आधुनिक प्रारूप में कवि ने सामूहिक जीवन के विघटन और संघर्ष को अंकित किया है जहाँ विज्ञान और प्रभुत्व, कर्म और वर्गशोषण, भौतिक सुविधा और आत्मिक शून्यता के भीषण परिणाम दिखाये गये हैं । इसकी तुलना मे शैव प्रारूप मे वैयक्तिक मोक्ष का श्रेय एवं प्रेम अभिव्यंजित हुआ है जहाँ सुख आनंद मे, ज्वाला प्रकाश में, चेतना चैतन्य में, तथा पुरुष-'पुरुष' शिव मे रूपांतरित हो गया है । रहस्य सर्ग में विश्व-व्यवस्था का सूक्ष्म दार्शनिक पुनर्निर्माण होता है, तो आनंद सर्ग में इस नई विश्व-रचना के अन्तर्गत अतश्चेतना का अखंड एवं चिरंतन उन्मेष होता है । इस तरह यज्ञ, शक्ति और भोग के बीजो से वैदिक, आधुनिक एवं शैव मॉडल अंकुरित हुए हैं । महाकाव्य के रचनागठन का मूल रहस्य यह है । इन्हीं मॉडलों के चहुँओर कवि ने कथा से अधिक वर्णनों को अनुस्यूत किया है (जिसे हम निरूपित कर चुके हैं); और इनके गहनतर स्तरो में दर्शनों का

स्पंदन होता है। पौथ माडल में नव सृष्टि का आनंद तांडव (दर्शन सर्ग), तंत्र एवं योग की उपाय-सिद्धियाँ (त्रिपुर सुन्दरी एवं समाधि—रहस्य सर्ग) तथा शैवाद्वैत आनंदवाद (शिवशक्ति का अद्वय तथा पुरुष प्रकृति का सामरस्य—आनंद सर्ग) की झांकियाँ मिलती हैं। आधुनिक माडल में व्यक्ति बनाम समूह, स्व-तंत्रता बनाम व्यवस्था, शोषण बनाम जनक्रांति की ज्वलंत चुनौतियाँ उठाई गई हैं जिनपर रोमांटिसिज्म तथा मार्क्सवाद की हल्की छायाएँ इंगित होती हैं। इसी के अंतर्गत बौद्धिक तर्क और आत्मचिंतन और आत्म निर्वाह की आधुनिक प्रवृत्ति स्पष्ट हुई है (इडा सर्ग); तथा इसी के दायरे में कर्म सर्ग में अन्वित मनु की संघर्ष प्रियता तथा समाज में जीवन को भोगने की तृष्णा शामिल की जा सकती है। वैदिक मॉडल में यज्ञ की ज्वाला (पाक यज्ञ) और कर्म-सुख (शक्ति, विजय, श्री, मंगल) का दर्शन विश्लेषित हुआ है। लेकिन इसी प्रारूप के अंतर्गत कवि ने (कर्म सर्ग में) यज्ञ बनाम हिंसा, सुख बनाम करुणा तथा भोग बनाम ज्ञान के दार्शनिक प्रश्न भी उठाये हैं। हाँ उनकी तर्क पद्धति पर क्रमशः बौद्ध, गांधी और वेदांत दर्शनों का भी प्रभाव प्रतीत होता है। वैदिक प्रारूप के अंतर्गत ही कवि ने महान् मेत्स-क्रांति भी उपस्थित की है। कवि के अनुसार बड़े बड़े यज्ञों का उल्लासपूर्ण आयोजन करने वाले वैदिक आर्य काम और आनंद और स्वत्व के उपासक थे। इसीलिए कवि ने काम की आनंद एवं शक्ति वाली सिद्धि पर श्रद्धा सर्ग से लेकर वासना सर्ग तक समाख्यान किया है। इसी वजह से 'कामायनी' के आरंभ में मृत्यु-नृत्य है, तथा अंत में जीवन-नृत्य।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रसाद ने महाकाव्य के रचनागठन में ये तीन प्रतीकात्मक सांस्कृतिक-दार्शनिक-सामाजिक प्रारूप (models) सम्प्रथित किये हैं। ये इस असफल 'महाकाव्य' का महान काव्यत्व है जिसकी वजह से ही वे एक साथ मनोभावों का उन्मीलन, मानवता के विकास का रूपक, मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास तथा मन के दोनों पक्षों का विभिन्न सांस्कृतिक पैटर्नों में संबंध-निर्देश प्रस्तुत कर सके। किन्तु हम कवि के इस चतुर्विध प्रस्तुतीकरण के दावे की सफलता और सामर्थ्य को नामंजूर करते हैं। कई कारण हम बता चुके हैं, और शेष कारणों का निदर्शन 'विचार धारा तथा कल्पलोक का अभि-धान' शीर्षक अध्याय में करेंगे।

● रचनागठन, माध्यम, वर्णन और प्रारूपों के संयोग से महाकाव्य में कुछ 'बीज बिंब' (generic images) उदित हुए हैं जो आर्केटाइपल बिंबों की गरिमा को छू लेते हैं। इनमें जातीय अतीत तथा सामूहिक अवचेतन का निजस्वी जाद छिपा हुआ है, जो चिरंतन तथा अभिनव है। कवि की काव्य

शक्ति में भी रूपांतरित होती है; तथा अन्त मे प्रकृति ही शक्ति, तथा शक्ति ही श्रद्धा हो जाती है। इस भांति शक्ति की प्रतीक शृंखला सारे महाकाव्य को ऊर्जा देती है। अततः नृत्य के बीज-बिंब मे भी हम कई उपछायाएँ पाते हैं। सारा काव्य नृत्य बिंब की गति एवं ताल से स्पंदित हो रहा है। चिंता सर्ग में प्रकृति का तांडवमय (भैरव) नृत्य है, वासना सर्ग मे अतिथि नारी के हृदय के आनन्द का रासनृत्य है; स्वप्न सर्ग मे भूतनाथ का संहार नृत्य है; दर्शन सर्ग में नटेश का सुन्दर आनन्द पूर्ण तांडव है; रहस्य सर्ग में महाकाल का विषम नृत्य है तथा आनन्द सर्ग में विश्वसुन्दरी प्रकृति का लास रास है। संपूर्ण महाकाव्य को ये छहों नृत्य एक नृत्य नाटिका (ballet) तथा संगीत नाटिका (opera) भी बना सकने में समर्थ हैं। किन्तु इन्होने संम्पूर्ण महाकाव्य को ताल और लय और गान, झकार और गूंज से आदोलित कर दिया है। इस कृति में यह एक महत्तम सौंदर्य बोधात्मक प्रयोग हुआ है जिसके अंतर्गत काव्य संगीत, नृत्य, चित्र, गान और नाट्य कलाओं का मेल कराके एक संश्लिष्ट काव्य (Total poetry) का मार्गान्वेषण हुआ है। अत. महान काव्य की इस महान खोज में महाकाव्य का रचना गठन भरभरा–सा गया है। इस तरह हमने 'कामायनी' के बीज-बिंबों के मिथकीय जादू की प्रारभिक थाह ली है। मिथक और स्वप्न की मीमांसा अन्यत्र की गई है।

● 'कामायनी' के रूप-स्वरूप के इस सर्वेक्षण में हमने यही पाया है कि इस कृति पर न तो एक संस्कृति की चेतन इकाई लागू की जा सकती है, और न ही एक युग (एपॉक) की इकाई। यह कृति कतिपय क्रमागत नियमों और बंधनों में नहीं जकडी है। अत. इसका रचनागठन महाकाव्य नही है। इसकी संदर्भात्मक इकाई 'चिरंतन मानवीय सत्य एव रमणीय सौंदर्य' वाली है। अत: इसमें 'महा' काव्य की अपेक्षा महत् या महान् काव्य का समाहार हुआ है। प्रसाद ने वेदना की अंतर्धारा को एक सौंदर्य तात्विक सिद्धांत (aesthetic principle) के रूप मे तो ग्रहण किया है। लेकिन आनन्दवादी होने के नाते त्रासदी की महानता को नहीं समझ सके। इसकी कीमत उन्हें चुकानी पडी। वे निर्वेद के बाद सामाजिक यथार्थता का अतिक्रमण करते हुए कृति को रहस्यात्मक त्रिपुर तथा कैलाश के आनंद लोक मे घसीट ले गये। यह उनके यूतोपियाई अंतर्विरोध की भी उपज है। एक बात और भी है। 'महा' तथा 'महत्' या 'महान्' का निश्चय करने वाले तत्व केवल कवि की प्रतिभा ही नहीं होते, बल्कि माध्यम (medium) एव विषय वस्तु ... भी होती हैं। प्रसाद ने एक लिरिकल विषयवस्तु को समाविष्ट

(C

१३। 'विचारधारा' (आइडिओलॉजी) तथा 'कल्पलोक' (यूटोपिया) का अभिधान

जयशंकर प्रसाद का एक [illegible] है। प्रसाद अर्थपूर्ण (रोमांटिक) इतिहासकार और दार्शनिक कवि हैं। वे प्रेम, सौंदर्य और प्रकृति के विकोण से इतिहास को अंकित करते हैं। अन्त में महाकाव्य में उन्होंने अपनी स्वप्न विचारधारा तथा कल्पलोक, दोनों का परिपूर्ण उद्घाटन किया है। 'कामायनी' में उनकी रचाविष्ट काव्यात्मक दर्शन नये नये बिंबों, प्रतीकों, रूपकात्मकों, स्वप्नों, दिवास्वप्नों की धारणाओं का अभिधान करता हुआ तांत्रिकों-योगियों वाला रहस्य-सा दार्शनिक काव्य हो गया है। प्रसाद की शैली से, पारलौकिकता से, सुन्दर रहस्यात्मकता से, और मानवता से भावुक तथा संवेदनशील सहृदयों को निरंतर आनंद विभोर किया है यह तो अनुचित नहीं है। लेकिन इस श्रद्धा और आदर से प्रसाद की मानस निर्मितियों (mental constructs), उनके मानसिक विकास (mental development) तथा ऐतिहासिक चेतना(historical consciousness) पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया है। 'कामायनी' इसका उदाहरण है। गजानन माधव मुक्तिबोध, तथा नगेन्द्र के ग्रंथों के अलावा इस महाकाव्य पर कोई विशेष गम्भीर काम नहीं हुआ। प्रसाद ने 'कामायनी' में 'अखिल मानव भावों के सत्य वाला चेतना का सुन्दर इतिहास' लिखा है (श्रद्धा सर्ग)। यही उनकी विचारधारा तथा उनके कल्पलोक का संसार है। छायावाद के अंतर्गत प्रसाद ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने काव्य की रसपूर्ण भावभूमि पर कायम रहकर राज्य, समाज, राष्ट्र, सामाजिक परिवर्तन, न्याय और कानून, मनुष्य और मानवतादि पर दार्शनिक विमर्श किया है, 'कामायनी' में। तो, कवि की यूतोपिया क्या है ? उनके किस प्रकार के

मस्तिष्क में कैसे इनका सरकार-नरिष्कार हुआ ? यह कौन है जो प्रसाद को अपने इद्रजाल में बांधे है ! इनके उत्तर हम देंगे, प्रसाद नहीं । प्रसाद ने इन सवालों को मनु की अन्तरात्मा में डालकर पूछा है और हम इनका उत्तर उनकी ही यूतोपिया के समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, सौंदर्यबोधशास्त्र, आदि के आधार पर देंगे।

यूतोपिया एक आदर्श राष्ट्रकुल है (जिसकी सत्ता कहीं नहीं है) जिसके नागरिक परिपूर्ण अवस्था में रहते हैं और उनमें मानवीय प्रकृति की कोई भी त्रुटियाँ या कमियाँ या दुर्बलताएँ नहीं होतीं । ऐसी अवस्था तो 'कामायनी' के अंतिम सर्ग के अंतिम पृष्ठों में ही है क्योंकि चिंता सर्ग से निर्वेद सर्ग तक मुख्यतः मनुष्यता की त्रुटियों तथा विषमताओं का ही अंकन हुआ है । लेकिन कल्पलोक में अन्याय, सामाजिक विषमता, राज्य-प्रकृति, सामाजिक यथार्थता आदि की भी तो आलोचना होती है । यह 'कामायनी' में है । इस तरह विचार धारा और कल्पलोक के विश्लेषण के लिए सम्पूर्ण महाकाव्य उपजीव्य है । समाजशास्त्र के आधार पर यूतोपियन चेतना का भी अनुशीलन होता है ताकि इस प्रकार की मानसिक वृत्ति के उद्भव का, इसके ऐतिहासिक विकास के प्रधान चरणों का, और इसकी क्रियाधर्मी महत्ता (फंक्शनल सिगनिफिकेंस) का पता लग सके । 'कामायनी' में मूलतः चिंता सर्ग से लेकर इडा सर्ग तक एक विशिष्ट सामाजिक विकास का निरूपण है; स्वप्न सर्ग और संघर्ष सर्ग में राज्य एवं राष्ट्र की आलोचना है, तथा दर्शन सर्ग से लेकर आनंद सर्ग तक एक परिपूर्ण मनुष्य रूप समाज की फान्तासी है । हम यह भी कह सकते हैं चिंता सर्ग से लेकर निर्वेद सर्ग तक सामाजिक यथार्थता एवं सामाजिक परिवर्तन के प्रति समाजदार्शनिक प्रसाद की विचारधारा पाते हैं, तथा दर्शन सर्ग से लेकर आनंद सर्ग तक कवि प्रसाद की वैयक्तिक यथार्थता तथा यूतोपियन मानस पाते हैं । इस चरण में हम बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी वाले शैवाद्वैतवादी दर्शन की आनंद धारा के अनुकूल एक पूर्ण आनंदरूप मनुष्य को, तथा कालिदासीय तपोवन-संस्कृति को आदर्शीकृत होते हुये पाते हैं । यूं लगता है कि इन तीन सर्गों में स्वयं प्रसाद ने कालिदास तथा अभिनव गुप्त की कलात्मक पुनर्व्याख्या की है । रहस्य सर्ग में हमें तन्त्रलोक की त्रिपुर सुन्दरी कामायनी मिलती है, तो आनंद सर्ग में 'लासरास' (पार्वती और राधा की लीला की कांत मैत्री कराने वाले) नृत्य में तल्लीन 'विश्व सुन्दरी' प्रकृति का दर्शन होता है । 'कामायनी' की यूतोपिया में ऐतिहासिक एवं रूपकात्मक विकास के क्रमिक चरणों की अधूरी छाया अवश्य झिलमिला उठती है । इसकी एक प्रधान क्रियाधर्मी महत्ता

[illegible] बौद्धिकतावादी [illegible] दर्शन के [illegible] (alienated) होकर [illegible] है। [illegible] के अतिरिक्त [illegible] ([illegible] 'एलियनेशन' [illegible]) मनु [illegible] तथा [illegible] है। [illegible] 'पूर्ण' हो जाते हैं। इसके बाद [illegible] और [illegible] का उद्धार करते हैं और [illegible] दोनों हो जाते हैं। इस तरह इस कृति में कवि [illegible] वैदिक वेदान्त, [illegible] और शैव दर्शन की धाराओं का [illegible] करते चले जाते हैं। [illegible] विवेचन करेंगे।

[illegible] के पहले हम प्रसाद के त्रिमुखी मानस का अनुमान कर लें जो [illegible] करता है। प्रसाद का मानस मिथ-कीय, ऐतिहासिक तथा रोमांटिक था। उनके इस त्रिमुखी मानस का ही विकास 'कामायनी' में 'यूटोपियन मानस' (utopian mind) में हुआ। उनका ऐतिहासिक मानस उनके ऐतिहासिक नाटकों में द्रष्टव्य है जो 'ध्रुवस्वामिनी' में आकर एक नैतिक-सामाजिक रूप का वरण कर लेता है। 'अजातशत्रु' में गौतम बुद्ध की, 'स्कंदगुप्त' में एक रोमांटिक प्रेमी की तथा 'चन्द्रगुप्त' में एक क्रांतिकारी जन नेता की अनुभूतियों वे कर चुके थे। प्रेम और द्वंद्व की भी कल्पनाएँ वे 'कामना' 'एकघूँट' तथा 'जनमेजय के नागयज्ञ' में कर चुके थे। 'स्वर्ग के खंडहरों में', 'इन्द्रजाल', 'आंधी' आदि के जीवन बोधों को वे कथा के सांचों में ढाल चुके थे। इस ऐतिहासिक पटल पर उन्होंने द्वंद्व, काम, दर्शन, संघर्ष और युद्ध के विषय में अपनी जीवन दृष्टियाँ निर्मित की थीं। 'कामायनी' में ये विचारधारा के रूप में गुम्फ-प्रगुंफ प्रगुम्फित हो गई। उनका रोमांटिक मानस नारी को दया, माया, ममता, मधुरिमा, समर्पण आदि के गुण सौभाग्य गुणों से मंडित कर चुका था जिसके मूल में काम और सौंदर्य, संस्कृति और कला अन्तर्निहित थी। 'चन्द्रगुप्त' में आकर तो सभी नायिकाएँ गान, और नृत्य और प्रणय की लीलाओं कलाओं में प्रवीण मिलती हैं। यही उपच्छाया उनकी 'कामायनी' में भी है। जिसमें श्रद्धा ललित कला का ज्ञान सीखने के लिये गन्धर्व देश तथा गांधार देश से होती हुई हिमालय के उत्तरगिरि में आ जाती है। मनु को वह काम एवं कर्म का सदेश देती है (दे० श्रद्धा सर्ग) और इस तरह कामकला विकसित होती है-'मूलशक्ति' के रूप में। ये सब समन्वय और सयोग उनके ऐतिहासिक मानस की वर्षों की उपलब्धियाँ हैं। 'कामायनी' में भी हम नृत्यों के कई नाट-कीय उत्सव पाते हैं। चिन्ता सर्ग में प्रकृति के पंचभूतों का भैरव तांडव है ;

पुरुष पुरातन' एवं स्वयं हिमालय हो जाता है । हम देखते हैं कि इन प्रकारों से मिथक के धार्मिक पक्ष भी सामाजिक हो जाया करते हैं । इन्हीं परिवर्तनों में रूपकत्व है और ऐसे परिवर्तनों में ही 'विचारधारा' (ideology) का रंग चढ़ जाता है जिसे स्वयं कवि ने महाकाव्य के आमुख में 'सामूहिक चेतना के दृढ़ और गहरे रंग की रेखायें' कहा है ।

लेकिन इस सामाजिकीकरण में ही कवि इन प्रतीकात्मक संविकल्पों तथा अन्तर्मुखी आह्लादों को समूहिक (collective) बनाता है । इससे ही उसके सामाजिक समूह की विचारधारा का उत्थान होता है । प्रसाद के आधुनिक एवं रोमांटिक मानस का उत्स यह है । कवि-रूप में वे प्रेम और सौंदर्य के उपासक थे; इतिहासकार के रूप में वे अतीत के स्वर्णयुगों की संस्कृति के यात्री थे; दार्शनिक रूप में वे आनन्दवादी और बौद्ध करुणा के मानने वाले थे; सामाजिक मनुष्य के रूप में वे वर्तमान सामाजिक जीवन को विषम, हिंसक क्रूर, पतित और शापित मानते थे (देखिये 'कंकाल' और 'तितली') तथा एक चिंतक रूप में सामाजिक प्रारब्ध में किसी भी परिवर्तन के लिये वे वैयक्तिक उत्तरदायित्व के समर्थक थे । इसीलिये वे 'कामायनी' में भी परिवर्तन प्रजा की 'शक्ति' नहीं करती, बल्कि चेतना (अन्तश्चेतना) की गहरी 'पूर्णकला' करती है । महाकाव्य में व्यवहार-प्रारूप (behavior pattern) की नैतिक सिद्धि हुई है, श्रद्धा द्वारा । इसमें इड़ा और जनता की क्रान्तिशक्ति आसुरी (किलाताकुल ही जन-नेतृत्व करते हैं) बना दी गई है जो हिंसा, विनाश और द्वंद्व को बढ़ाती है । अतः वे सामाजिक निर्वाण के बजाय कैलाश प्रतीक की तीर्थयात्रा द्वारा नैतिक निर्वाण का पंथ स्वीकार करते हैं । लगता है कि वे आद्यन्त सामाजिक घटनाओं का समाधान योग तथा भोग के सामंजस्य द्वारा कराते रहे हैं । उनके सभी चरित नायक ऐसे हैं । कामायनी में भी श्रद्धा तपस्वी मनु को हताश और क्लांत बताती है, और कहती है कि तपस्वी आकर्षण से हीन होकर आत्म-विस्तार नहीं कर सकता क्योंकि तप ही केवल जीवन सत्य नहीं है । यह तो क्षणिक दीन अवसाद है । इसीलिए वह काम का संदेश देती है जो मंडित और सर्ग-इच्छा का परिणाम होकर 'मूलशक्ति', तथा ईश का रहस्य वरदान है । इसीलिये मनु साधक योगी तथा आनन्द भोगी बनते हैं । इस तरह हम देखते है कि प्रसाद ने अपने मानस के अनुरूप ही सामाजिक प्रक्रिया को देखा है । यह ठीक है कि स्वच्छन्दतावादी होने के नाते उनके आधुनिक बोध में सामाजिक रूढ़ियाँ न होकर सामाजिक उन्मुक्ति (सोशल रिलीज) है काम तथा कर्म की; लेकिन इसके साथ ही उसमें जीवन की वास्तविक, कुरूप एवं यथार्थ धाराओं

(fantasies) एवं विरोधाभास (paradoxes) भरे हैं, विशेषतः निर्णयों और निर्माणों में। यह एक दुःखद परिणाम ही है कि संघर्ष सर्ग मे राज्य, राष्ट्र, प्रजा, जनता, क्रांति, भौतिक विज्ञान तक की महत् धारणाओं के ले आने के बाद प्रसाद एक अत्याचारी प्रजापति (tyrant king) को उखाड़ने के बाद एक साधक-वैरागी-योगी को प्रतिष्ठित कर देते हैं सन् १९३६ में! यह उनके यूतोपियन मस्तिष्क का ही प्रक्षेपण है कि उन पर दार्शनिक मध्यकालीनतावाद का पुरास्वप्न छाया रहा। पुनरुत्थानवादी यूतोपियाओं की यही नियति हो जाती है। टामस मूर की यूतोपिया (१५१६) में भी यही हुआ था। सम-सामयिक सामाजिक नर्ममानों (norms) तथा सस्थाओं के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण अक्सर निरपेक्ष हो जाया करता है।

'कामायनी' को चेतना के धरातल पर परखने पर भी विचित्र विकास मिलता है। चिन्ता, आशा, श्रद्धा और काम सर्ग मे मिथकों का उपयोग है जहाँ आशा सर्ग वाला अहं, बोध अनादि वासना, मूलशक्ति, और कुतूहल की अन्विति करता है। कर्म, ईर्ष्या, इड़ा स्वप्न, सघर्ष और कुछ अशों मे निर्वेद सर्ग मे यथार्थता का उपयोग है--जहा कर्म सर्ग से व्यक्ति स्वातंत्र्य के विरोधाभास उभरने लगते हैं, और सघर्ष सर्ग मे आधुनिक बोध की आत्मपरा-योकृत (Self-alienated) त्रासदी अनुभूत होती है। इसके उपरांत दर्शन, रहस्य और आनंद सर्ग मे फान्तासी-दिवास्वप्न तथा अंतर्लोक का उपयोग है जहाँ अंतर्मुखी चेतनमानवतावादी बोध आलोकित होता है। सारांश मे, हम मिथक से यथार्थता की ओर आते है, तथा तदुपरात स्वप्न मे आनदविभोर हो जाते है। कथासृष्टि प्रागैतिहासिक-वैदिक हिमालय से शुरू हो कर शैव हिमा-लय में समाप्त होती है। यह चेतना दार्शनिक विस्तार मे भी प्रतिफलित हुई है। दर्शन की दृष्टि से यह महाकाव्य 'मृत्यु के नृत्य' से शुरू होकर 'जीवन के नृत्य' मे पर्यवसित होता है। यह सही है कि वेदात की तरह इसमे जगत मिथ्या न होकर विषमता की पीडा से अस्त व्यस्त है और माया भ्रम न होकर एक शक्ति है, प्रकृति है। पहले सर्ग (चिंता) मे पचभूतो वाला मृत्यु नृत्य करती हुई प्रकृति और निष्क्रिय पुरुष है। इसमे पुरुष निष्क्रिय तथा प्रकृति सक्रिय है एक देवसृष्टि का सहार करने मे। सांख्य भूमिका का अगला विकास आशा सर्ग में होता है-जहा मनु को 'मैं हूँ' का बोध होता है। इसमें महत् कुतूहल होकर व्यक्त होता है। श्रद्धा सर्ग मे चेतना का विकास होता है-शक्ति और विजय के लिये। शक्ति काम की ओर विजय कर्म की। काम सर्ग में काम का इच्छा रूप मे उदय होता है जहां तृप्ति के साथ रति का योग है।

म और रति के मिलन से ही मूलशक्ति उठ खड़ी होती है। यह दार्शनिक
नीकरण मन (मनु) के साथ उनके श्रद्धा-मनोजन्मा संस्कार से होता है।
ज्जा सर्ग में नारी (रति) और अनुगामिनीता-सी लज्जा का अन्तर्साक्षात्कार
ता है। यहाँ रति नारी की ही मनोछाया है जो समर्पण की माया बुनती है।
स प्रकार से काम-वासना-लज्जा सर्ग की त्रयी सेक्स-मनोविज्ञान का एक ललित
ख्यापनन है-जिसमें पुरुष की कामवासना (काम), नारी पुरुष के प्रेमकला-
त्त संबंधों (वासना) तथा नारी को चेतन-अवचेतन अंतश्चेतना (लज्जा)
ा एक अभिनव कुमारसम्भव लिखा गया है (ये तीन सर्ग महाकाव्य के बिना
ी स्वतन्त्र और श्रेष्ठ हैं) कर्म सर्ग से कथा को व्यावहारिक समाजशास्त्र का
टनाक्रम मिलता है किन्तु इसमें यज्ञ बनाम कर्म (वैदिक दृष्टि), सुख बनाम
रुणा (बौद्ध दृष्टि) तथा भोग बनाम ज्ञान (शैव दृष्टि) भी अंतर्लीन हैं।
ड़ा सर्ग में बौद्धिक एवं वैज्ञानिक क्रांति का प्रसार एवं अंतर्मुखी आलोचना-
ील (*Critique*) है। संघर्ष सर्ग में पुनः दुर्निवार आधुनिक विषमताएँ
उभरी हैं। इसमें व्यक्ति बनाम समूह, स्वतंत्रता बनाम व्यवस्था, शोषण बनाम
विप्लव की आधुनिक सामाजिक प्रक्रियाएँ औद्योगिक क्रांति के पटल में भीषण
रूप से अंकित हुई हैं। वास्तव में कर्म सर्ग से कथा सृष्टि को जो घटना चक्र
मिलता है वह यज्ञ से नगरनिर्माण, संघर्ष, विप्लव, जनविद्रोह, युद्ध, पराजय
हिमालय-यात्रा आदि को समेटता हुआ दर्शन सर्ग तक आता है। दर्शन सर्ग
तक एक विशुद्ध (शैवाद्वैतवादी) अन्तर्लोक है। रहस्य सर्ग में पहले तो तीन
लोकों के गोलकों द्वारा इच्छा (वासना काम) क्रिया (संघर्ष) एवं ज्ञान (इड़ा)
की पूर्ववर्ती आलोचनाओं का तत्त्वगुंफित पुनराख्यान हुआ है, और इसके
बाद तंत्रसाधना की रंगत वाला मानसिक त्रैलोक्य का त्रिपुर सुन्दरी द्वारा
रसशास्त्रीय समन्वय हुआ है। अंतिम आनंद सर्ग में पुनः अकेला 'पुरुष'
(मनु) 'चेतना पुरुष पुरातन' हो जाता है। इसमें शिवतत्त्व की सिद्धि तथा
शिव-शक्ति का सामरस्य है। इसमें रहस्य सर्ग वाली त्रिपुर सुन्दरी श्रद्धा के
अतिरिक्त विश्वसुन्दरी प्रकृति है जो लासरास निरत है। यह एक फन्तासी
है। इस तरह अंतिम तीन सर्गों में यूतोपिया के विधानों, यथा दिवास्वप्न में
इच्छापूर्ति (दर्शन), त्रिकोण का प्रतीकात्मक समन्वय (रहस्य) और आनंद
की फन्तासी (आनंद) का व्यवहार हुआ है। चेतना के ये निवेश 'कामायनी'
की विचारधारा (ideology) का संधान करते हैं। अब हम यूतोपियन की
मानसिक निर्मितियों को प्राप्त करने की ओर अग्रसर हो सकते हैं। लेकिन
इसके पहले एक बात शेष रह जाती है। इतिहास-बोध की दृष्टि से हमने

[illegible] (despotism) [illegible]

[illegible] 'कामायनी' में [illegible] प्रकट किया गया है और मनु, विशेषतः [illegible] की प्रवृत्ति के [illegible] के प्रति [illegible] प्रस्तुत किया गया है। इस नज़रिये से [illegible] 'कामायनी' में सारस्वत देश के निर्माण के बाद मानव देश को वैसा ही सूना, बनाया गया है। इसी तरह से प्रवृत्ति और विवेक के समन्वय से [illegible] प्रवृत्ति और भाव का समन्वय हुआ है। प्रसाद का एक दूसरा स्तर भी है। वे निरंकुश और स्वच्छंद स्वतन्त्रता के प्रखर विरोधी के रूप में प्रकट होते हैं (संघर्ष सर्ग, कर्म सर्ग) लेकिन वे व्यवस्था (order) के भी उतने ही प्रबल समर्थक हैं। उनके समसमय के गुलाम भारत और उपनिवेशवादी व्यवस्था में निरंकुश प्रशासन का बोलबाला चल रहा था। अतः वैकुंठ को ढूँढने वाले मध्यकालीन भक्तों की तरह उन्होंने भी व्यक्ति के नियमन को ही व्यवस्था का पर्याय बना डाला। सामाजिक परिवर्तन के अगले चरण को वे प्रस्तुत नहीं कर पाते। इसलिए उनकी 'व्यवस्था' की परिकल्पना में मानसिक त्रिलोक का ऐक्यीकरण (समन्वय) ही श्रेय है। इसी तरह उनकी स्वतंत्रता की परिकल्पना में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का स्थान पुरुष (मानव) की मात्र नैतिक मुक्ति ले लेती है। अतएव नैतिक मुक्ति एवं त्रिलोक के समन्वय की निर्मितियों के द्वारा वे अपने समसमय की वहिर्गत यथार्थता का अतिक्रमण कर डालते हैं। 'कामायनी' का कैलाश समाज तथा समन्वित त्रिलोक ही प्रसाद की समाज तथा राज्य सम्बन्धी यूतोपिया का मॉडल बन जाते हैं जहाँ मानवीय अपूर्णताएँ विलुप्त हो जाती हैं। श्रद्धा सर्ग से मनु यथार्थता के नज़दीक आना शुरू करते हैं और दर्शन सर्ग से यथार्थता का अतिक्रमण करने लगते हैं। अंत में सम्पूर्ण 'कामायनी' का सूक्ष्म भाव या अनुभूति (रूपक, प्रतीक, अन्यापदेश रूप में) में अमूर्तीकरण एवं सारांशीकरण हो जाता है। मनु का पलायन यथार्थता से भागने से अधिक यथार्थता का अतिक्रमण है। समाज शास्त्रीय शब्दावली में प्रसाद के भोग-योग वादी बोध में पलायन का यह निजी हाशिया है। उनके बौद्धिक दृष्टिकोण में,

संस्कृति के आधार पर जो संभावित विभाजन किया है उसके अंतराल में मनु की चेतना भी झिलमिलाती है द्वंद्व-रूपों में। हम देखते हैं कि चिंता सर्ग से लेकर कर्म-सर्ग (और ईर्ष्या सर्ग के पूर्वार्ध) तक मनु को अतीत के प्रेतस्वप्न (nightmares) भय, मृत्यु, नियति के रूप में जकड़े रहते हैं। इसके बाद संघर्ष सर्ग तक वे वर्तमान मे कर्मलीन, संघर्षरत, द्वंद्वदग्ध रहते हैं। दर्शन से वे भविष्य (?) की ओर उन्मुख होते हैं जहाँ विश्रांति आनन्द एवं समरसता है। इड़ा सर्ग में पहुँचकर मनु अतीत से स्वयं को विच्छिन्न कर लेते हैं और संघर्ष सर्ग तक घोर वर्तमान मे मौजूद रहते हैं। ईर्ष्या सर्ग मे उनमें नवीनता के प्रति आज तक चला आ रहा कुतूहल लुप्त-सा हो जाता है। यही विलयन उन्हें आधुनिक ससार में ले आता है इसके साथ हमे यह भी नही भूल जाना चाहिये कि वासना सर्ग तक मनु को अकेलापन, अपरिचय (अजनबीपन), चिंता, आत्मपरायापन सालता रहता है। निश्चित ही सुदूर अतीत एवं मध्य-काल में उन्होंने आधुनिक बोध के भारतीय अस्तित्ववाद की यत्रणाओं का आत्म भोग किया था। जरा चिंता सर्ग वाले छै अस्तित्व-बिंबों को देखें : मृत्यु, प्रलय, अकेलापन, अस्तित्व, प्रकृति और नियति। हम जानते हैं कि प्रसाद के समय तक पश्चिमी अस्तित्ववाद का प्रभाव कतई नहीं था। प्रसाद रियर्केगार्द या सार्त्र से भी अपरिचित थे। वास्तव मे जब कभी भी अमूर्त तत्वों और मिथकीय चिरंतनता की भूमिका पर अन्वेषा होती है तब जो महत्तम समस्या उभरती है, वह है अस्मिता के बोध तथा खोज की। 'कामायनी' अस्तित्ववादी बोध का पहला हिन्दी महाकाव्य भी है।

इसके बाद यूटोपियन की मानसिक निर्मितियाँ स्पष्ट हो सकती हैं।

यूटोपिया में कई मानसिक निर्मितियाँ और प्रतीकात्मक सन्निवेश हैं जिनका संस्कार तथा परिष्कार हुआ है। यूटोपिया-अध्येता समाजशास्त्री दार्शनिकों (—मानहाइम, रसेल, रिचर्ड गाबर आदि-) ने यूटोपियन मस्तिष्क की मानसिक निर्मितियों (mental constryct) के दो भेद हैं —विचारधारात्मक (ideological) तथा कल्पलोकात्मक (utopian)। विचारधारात्मक निर्मितियों का प्रयोजन मौजूद यथार्थता को कायम रखने के लिये प्रशंसा करना अथवा उसे बचाने के लिये निन्दा करना होता है। कल्पलोकात्मक निर्मितियाँ उस यथार्थता के परिवर्तन के हेतु सहायक क्रियाशीलता को प्रेरित करती है यदि वह परिवर्तन उनके आदर्शों के अनुरूप हो। इस प्रक्रिया में यूटोपिया-बोध के अंतर्गत ये निर्मितियाँ यथार्थता का अतिक्रमण (transcend) करती हैं। इस तरह ये सामाजिक प्रेरणा तथा सामाजिक परिवर्तन के बीच सार्थपूल बन जाती हैं।

उनके सहसा सबद्ध होने पर ज्वाला जागती है। लेकिन यह ज्वाला सुनहरी (रवि सोम चद्र के सयोग वाली) अर्थात् हिरण्यगर्भा है और शक्ति की तरग है। इस ज्वाला ने स्वप्न, स्वाप तथा जागरण का भस्म करके इच्छा क्रियाज्ञान को मिलाकर लय कर दिया। इसके बाद ज्वाला बुझ जाती है। ज्वाला के बुझने पर यज्ञ और उसके साथ सलग्न वासना, विलासिता, हिंसा, सुख, प्रभुत्व आदि के व्यापार भी समाप्त हो जाते हैं। ज्वाला के बुझने पर प्रलय लहरें कोमल नर्तन करती हुई लहरें हो जाती है और धर्म का प्रतिनिधि वृषभ (पशु) सोमलता से आवृत्त हो जाता है। पहले सोम सुख और वासना की ओर ले जाता था। अब वह आनन्द और मोद की ओर ले जाता है, इला को बांध ले जाता है तथा काम को पूर्णकाम कर देता है।

ज्वाला-यज्ञ-सोम की त्रयी के साथ हम महाकाव्य मे प्रकृति को भी गुंथा हुआ पाते हैं। साख्य तथा शैवाद्वैत मे प्रकृति और पुरुष के सबध हैं। कवि ने अपने जीवन दर्शन के अनुरूप प्रकृति और नियति, प्रकृति और ससृति, तथा प्रकृति और प्रलय के सयोग भी किये हैं। ये कवि के चिरतन प्रारब्ध बोध (sense of eternal destiny) के द्योतक है जिन्हें वह सामाजिक प्रारब्ध से भी महान्, रहस्यमय, आकर्षणमय और कुतूहलमय मानता है। उनका यह दृष्टिकोण सारी 'कामायनी' की मिथकीय घटनाओं को एक अद्भुतवृत्त से बांधता है तथा तर्कशीलता और सामाजिक विवेक को हीन बना देता है। 'कामायनी' मे प्रकृति भी सहार स्थिति और सृष्टि के नियतिचक्र से गुंथी है और सत की सृष्टि का स्पदन अर्थात् उन्मेष प्रसरण एव निमेष भी है। इस तरह प्रकृति-नियति-ससृति का चक्र भी एक ही केन्द्र पर दूसरा वृत्त बनाता है। कथाचक्र के केन्द्र मनु के चारो ओर ये दोनो वृत्त घूमते हैं। इसका स्पष्टीकरण रहस्य सर्ग मे कर्मचक्र और नियतिचक्र के उल्लेख द्वारा हो जाता है। इन वृत्त छल्लो की वजह से भी मनु कभी पुरुष हो जाते हैं, कभी पुरुष तत्त्व, कभी चेतन पुरुष पुरातन, तथा प्रकृति कभी माया हो जाती है, कभी शक्ति, कभी श्रद्धा, कभी लासराम निरत मानसी-गौरी और कभी विश्वसुन्दरी। चिंता सर्ग की प्रकृति पचभूत के भैरव मिश्रण से भीषण ताडव करती है; देवता पराजित हो जाते हैं। लेकिन प्रकृति दुर्जेय रहती है। हाँ देवताओ के स्वायत्त दभ के कारण प्रकृति पदतल मे विनम्र एव विश्रान्त अवश्य हो जाती है। आशा सर्ग मे प्रकृति प्रबुद्ध होती है और आवरण मुक्त हो जाती है। काम सर्ग मे अनादि वासना रति अव्यक्त प्रकृति के उन्मीलन की चाह रखती है और प्रकृति लज्जा मे ही माधव का हास फूटता है। माधव का

नियति की महत्त्व भूमिका रही है जो घटनाओं की अनिवार्यता है। मनु का भागना मनु की इच्छा न होकर नियति है। कर्म सर्ग में मनु श्रद्धा को त्याग देते हैं क्योंकि वे संघर्ष करना चाहते हैं, नवीनता को प्राप्त करना चाहते हैं तथा परिवर्तन के बौद्धिक रिश्तों को भी समझना चाहते हैं। सारस्वत नगर में हमें पलायनवादी मनु के स्थान पर 'चिरमुक्त पुरुष' की धारणा मिलती है जो चिर बंधनहीन है और हंसा की गति से बढ़ता है। सारस्वत नगर से मनु द्वंद्व और संघर्ष में पराजित होकर 'भागते' हैं (किन्तु) हिमालय में पुनश्च चिंता करने के लिये। यहाँ प्रसाद का बौद्धिक दृष्टिकोण मनु को बैठा देता है अर्थात् वे हिमालय के शांत तपोवन में रम जाते हैं। रहस्य सर्ग में वे सामाजिक प्रक्रियाओं के विषय में त्रिलोकी के माध्यम से (श्रद्धा मुख से) निर्णयों को प्राप्त करते हैं। इस तरह प्रसाद ही मनु के माध्यम से व्यक्ति-स्वातंत्र्य वाले सहिष्णु स्वच्छंदतावाद की स्वयमेव आलोचना करते हैं, और स्वयं ही लोकोत्तर आत्ममुक्ति का व्यक्तिवादी दर्शन पुनश्च स्वीकार कर लेते हैं। इसका समाधान वे एक सामाजिक कमी, के रूप में करने में अक्षम भी थे। अतः उनका व्यक्तिवादी समाधान एक मध्यकालीन तांत्रिक रूपक से प्रेरित रोमांटिक अंतर्लोक है। उनके मनु को सामाजिक यथार्थता इंद्रजाल-सी लगती है (ले चल इस छाया के बाहर मुझको दे न यहाँ रहने; या, भाग अरे मनु! इन्द्रजाल से कितनी व्यथा न झेली है?)।

● विचारधारात्मक रूप से मनु यथार्थता का प्रत्यक्षीकरण कैसे करते हैं, इसे कई प्रतीकात्मक संविकल्पों के द्वारा बेहद सफाई के साथ समझा जा सकता है। हम पहले 'ज्वाला' को लेते हैं। देवसृष्टि के समय पशुयज्ञों की पूर्णाहुति की ज्वाला उन्हें याद आती है मानो वही आज जलनिधि में प्रलय लहरों की माला बन गई है (चिंता सर्ग); आशा सर्ग में सागर तीर उनका अग्निहोत्र जलने लगता है जो कि कर्म सर्ग में फिर से वेदी पर ज्वाला की फेरी बनता है अर्थात् मनु भी पशु बलि करते हैं। मनु यज्ञ करते हैं, यज्ञ के बाद सोम का मादक पान करते हैं और सोमपान के बाद वे अंतर्दाह में जलने लगते हैं। धूम कुंडल में उन्हें ज्वाला का 'वही' भयानक नाच दिखता है। श्रद्धा भी सोमपान करती है और उसके भी अधर मन की ज्वाला से सूखने लगते हैं। यही ज्वाला (ईर्ष्या सर्ग में) मनु की जलन बन जाती है। संघर्ष सर्ग में इडा मनु को याद दिलाती है कि जनता से उनका युद्ध एक सामूहिक बलि है (—नर बलि) जो 'उसी' धधकती वेदी ज्वाला की प्रतिध्वनि है। रहस्य सर्ग में जब श्रद्धा की स्मिति महाज्योति रेखा-सी त्रिकोण में दौड़ती है तब

प्रसाद का निजी बोध है जिसके अनुसार देव-असफलताएं विषमता से उत्पन्न हुई थीं और भावी मानव-सफलताएं अर्थात् विजयें समन्वय (समरसता) पर आश्रित हैं। यह सफलता कर्म के भोग तथा भोग के कर्म से प्राप्त होगी क्योंकि यह जड़ (मनुष्य) का चेतन आनन्द है (श्रद्धा सर्ग)। इस कर्म और भोग अतर-आरोपमय धारण यज्ञ के द्वारा न होकर कर्म एवं काम के द्वारा होगा। प्रसाद ने 'मूलशक्ति' की धारणा प्रस्तुत की है जो प्रेमकला है (यह लीला जिसकी विकस चली वह मूलशक्ति थी प्रेमकला) अर्थात् जिसमें रति एवं काम का मिलन है। मनु काम को जगत की ज्वालाओं का मूल अभिशाप समझते हैं क्योंकि देवों के कामातिचार के कारण ही प्रलय हुआ। लेकिन श्रद्धा काम को ईश का रहस्य-वरदान तथा विश्व का अभिराम उन्मीलन बताती है। मनु को अब भान होता है कि अनादि वासना तो मधुर प्राकृतिक भूख समान है और रतिरूप में वह आकर्षण बन हँसती है तथा तरल वासना हो जाती है (*जो आकर्षण बन हँसती थी रति थी अनादि वासना वही, जाग उठी थी तरल वासना मिली रही मादकता*)। काम तृष्णा विकसित करता है तो रति तृप्ति दिखाती है। इस तरह प्रसाद ने रति-काम युग्म से मूलशक्ति की धारणा का विकास किया। कालिदास ने भी काम और रति, दोनों को 'आतुर उत्कंठित' कहा है (मालवि० ३ १५.)। प्रसाद ने काम सर्ग में इसी की अपनी व्याख्या की है। रति की लीला को पुरुष एवं नारी में स्पष्ट करने के लिये काम वासना और लज्जा सर्गों का विन्यास हुआ है। प्रसाद का प्रेमकला का भाष्य यही है जो उनके समूर्त कृतित्व में ज्योतिर्मान है। इस तरह शक्ति के लावण्ययुक्त रूप के आयाम की व्याख्या यह है। किन्तु दूसरे आयाम का आरम्भ इस अमोघ शक्ति के मनुवत से होता है (इडा सर्ग 'संकुचित असीम अमोघ शक्ति')। इस आयाम में मूल-शक्ति के स्थान पर 'महाशक्ति' की धारणा मिलती है जिसे राग, नियति, विद्या, कला और काल के पाँच कंचुक घेर लेते हैं। यह शैवाद्वैतवादी प्रतीक धारणा तो है किन्तु अस्तित्ववादी मनुष्य की यंत्रणा का निर्धारण भी कर देती है। इसका स्पष्टीकरण राजनीतिक दर्शन के रूप में होता है (स्वप्न, संघर्ष सर्ग)। पूर्ववर्ती मनोदार्शनिक आयाम के [illegible] हो जाते हैं। इस शक्ति को [illegible] (उमा) के [illegible]। वे [illegible] सर्ग की [illegible] में [illegible] विक्षोभ तथा [illegible] के कारण इस [illegible] (किरात आकृति) के हाथ सौंप देते हैं और इस [illegible] सामाजिक प्रारब्ध को [illegible] कर देते हैं। [illegible]

सरस कुतूहल (लज्जा सर्ग में) सारी प्रकृति में अपनी छाया-माया के साथ फैलता हुआ नारी को कुतूहल से बाँध लेता है। इसके पहले आशा सर्ग में प्रकृति संसृति का संदेश देते हुए श्रद्धा कह चुकी होती है कि प्रकृति के यौवन का शृंगार बासी फूल नही करते। अतः मनु को सुमन (पंचपुष्पबाण) के सुन्दर खेल खेलने चाहिए। संघर्ष सर्ग में जब भीषण नरसंहार की भूमिका प्रस्तुत होती है तब मनु दुर्धर्ष प्रकृति तक के कंपन को अपने हृदय मंथन से क्षुद्र बताते हैं। मनु को पुनः जलप्लावन वाली प्रकृति याद आती है। इस सर्ग में प्रकृति के साथ मनुष्य के निरतंर संघर्ष के प्राणिशास्त्रीय दृष्टिकोण को स्वीकार किया गया है (प्रकृति संग संघर्ष निरतर अब कैसा डर ?)। इड़ा मनु से कहती है कि उसने ही उन्हें प्रकृति के संग संघर्ष सिखाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुनः सारस्वत नगर में जो एक रुद्र तांडव हुआ उसमे प्रकृति तथा प्रजा एक तरफ होगई, तथा मनु अकेले पड़ गये (तो फिर मैं हूँ आज अकेला जीवन रण मे)। आनन्द सर्ग में आकर चिंता सर्ग के ठीक कंट्रास्ट में चारों ओर व्याप्त लासरास में मासल होकर कल्याणी प्रकृति हँस उठती है, पुरुष पुरातन की तरह हिमालय पर्वत स्पंदित हो उठता है। प्रलय वाली लहरें कोमल नर्तन करने लगती हैं, चिंता सर्ग वाले हिमालय के जड़ हिमखण्ड रश्मिमंडित हो जाते हैं तथा विश्वसुन्दरी प्रकृति संसृतिधर्मा हो जाती है। अलौकिक परिवेश वाली यह प्रकृति मानों काम सर्ग की मानवीय परिवेश वाली प्रकृति की ही दिव्य उदात्त परिणति है।

कवि ने प्रकृति की 'शक्ति' को भी विचारधारात्मक रूप दिये हैं। आनंद सर्ग मे प्रकृति शिव की 'शक्ति' हो जाती है। यही विमर्श'शक्ति' शोभा भी है और कर्म भी। यह शक्ति का अन्तर्मुखी आह्लाद (subjective ecstasy) वाला आयाम है। इसका दूसरा आयाम यज्ञ की ज्वाला से जुड़ा है जो, सारस्वत नगर मे(यज्ञ के सामूहिक बलि मे बदलते ही) शक्ति-संघर्ष हो उठता है। यदि यज्ञज्वाला से वासना और सुख और प्रभुत्व उत्पन्न होते हैं तो संघर्ष ज्वाला से श्रम और यंत्र और शोषण फैलता है। हमें इन दोनों आयामो के अन्तरों का ध्यान पूरे महाकाव्य में रखना चाहिये, अन्यथा अर्थान्तिरन्यास हो सकता है। प्रसाद के वर्गीय विरोधाभासो को स्पष्ट करने के लिये 'शक्ति' की धारणा महत्त्वपूर्ण है। वे शक्ति का लावण्ययुक्त (graceful) रूप और अतिचारी स्वरूप, दोनों ही प्रस्तुत करते हैं। ये देवताओं को प्रकृति का शक्तिचिन्ह मानते हैं जो विराट् के सामने निबल रहे (आशा सर्ग)। मानव संदर्भ मे वे शक्ति और विजय का योग करते हैं (शक्तिशाली हो विजयी बनो)। शक्ति के बिखरे और व्यस्त विद्युत्कणों का समन्वय करके मानवता विजयिनी हो सकती है। यह

मानसिक विकास, उनकी जीवनधारा, उनके यूतोपियन मस्तिष्क और सामाजिक यथार्थता के प्रति उनका बौद्धिक दृष्टिकोण भी उद्घाटित होता है। उन्होंने स्वयं भी इच्छा, क्रिया और ज्ञान को क्रमश, कर्म सर्ग, संघर्ष सर्ग और इडा सर्ग में आधुनिक पटल पर उभारा है और स्वयं ही रहस्य सर्ग के तीनों पृथक लोकों में इनकी प्रतीकात्मक-दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक अंतर्मुखी कटु आलोचना की है। इस प्रयणुक भाति मे कुतूहल के रूप में स्वयं उन्होंने ही अपनी बौद्धिक एवं भावात्मक जिज्ञासा को भी प्रकाशित किया है। लेकिन उनका यह प्रकाश दीप्त रोमांटिक और अंतर्मुखी है। अलबत्ता हम इसे घोर अहं पूजक व्यक्तिवादी दीपक नहीं कह सकते। ये आलोचनाएँ उनकी यूतोपिया की भूमिकाएँ हैं।

पहले कुतूहल को लें। आशा सर्ग में विराट् को देखकर उनमें कुतूहल परक 'कौन' प्रश्न उठता है और वे ब्रह्माण्ड को गति देने वाले, प्रलय-सा भ्रूभंग करने वाले को जानना चाहते हैं जिसका सधान नक्षत्र और विद्युत्कण करते हैं, जिसके रस से वनस्पति सिंचती है, जो अनंत रमणीय है। अर्थात वह 'कौन' विराट् सत्य, शिव और सुन्दर है। इसी के साथ साथ उनमें अस्तित्वबोध—"मैं हूँ!" जाग्रत होता है। आशा सर्ग का यह उन्मेष श्रद्धात्मक है। इसका दूसरा चरण वासना सर्ग में है जिसमें मनु सुन्दरी श्रद्धा के आकर्षण को 'क्यों' 'क्या' 'कहीं' 'कैसा' 'कौन' आदि के प्रश्नों से अनिर्वचनीय अनुभव के रूप में प्रकट करते हैं। यह कौतूहल विराट् का न होकर रति का है। श्रद्धा के प्रति उनका यह कुतूहल प्रेमकला का भाष्य है (कौन—गा रहा यह सुन्दर संगीत? कुतूहल रह न सका फिर मौन)। यहीं काम-रहस्य लज्जा सर्ग में उन्मिषित होता है जब रतिरूपा नारी लज्जा से पूछती है कि तुम कौन बढ़ती आ रही हो? तुम कौन हो जो हृदय की सारी स्वच्छन्दता छीन रही हो? स्वप्न सर्ग में प्रजापति बनने के बाद मनु इडा से भी (श्रद्धा से जैसा) प्रश्न पूछते हैं कि तुम किसकी हो और ये जन किसके हैं? यह एक महान् सामाजिक और राष्ट्रीय प्रश्न है जो निरकुश, प्रभुत्वदभ में चूर और नियामक प्रजापति के अतिचार को अपने अंतर्विरोधों के साथ प्रस्तुत करता है। यही कुतूहल (रहस्य सर्ग) मनु की अंतर्यात्रा में पुनः उत्पन्न होता है जब वे श्रद्धा से पूछते हैं कि अब मुझको कहाँ ले चली हो? त्रिदिक् विश्व के आलोक बिंदुओं को देखकर वे श्रद्धा से पुनः पूछते हैं कि मुझे बताओ कि ये कौन नये ग्रह हैं और मैं किस लोक के बीच पहुँचा हूँ? हम देखते हैं कि प्रसाद ने यह सारी प्रश्नमाला मनु के मुख से ही मुखर की है और ये सभी दर्शनशास्त्र की तात्त्विक समस्याएँ हैं। प्रसाद

रात्मक परिस्थिति है। शायद उनके अनुसार सारस्वत नगर की भौतिक सभ्यता तथा वैज्ञानिक संस्कृति में शक्ति के विद्युत्कण पुनः बिखर गये हैं। ठीक हो सकता है। किन्तु मानवता की विजय इसके सामूहिक कल्याणकारी अधिकार द्वारा ही हो सकती है। प्रसाद इस शक्ति के समन्वय का आधुनिक प्रारूप (model) नहीं दे पाते। काम और रति के मनोदार्शनिक समन्वय वाला प्रारूप सामूहिक क्रियात्मकता और सामूहिक परिवर्तन में लागू नहीं हो सकता था। इसे वे जानते थे। अतः यूतोपिया 'कामायनी' में यह शक्ति मरण पर्व से आगे जीवन पर्व का उत्सव नहीं मना पाती। अतः निर्वेद सर्ग में हम देखते हैं कि युद्ध और संहार और खण्डहर पर बैठी हुई इड़ा ग्लानि से भरी हुई अग्निशिखा-सी धधक रही है। यही नहीं, आधुनिक युग, आधुनिकनगर तथा आधुनिक राज्य और समाज भी अतीत एवं सपना बन जाते हैं। (आज पड़ा है वह (मनु) मुमूर्ष-सा वह अतीत सब सपना था)। क्या सामाजिक प्रक्रिया के प्रति प्रसाद का बौद्धिक दृष्टिकोण यह है? अतएव उनके सामने कोई दूसरा विकल्प ही नहीं है कि वे पुनः चेतन पुरुष पुरातन की ओर लौटकर उसे निज शक्ति से तरंगायित करें और एक अमूर्त विश्वचेतना को पुनः पूर्णकाम की प्रतिमा बना दें। उन्होंने यही किया। विश्वकमल का तान्त्रिक [illegible] शक्ति के अणु-अणु को आनन्द सुधा के रस में छलका दिया। 'कामायनी' के अन्त में हम यह भी पाते हैं कि हिमालय के पास तपोवन अर्थात् एक मध्यकालीन दार्शनिक लोक में जगत की ज्वाला से अति झुलसकर मनु आ जाते हैं। उनके पीछे उनकी अर्धांगिनी भी जगमंगल के लिये आती हैं। ये युगल अब वहीं बैठे-बैठे समृति की सेवा करते हैं (जगत से बाहर आकर!)। वहीं मन की प्यास बुझानेवाला मानसरोवर है। सारस्वत नगर के निवासी अपने स्वर्ग, रिक्त जीवन घट को पीयूष-जल से भरने यहाँ आते हैं। कवि के इस पारदर्शी विरोधाभास पर किसी टिप्पणी की अपेक्षा ही क्या है!

६ आमुख में इस से प्रसाद का मत है कि मनुष्य की इच्छाएँ पूरी हों। इसके लिए इच्छा, क्रिया और ज्ञान का समन्वय आवश्यक है तथा समाज में सुख और हिंसा और [illegible] और [illegible] की विषमता का न होना भी अनिवार्य है। वे चाहते हैं कि [illegible] की तरह एक ऐसा समाज हो जहाँ कोई [illegible] न हो, जहाँ [illegible] हो, जहाँ [illegible] हो, जहाँ शोषण न हो और जहाँ [illegible] करना [illegible] जाए। यह सर्वथा उचित है। [illegible] क्या? कैसे? कहाँ? किस प्रकार? किस 'मानवता' के लिये ये आदर्श हैं? [illegible]

प्रसाद की कल्पना वाला ब्रह्माण्ड विराट्, अनन्त रमणीय और एक मधु
[illegible] है। यह ब्रह्माण्ड रहस्यात्मक, धार्मिक और औपनिषदिक है
भौतिकता और बौद्धिकता, समाज और राष्ट्र इसके विरोध रूप हैं। तब
यह विश्व बड़ा ही अपूर्ण तथा अन्तर्मुखी हो जाता है। कवि विश्व को ए
गतिशील परिवर्तन मानता है जो सदा बदलता रहता है। उन्मुक्त विश्व व
पूर्ण एवं व्यापक सत्ता सर्वत्र परिव्याप्त होता चला जाता है। इस विश्व और
में अभिसार है, और अभिसार से प्यार भरा है। लेकिन जनता के मन में त
यह पुकार-सी फैल गई है कि विश्व एक नियम से बँधा है। लेकिन मनु
(मनु) मानता है कि वह स्वयं चिर-बंधनहीन है और महानाश वाले सृ
के बीच के एक क्षण में भी वह अपनी चेतना की तुष्टि मांगता है (संघ
सर्ग)। इस तरह विश्व की यह धारणा अवैज्ञानिक है, तथा इसके अनुसा
जनता बनाम नियामक, मेरा बनाम समाज परस्पर विरोधी हो जाते हैं। इ
परिणय उन्मुक्त विश्व में व्यक्ति (मनु) परतंत्र नहीं रहना चाहता अर्था
वह समाज का विनाश करके भी अपने क्षण की तुष्टि करने को स्वतंत्र है
श्रद्धा के अनुसार एक ओर यह जग उदार है तो दूसरी ओर तम का नी
आवरण ओढ़े हुए सोता है। इसमें बुद्धि के अनुशासन वाला परिवर्तन आवश
है (दर्शन) क्योंकि यह (इड़ा) जीवन की अधानुरक्ति है। यही विश
कर्मलोक है (रहस्य सर्ग)।

(ii) और मनुष्य क्या है ?

इड़ा कहती है कि यह मनुष्य-आकार अपने आवरणों से निर्मित चेतन

से इसका समाधान तो अन्तर्लोक में कर दिया है लेकिन बहिर्लोक में इन्हें विषम, भीषण, क्रूर, द्वंद्वपूर्ण तथा भेदपूर्ण सिद्ध किया है। यहाँ सामाजिक प्रक्रिया तथा मानसिक विराग, सामाजिक यथार्थता तथा अंतर्मुखी आह्लाद, सामाजिक धारा तथा मनोविज्ञान मस्तिष्क के बीच भयंकर खाई है। कवि की सामाजिक पथ याची पकड़ बिसरती जाती है। और यह यथार्थता का वांछित अतिक्रमण करने को विचारधारा की सार्थकता का आत्मतर्क करके आत्मदलन कर डालता है। इसीलिए कवि प्रकृति (सामाजिक परियोजनाओं के हेतु) और नियति (उनके प्रारम्भ के हेतु) के प्रघातों में तेजी से दौड़ने लगता है। इन कुतूहल-प्रश्नों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का ब्रह्माण्ड (यूनिवर्स) न्यूटन, कोप-निकस, मार्क्स, डार्विन और आइंस्टाइन वाला न होकर रहस्यात्मक (त्रिपुर), धार्मिक (आनंद कैलाश) और सौंदर्य तात्त्विक (विश्वसुन्दरी प्रकृति) है। इसीलिये उसे फान्तासियों की रचना के मौके मिले और वह कथासृष्टि में रूपक तत्त्व (बीच बीच में) संलग्न करता चला गया।

यज्ञ के बजाय काम एवं कर्म की ओर प्रयाण वस्तुतः एक दूसरी संस्कृति में अनुप्रवेश है जिसमें इच्छा प्रधान है। यूँ 'कामायनी' मे इच्छा ही केंद्र है (श्रद्धा रूप मे)। इसका परिणाम ही श्रेय है (काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम)। यही नई इच्छा मनु को श्रद्धा की ओर खींचती लाती है; और यही इच्छा तत्व रूप में शब्द-स्पर्श-रस-रूप–गंध का पान है। यह मादकता की लहर उठाती है; यह जीवन की मध्यभूमि के रूप में नव रसधारा से सिंचित होती है। इस लोक में सस्मृति भावचक्र चलाती है और यहाँ मनो–मय विश्व है। इसी लोक की भावभूमि पुण्य तथा पाप की जननी है। सर्ग इच्छा से लेकर रहस्य-लोक तक की इच्छा के निरूपण मे इच्छा के प्रति प्रसाद उदार रहे है। कर्म लोक मे उन्होने कर्म सर्ग तथा संघर्ष सर्ग की सारतात्त्विक दु खद आलोचना की है। यह कर्म देश धुएँ की धारा-सा मलिन है और यहाँ सारस्वत नगर के अनुभवों का संचित क्रियातत्र है जो यंत्र (machine) के निर्माण द्वारा श्रम, कोलाहल, पीड़न, प्रवर्तन फैलाता है। इस लोक मे गर्व और हिंसा है। यहाँ भौतिक जीवन की हलचल है। यहाँ असंतोष, तृष्णा, वासना है और यहाँ संघर्ष विफलता वाला कोलाहल का राज्य है। यहाँ भूख से पद्‌दलित लोग हैं और शासनादेशघोषणाएँ उन पर विजयों
हैं। यहाँ वैभव और यश की लालसा के कारण
मे यज्ञ के कारण जो सुख और हिंसा
सर्ग में जो भौतिक हलचल और

और राज्य से प्राप्त सम्पत्ती निर्णय भी अप्रामाणिक हैं। मनु मे रोमांटिक शासक पुकार उठता है कि प्रजापति होकर भी क्या मेरी अभिलाषा अपूर्ण रहे? क्या मैं कुछ भी न पाऊँ? क्या मुझे केवल ज्ञान देकर इड़ा जीवित रह सकती है? (संघर्ष)। इड़ा बताती है कि विश्व एक लय है, नियम से बँधा है। यह ठीक कहती है। लेकिन मनु पूछते हैं कि मैं उसमे लीन क्यों होऊँ? इसमे क्या सुख धरा है? मनु कहते हैं कि मैं शासक हूँ। मैं चिर स्वतंत्र हूँ, मेरा अधिकार इड़ारानी पर भी असीम होना चाहिए। भले ही सकल व्यवस्था अतल मे अभी डूब जाय। इस व्याख्या मे प्रसाद बहिर्गत यथार्थता अर्थात् अपने समय के उपनिवेशवादी सामन्तवादी भारत मे शोषक, प्रजापति (जमींदार) शासक (अंग्रेज) के चरित्र को प्रतिनिधित्व देते हैं। लेकिन सामन्तवादी मनु एक असामाजिक अहदभी, तथा निजी अधिकारों के भोगने वाले तानाशाह हैं। इसलिए ऐसे मनु के द्वारा ध्वस्त सारस्वत नगर पददलित जनता की असफलता नहीं होगा। इन राजनैतिक संवादों के बाद नृपतंत्रवादी मनु को निर्वासित कराकर प्रसाद को पुनः इड़ा और जनता के बीच के प्रजातंत्र की नींव रखना चाहिये थी। ये असफलतायें, अव्यवस्था सत्ताधारी मनु की है। इस मनु के अनुभव मे उपनिवेशवादी सामन्तवादी गुलाम राष्ट्र तथा राज्य के अनुभवों का आक्षेप है। अत. प्रसाद एक स्वतंत्र, प्रजातांत्रिक क्रांतिकारी समाज-परिवर्तन और आधुनिक गणतंत्र का मॉडल नहीं दे पाये।

(iii) प्रजा क्या है?

स्वप्न और संघर्ष सर्ग मे प्रजा आती है। प्राचीन भारतीय गणतन्त्रों की दुनिया में मुग्ध रहने वाले प्रसाद प्रजा को क्रांति की वरदान बेला मे भी राष्ट्र स्वामिनी की आज्ञाकारिणी बनाये रखते हैं। जो राजद्वार पर अवरुद्ध खड़ी है। वे प्रजा और पुत्र और जनता के बीच भेद नहीं कर पाते क्योंकि इन दोनों सर्गों मे ये दोनों राजनीतिक धारणाएँ घुल मिल गई हैं। यही मेल सारस्वत नगर मे हुआ है जिसका शासक आतंक से शासन करने वाला और प्रजापति है, और जिसकी व्यवस्था शोषण तथा सुख पर टिकी है। 'कामायनी' की समाप्ति के दौरान (१९२६–३५) प्रजा जनता भी हो चली थी। कवि ने इसका थोड़ा अनुभव करके लिखा भी, 'प्रजा आज कुछ और सोचती अब तक जो अविरुद्ध रही'। यह फ्रांसीसी क्रांति या बोल्शेविक क्रांति की रक्तरंजित छाया से झिलमिल स्थिति भी हो सकती है। कवि अपने इतिहास ज्ञान के अन्वेषण द्वारा औद्योगिक समाज के चार स्तंभों का जिक्र भी करता है। इस समाज मे विज्ञानमयी अभिलाषा तेजगति से विकास करती है, जीवन

की असीम (आर्थिक) आशाएँ बढ़ती जाती हैं, सत्ताधारी वर्ग अधिकारों की सृष्टि करके उनकी मोहमयी माया में बँधता है तथा कभी न जुड़ने वाली वर्गों की खाई फैलाती जाती है। मनु राजद्वार बंद करवाते हैं। वे राष्ट्र स्वामिनी (राष्ट्रशक्ति) का अपहरण करके उसका भोग करना चाहते हैं। अतः वे भीषण नरसंहार करते हैं। देश में यही परिस्थिति 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' 'गोदान' में भी प्रतिबिंबित हो रही थी। संवेदनशील प्रसाद भी इससे अछूते नहीं थे। 'तितली' में वे भी वर्तमान के अभाव का साक्षात्कार करते हैं। लेकिन वे आगे न चलकर रोमानी या मध्यकालीन यूतोपियाओं में भटक जाते हैं।

(iv) शासक ने क्या किया और जनता ने क्या पाया ?

शासक ने राष्ट्रस्वामिनी और जनपद कल्याणी राष्ट्र शक्ति (इड़ा) के साथ बलात्कार किया लेकिन शासक राजदंड लेकर यह भी बताता है कि उसने क्या किया : शासक ने तृप्तिकर सकल सुख के साधन बताये, श्रमविभाजन किया और वर्ग बनाये; शासक जनता को पशु-अवस्था और वन्य-समाज से निकालकर पूँजीवादी समाज में ले आया है (संघर्ष) । इन दावों का उत्तर जनता देती है : तुमने हमें अधिक संचयवाला लोभ सिखाया (निजी-संपत्ति); तुमने यंत्रों से हमारी प्रकृति-शक्ति छीन ली तथा शोषण करके जीवनी को जर्जर बना दिया; तुमने हमारे बल पर जिंदा रह कर भी इड़ा पर यह अत्याचार किया है। अतः ओ यायावर ! अब तुम्हारा निस्तार कहाँ है ? अकेले (alienated) मनु जनता से भयंकर युद्ध करते हैं; जनता को 'प्रकृति के पुतलों का भीषण दल' कहते है। भीषण जनसंहार होता है। जनता यह प्राप्त करती है। प्रसाद का राजनीतिक विश्लेषण इस स्थल में सर्वोच्च शिखर पर है। किन्तु इड़ा के बजाय आकुलि-किलात को नेता बनाकर वे अनजाने ही भयंकर प्रतिक्रियावादी और जनविरोधी वृत्ति का मेल भी कर [illegible] हैं। यह प्रसाद का

[illegible] की [illegible] आलोचना है। इस [illegible] की [illegible]
[illegible] से जीवन का [illegible] करता है जिससे दोषा-[illegible] [illegible] हैं, [illegible]
[illegible] दोष [illegible] जाता है, [illegible] उत्पन्न होते हैं, [illegible] का विरोध [illegible]
, [illegible] दलित [illegible] दिखलाती है और मनुष्य [illegible]
[illegible] बन जाता है (इडा)। इस [illegible] में वर्गों की खाई बढ़ती जाती है।
[illegible] इस [illegible] में इडा, काम तथा श्रद्धा की भूमिका की व्याख्या करता है।
[illegible] एक हाथ में जीवन-रस सार भरा कर्मकलश लिये है तथा दूसरे हाथ में
[विच]ारों के नभ को थामे है। यह राष्ट्रस्वामिनी तथा जनपद कल्याणी है किन्तु
[इस]के जनपद में लोग लालसा घूंट पिये हुए मग्न हैं (दर्शन)। श्रद्धा के अनुसार
[इ]डा जीवन की अधानुरक्ति है और उसने चेतना का भौतिक विभाग करके जग
को बांट दिया। इडा के प्रतीक को यदि हम इन [illegible] के परिवेश में स्वीकार
[क]र लें तो यह कार्य इडा का न होकर इडा को वश में करने वाले शासक और
[सुख]भोगी मनु का है। इस प्रजातन्त्र में श्रद्धा की भूमिका —कवि के अनुसार
एक विस्मृति है। सुख साधन में बौराने वाले वृद्ध धागों के लिए मनु उस पूर्ण
आत्मविश्वास रूप को भूल जाते हैं। विशुद्ध विश्वासमयी श्रद्धा इस सृष्टि
का मूल है। मनु को श्रद्धा ने रम्य सौंदर्य तथा परहित का बोध दिया है, उनके
पशु हृदय को संवेदनमय बनाया है तथा जीवन की चिर अतृप्ति में सतोष भरा
है। यही श्रद्धा अत में निर्विकार मानुमूर्ति हो जाती है (यह मानुमूर्ति है निर्विकार)। सबके अंत में वह पूर्णकाम की प्रतिमा हो जाती है (आनंद)। वस्तुतः
यह उनका इच्छा का नारीत्वकरण है।

(vi) इस प्रजातन्त्र में नियम (Law) और न्याय (justice) का क्या स्वरूप है?

प्रसाद ने 'कामायनी' में नियम के विचार को नियति और सृष्टि से जोड़ा है। उनका यह नियम नियति के रूप ब्रह्माण्ड पर भी लागू होता है (वरुण आदि सब घूमते रहे हैं किसके शासन में अम्लान)। लेकिन जहाँ शक्ति है वहाँ सीमा के टूटने की अराजकतावादी प्रवृत्ति है। प्रसाद नियति और श्रद्धा की बात कोमल मैत्री कराने की ओर भी उन्मुख होते हैं। लेकिन नियति एक अलौकिक न्यायविधान के रूप में (सघर्ष सर्ग में) प्रकृति के द्वारा मनु के सारस्वत-नगर के नियम-तंत्र को भी तहस नहस कर देती है। इस तरह एक 'चिरतन व्यवस्था' दुबारा कायम हो जाती है। प्रसाद को इस नियति नियम की धारणा में सामाजिक न्याय के बजाय दैवी न्याय पर ज्यादा आस्था है। प्रसाद की न्याय-सबधी धारणा नैतिक आदर्श (ethical ideal) की अनुगामिनी

कवि ने आत्मभूमि में प्रकृति (Nature) और चितिमय चैतन्य (Psychic spirit) का सामरस्य कल्पित किया है। इसकी तुलना में हम रूसो के मॉडल का समीकरण याद कर सकते है *जिसमें प्रकृति और तर्कशील* (Reaeson) का समझौता है। प्रसाद अतीत के क्लासिकल पुनरुत्थान की चेतना मे रोम-रोम पगे थे और इसके साथ ही वे सामाजिक जीवन की व्यापक धाराओ से असंपृक्त से रहते थे। इसलिये उनमे अंतर्मुखी मानवतावाद का जो विकास हुआ उसमें भी प्रचलित सामाजिक नर्ममानों (norms) तथा संस्थाओं (inrstitutions) के प्रति विरक्ति, असफलता तथा तटस्थता की भावना है। अतः वे 'कामायनी' में सामाजिक अन्याय की कठोर आलोचना करते हैं लेकिन सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन की भूमिका नितांत छोडते चले जाते हैं। *'कामायनी' में सामाजिक उथल-पुथल को उन्होने केवल* 'भौतिक हलचल' और 'भौतिक विप्लव' कहा है (इड़ा : 'भौतिक हलचल से यह चंचल हो उठा देश ही था मेरा' संघर्ष: 'भौतिक विप्लव देख विकल वे थे घबराये')। *सामाजिक (या भौतिक) उथलपुथल का जन्म आर्थिक और राजनीतिक* पुनराभियोजनों (रि-एडजस्टमेंट्स) की उपज है। अपने देश मे उस समय के सत्याग्रह आंदोलन, असहयोग, सांप्रदायिक दंगे आदि इसकी अभिव्यक्ति थे। यूरोप में इनकी परिणति बूर्ज्वा क्रांतियों में हुई। गाधी ने ,*सामाजिक शक्तियों* को नैतिक अग्नि में तपाने के लिये तोलसतोय के आदर्श को ग्रहण किया और नौतिक अग्नि में तपी हुई इन सामाजिक शक्तियो (अहिंसा, सत्य, त्याग, ट्रस्टीशिप आदि) के द्वारा '*रामराज्य*' के रूप में एक ऐसी आदर्श समाज की यूतोपिया की घोषणा की जिसमें रूसो, रस्किन, थोरों के मॉडल भी भारतीय मिथकीय यूतोपिया को समसामयिक अर्थ देने के लिये आरोपित किये गये थे। प्रेमचन्द भी 'सेवासदन', 'कर्मभूमि' 'रंगभूमि'; 'प्रेमाश्रम' आदि मे ऐसी सामाजिक यूतोपियाएँ रच रहे थे। अतः प्रसाद की 'कामायनी' में भी हम सामाजिक यथार्थता का एक बेहद अतिक्रमण करने वाला बोध पाते हैं क्योंकि उनका मानस त्रिमुखी था। वे बारहवी-तेरहवी शताब्दी के दर्शनो की भावुक, रहस्यमय और मधुमय भ्रांतियों (इंद्रजाल) के प्रति प्रीत रहे और उनके *माध्यमों से ही निष्क्रिय तथा अमूर्त आदर्श प्राप्त करते रहे*। हम इस बौद्धिक दृष्टिकोण को 'दार्शनिक मध्यकालीनतावाद' कह चुके हैं। यथार्थता के आग्रहण की यही विधि प्रसाद ने अंगीकार की। 'कामायनी' मे यह पूर्वाग्रह है। उन्होंने स्वप्न तथा संघर्ष सर्ग की बहिर्गत यथार्थता के तत्त्वों के साथ अयथार्थ अंतर्मुखी एवं प्रतीकात्मक इच्छापूर्ति (wishfulfilment) के वियायनों

स्थिति का चुनाव है। प्रसाद इसे ही मानवता के रूप में क्यों मनवाते हैं ? ऐसे चुनाव के तदनुकूल परिणाम स्वप्न एवं संघर्ष में हुए। अतः प्रसाद की विचारधारात्मक स्थिति यह है।

अतएव श्रद्धा की गृह की पहली नन्हीं-सी सुकुमार यूतोपिया बनती है जिसमें मंगल मय प्रकृति और सरल पशु पालन वाला गोप (pastoral) बोध है। तकली कातना, ऊन और कपास के वस्त्र बनाना, प्रकृति के अंतर में पवित्र जीवन बिताना, संघर्षों और हिंसा से दूर रहना आदि का वरण करने वाली इस पहली गृह-यूतोपिया में समाज और राज्य के आयाम कट गये हैं। इसी प्रसाद-स्वर्ग की परिणति आनंद सर्ग में अंतर्भूमि में होती है और वहाँ भी समाज तथा राज्य के आयाम विलुप्त हैं। बीच का ऐतिहासिक चरण कवि के बौद्धिक दृष्टिकोण के अनुसार—'भ्रान्त अर्थों' की अतिरजना है। इसी वजह से कर्म सर्ग से संघर्ष सर्ग के दौरान हम पाक यज्ञ से पशु यज्ञ की ओर, काम से वासना और प्रभुत्व की ओर, ज्ञान से सत्य विकृति की ओरअन्तर्मुख से अभाव-परक अतर्दाह की ओर, बलि से युद्ध की ओर, धर्म से भौतिक विप्लव की ओर, सोमप्रेरित अमरता के बजाय सुखभोगी क्षणिकता की ओर, सामूहिक कल्याण भावना से व्यक्ति विकास की ओर, श्रद्धा से छल की ओर, तथा अतीत से वर्तमान की ओर आते हैं। कर्म का प्रतीकीकरण 'ज्वाला' में होता है (यह हम निरूपित कर चुके हैं)। वैदिक, मध्यकालीन और मनोवैज्ञानिक प्रतीकों को प्रसाद आधुनिक समाज की नूतनाओं पर लागू करते है । मनु को तो इन प्रतीकों के अर्थों में नवीनता या कुतूहल नहीं मिलता लेकिन प्रसाद इसमें विषमता मानते हैं। प्रसाद इन प्रतीकों का ही दार्शनिक नवोन्मेष करना चाहते हैं। अत. संस्कृति के अर्थों की एक महाभ्रांति उद्भूत होती है। हम यहाँ एक प्रश्न पूछ सकते हैं कि मनुष्य और व्यक्ति के बीच प्रसाद स्पष्ट क्यों नहीं हो सके ? वे मनुष्य मनु को हमेशा दार्शनिक पुरुष या पूँजीवादी तानाशाह व्यक्ति के स्वरूपों से घुला मिला देते हैं। रूपक के निर्वाह का यह शिल्पगत जोखिम उनकी मानसिक–निर्मितियों को बहुत उद्भ्रांत कर देता है। इस कृति में उनकी 'मनुष्य की धारणा' बेहद वायवी अमूर्त, तथा सूक्ष्म है । इतिहास क्रम में, दर्शन में, और आधुनिक युग में मनुष्य की अनेक विविध तथा विरोधाभासपूर्ण धारणाएँ रही हैं। क्या मनुष्य मात्र एक घटना है जो आदिम जलप्लावन में बच गया है अथवा वह कोई महान् सृष्टि-यज्ञ की योजना भी रखता है ? क्या वह निर्माता है अथवा केवल नियति की इच्छा का पुतला ? क्या वह अस्तित्वतः स्वतन्त्र पैदा हुआ है अथवा कई जंजीरों में जकड़ा हुआ पैदा हुआ है जिसका भाग्य कर्म-

सिद्धांत तय कर चुका है ? क्या वह इन बंधनों से अपने ही प्रयत्नों से मुक्त हो सकता है अथवा सामूहिक सहकारिता के द्वारा ? क्या वह मूलतः अच्छा है अथवा मूलतः बुरा ? क्या वह अराजकता एवं हिंसा में ही रहता है अथवा विश्वास और नवजागरण भी प्राप्त करता है ? अंततः सवाल यह है कि मनुष्य की तात्त्विक प्रकृति आध्यात्मिक है अथवा भौतिक ? मानवीय व्यक्तित्व के कई पक्ष हैं (जैसे कि प्रसाद का ही मानस त्रिगुणी है)। वह अच्छा, बुरा क्रूर, उदार, सृजनात्मक, ध्वंसात्मक, संकीर्ण, विशाल दृष्टि वाला आदि आदि, है। अर्थात् वह एक द्वंद्वात्मक इकाई है। उसका अस्तित्वत्व (existence) और सत्त्व (essence), उसकी भूत (matter) तथा चेतना(spirit) की सामाजिक संभावनाओं के अनुरूप विकसित होती हैं । प्रसाद ने भौतिकतावादी आधुनिक मनुष्य को उच्चतर मूल्यों से विहीन बना दिया है (संघर्ष, स्वप्न) । यह उनका एकांगी निर्णय है। एक आध्यात्मिकवादी मनुष्य की रचना में वे यथार्थ से भी 'भागे' हैं। यह उनकी दूसरी एकांगिता है । मनुष्य की अपनी आवश्यकताओं का बोध स्वतंत्रता है। भौतिक जगत (प्रकृति) के जीतने के बाद यह गुणात्मक रूप से विकसित भी होता है। किन्तु चेतना, मूल्यों और सांस्कृतिक जीवन का यह विकास पुनः प्रकृति के संपर्क से ही होता है। प्रसाद यह विकास भौतिकता से असंपृक्त स्वीकार करते हैं। यह आदर्शवादी प्रसाद का प्रबल अंतर्विरोध है । मनु के गृह-संस्था के बाद नगर-व्यवस्था में आने पर समाज में कई सामाजिक परिवर्तन होते हैं । शासन और उत्पादन की समस्याओं का सामना करने पर इड़ा, जनता और मनु में भी कई परिवर्तन होते हैं। अतएव सामाजिक परिवर्तन दोनों प्रकारों से होता है । यह परिवर्तन हमारी उन धारणाओं द्वारा तेज गति प्राप्त करता है जो हमारे 'अभिलषित' समाज की धारणाओं से जुड़ी होती हैं। यह परिवर्तन शासित जनता और सत्ता-धारी शासक वर्ग के संघर्षों के द्वारा भी होता है। प्रसाद दर्शन वर्ग से अभिलषित समाज के प्रति अपनी मान्यताओं को ही पुष्पित करते चलते हैं, तथा सामाजिक संस्थाओं (social institutions) के नियमों (कानून) को भुला

निक मनुष्य की कलिकालबोधमयी आलोचना पाते हैं। सभी मध्यकालीन यूतोपियाओं के रचना-शिल्प के अन्तर्गत पहले कलिकाल के वर्ण के रूप में समसमय का त्रास, पाप नरक और यथार्थ अंकित किया जाता है; तदुपरान्त बाद में वैकुंठ, स्वर्ग, कैलाश आदि का स्वप्न एवं आदर्श एवं पुरुषार्थ आलोकित किया जाता है। रहस्य सर्ग में तीनों लोकों का अलग-अलग वर्णन बहुत कुछ इसी ढंग का है जिसमें कहीं-कहीं शैवाद्वैत, योग, शाक्त, माहेश्वर, और हैरण्यगर्भ दर्शनों के प्रतीक एक साथ आये हैं। और वे भ्रान्तियाँ पैदा करते हैं। धर्मप्रवण विद्वानों के लिये यह सर्गांश बौद्धिक एवं आध्यात्मिक रस्साकशी का विशेष मसाला देता है जिससे कि वे प्रसाद के दार्शनिक विचारों की पूँछ की खोलनी खिताब छानबीन करने में जुटे रहते हैं और कला मथन का अमृत कलश अज्ञात देवता उठा ले जाते हैं। वस्तुतः सांख्य दर्शन मूलशक्ति 'प्रकृति' है, माहेश्वर में 'शक्ति' हैरण्यगर्भ और वैदिक में यज्ञ। रहस्य सर्ग के अन्त में प्रसाद ने श्रद्धा के द्वारा त्रिपुरदाह तथा त्रिपुरमिलन कराया है। यह उनकी अपनी कल्पना है। किन्तु इसकी प्रक्रिया तन्त्र और योग के स्तरों से ग्रहण की गई है। यह प्रक्रिया रसशास्त्रानुमोदित अधिक है, मन्त्रशास्त्रानुमोदित कम। यह ठीक है कि इस अंश में 'बिंदु', 'नाद', 'काम', 'कला' के प्रतीक भी चालू हैं किन्तु कवि का सोचा काव्यात्मक है। हम इसे प्रसाद की कलात्मक चतुरता और सामाजिक असमर्थता मानते हैं कि इस सर्ग में आकर वे भ्रान्तियों, रहस्यों, मध्यकालीन दर्शनों में एक विकसित होते हुए सामूहिक बोध को बहका देते हैं। देशकाल के अंश के विलुप्त होने के बाद (रहस्य सर्ग में) निराधार महादेश में नवीन सचेतनता उदित होती है। इस तरह हिमालय में साधना पथ कायम हो जाता है जहाँ वरदान्विता श्रद्धा आती तथा साधक मनु पीते हैं। विरक्ति की

'कामायनी' मे वे सर्ग सर्ग तक ऐतिहासिक एवं रूपकात्मक विकास को दिग्दर्शित कराने मे काल तथा दिशा (देश) के प्रत्यक्षत: ऐतिहासिक अक्ष में ही गतिशील रहे थे। देश और काल के अक्ष को तोडकर प्रसाद ने 'कामायनी' महल को एक स्वर्ग का खँडहर बना दिया। नचिकेता की तरह हम यही पूँछ सकते हैं कि प्रसाद का यह आनन्द और आलोकधर्मा देशकालविमुक्त गणतंत्र (Republic) क्या प्राप्त करेगा ? उसकी सामाजिक सार्थकता और मानवीय आदर्श क्या हैं ? उसके रचनाकार प्रसाद के आदर्श क्या है ? क्या सभी मनुष्यों को साधक अथवा निष्क्रिय तपोवनवासी हो जाना चाहिए ? यह तो प्लेटो की दार्शनिक-नृपति (philosopher-king) की धारणा अथवा कौटिल्य की जनपदकल्याण कर्ता चक्रवर्ती सम्राट की धारणा से भी पिछड जाने वाली धारणा है।

इस तरह प्रसाद ने देवसृष्टि, गृह-सृष्टि, सारस्वत नगर, त्रिलोकैक्य तथा कैलाश लोक के माध्यम से पाँच प्रकार की यूतोपियाओ के मॉडल पेश किये हैं जिनमे से केवल अंतिम दो को उन्होने श्रेय एवं श्रेष्ठ माना है। यही उनकी 'कामायनी'-यूतोपिया का रचना गठन (structure) तथा उनके यूतोपियन मानस का रूपाकार (pattern) है।

हमने प्रसाद के अंतर्विरोधो तथा 'कामायनी' के विरोधाभासो को स्पष्ट किया है। कवि और कृति, दोनो के शुक्ल पक्ष एव श्याम पक्ष को उभार कर हमने यही कोशिश की है कि हमारे प्रतिमान आधुनिक और खरे हों। प्रसाद के यूतोपियन मानस की पुनररचना करने मे तथा यूतोपिया के रूपकात्मक एव ऐतिहासिक चरणो के विकास का अनुसधान करने मे हमने स्वत: ही कई विचार-केन्द्र प्रस्फुटित होते हुए पाये हैं। हमने 'कामायनी' का विशुद्ध सौंदर्यतात्विक अनुशीलन नही किया है क्योकि यह इस मोनोग्राफ की परिधि के बाहर का क्षेत्र है। इस गवेषणा मे हमने यही पाया है कि प्रसाद ने 'कामायनी' मे भौतिक जगत की अत्याचार एव आतंकपूर्ण प्रथाओं (यज्ञ, देवा-विलास), तथा परिपाटीबद्ध सामाजिक अत्याचारो (Customary tyranniers), दोनो के विरुद्ध आवाज उठाई है। लेकिन दोनो के विपरीत उन्होने एक स्वप्न, एक स्वर्ग की रचना की है। यहा चरित्र तथा घटनाएँ, दोनों ही बीचबीच मे अन्यापदेश (allegory) हो जाते हैं। यहाँ मध्ययुगीन घृणा एव अपराध की दृष्टि मे आधुनिक सभ्यता की विवेचना की गई है; यौन (sex) का विवेचन पाप के बजाय भोग मे केन्द्रित है। यह एक विद्रोही स्वच्छन्दतावाद का परिणाम है। यूतोपिया मे नारीत्व संबंधी कुछ धारणाएँ उभरी हैं,

संयुक्त सारस्वत नगर की यूतोपिया में सारस्वत नगर की राष्ट्रस्वामिनी और जनपद कल्याणी इड़ा है तो देशकालकर्मव्यक्तिवियुक्त त्रिकोण में मनु की अंतर्भूमि की यूतोपिया की नेत्री त्रिपुरसुन्दरी और कामकला श्रद्धा है। ये दोनों ही नारी-शक्तियाँ हैं, लेकिन इस सर्ग से दोनों ही एक ही श्रेय की ओर चलती हैं। इन दोनों यूतोपियाओं में 'शक्ति' केन्द्र में हैं: —पहली में भौतिक शक्ति, और दूसरी में श्रद्धा शक्ति!

अन्तिम यूतोपिया कैलाश और मनु–श्रद्धा के तपोवन वाली है। अब कर्म सर्ग की गृह-यूतोपिया का विश्व-तपोवन में रूपांतरण हो जाता है। इसमें केन्द्र आनन्द है। यहाँ कैलाश में आनंद एवं समरसता का लोक है जहाँ—त्रिपुर सुन्दरी के बाद–विश्वसुन्दरी प्रकृति लासरासनिरत है। यहाँ मनुष्य या व्यक्ति के निर्वाण के बजाय जीवन के मोक्ष या निर्वाण को प्रस्तुत किया गया है। आनंद, समरसता, चेतना और आलोक इन चार दार्शनिक प्रतीक-स्तंभों पर इस यूतोपिया का महल खड़ा है। इसका देश कैलाश (हिमालय) है तथा काल महाकाल। प्रसाद ने कालिदासीय तपोवन संस्कृति के ऊपर अभिनवगुप्तीय रसालौकिकता का आरोप करके इस यूतोपिया का नित्य निवेश किया है। इसमें रहस्य सर्ग के पूर्वार्ध वाले शाप-ताप-पाप नहीं है, अहंता लुप्त है सत्य सतत है, सुन्दर चिर है, मानव निर्विकार है, *द्वैत समाप्त हो गया है*, सदाशिव तत्त्व (आशा सर्ग के 'मैं हूँ' के स्थान पर 'यह मैं हूँ' का बोध) का उन्मेष है, और *कामायनी* जगत की मंगल कामना है। यहाँ कल्याणी प्रकृति हँस उठती है, चारों ओर चेतना विलास करती है और अखंड घना आनन्द छा जाता है। साराश में, यहाँ आकर बौद्धिक खोज के बजाय तीर्थदर्शन हो जाता है, कार्य के बजाय समाधि ले ली जाती है, और सामाजिक रिनैंसाँ के बजाय जीवन्मुक्ति आदर्श बन जाती है। प्रसाद ने श्रद्धा के माध्यम से तपस्वी के नेता होने का विरोध किया था, इड़ा के माध्यम से आतंक फैलाने वाले तानाशाह को समाप्त किया था लेकिन यहाँ एक साधक-वैरागी को बैठाया गया है संघर्षसर्ग की सामाजिक बूर्ज्वा क्रांति के बाद। क्या बीसवीं शती के चौथे दशक में इस तरह की क्रांति के बाद विश्व में कहीं भी ऐसा हुआ है। प्रसाद की आनंद लोक की इस लीला में सामाजिक शक्तियाँ कहाँ चली जाती हैं? इस अन्तिम स्वप्निल-स्वर्गिक यूतोपिया की क्रियाधर्मी महत्ता (Functional Significance) क्या है? एंगेल्स ने कई यूतोपियन समाजवादियों की आलोचना की है क्योंकि वे निष्क्रिय एवं अमूर्त आदर्शों में सामाजिक चेतना को भटकाते हैं। प्रसाद तो मानवतावादी हैं। उनमें यह बहाव एक महत्तम त्रासदी है क्योंकि

living) प्राप्त करते हैं। क्या मौर्यों, गुप्तों और हर्षवर्धन की व्याख्याओं एवं संस्कृत के कई कवियों तथा ग्रंथों के साक्षात्कारों के बाद प्रसाद की उपलब्धि यही होनी चाहिए थी? जैविक अस्तित्व (organic existence) के बजाय प्रतीकात्मक जीवन (symbolic living) पर आग्रह? तब तो हमें कहना पड़ेगा कि प्रसाद ऐतिहासिक बोध को सामाजिक विज्ञानों से नहीं जोड़ सके, चाहे उसे शाश्वत मूल्यों से भले ही संपन्न कर दिया हो। इस महाकाव्य में जैविक जीवन उजाड़ दिया गया है, और उजाड़े गये जीवन पर (समरसता की धारणा के आरोपण में) पृथ्विक जीवन या सामाजिक साम्य नहीं है।

ऐसा लगता है कि अभिनव गुप्त का उन पर काफी असर था (रहस्य सर्ग का भाव लोक, आनंद सर्ग में प्रकृति का लास रास, आदि)। अभिनव गुप्त ने रस एवं तत्र या, भोग एवं आनंद का समन्वय किया है। प्रसाद ने इसमें मनुष्य और अतिमानव का, विचारधारा और यूतोपिया का भी सामंजस्य कर डाला है। किन्तु 'कामायनी'-महल भी देशकालवियुक्त होकर एक फान्तासी बन गया। 'कामायनी' वाला स्वप्न तथा स्वर्ग सन्' ३६ में ही एक पुच्छलतारे की तरह चलकर राख हो गया। उनके समवर्ती प्रसाद, पंत, निराला और प्रेमचंद में-से किसी ने भी प्रसाद के इस सदर्शन के जादू को प्रोत्साहित नहीं किया क्योंकि 'कामायनी' का तात्त्विक (सौंदर्य तात्त्विक नहीं) बोध स्वयं ही एक छाया है, एक माया है और एक लीला है।

++++++++

आत्मविसर्जनशीला श्रद्धा, बुद्धिवादिनी इड़ा, त्रिपुर सुंदरी कामायनी, और विलासिनी प्रकृति। मनु इसीलिए कर्तव्यमयी नारी (Woman of duty) तथा भोगमयी नारी (Woman of pleasure) के बीच चुन नहीं पाते; बल्कि इस प्रकार भोग और योग दोनों को मिलाने के लिये व्याकुल हैं। मनु के लिये आनंद में श्रद्धा का रचनात्मक पक्ष समाप्त हो जाता है जबकि कवि के अनुसार आनंद में ही नारी-जीवन का नया-मंगल-आरंभ होता है।

समरसता और त्याग पर आधारित आनंद सर्ग में मनु की नैतिक प्रकृति बदल जाती है अर्थात् वे एक अतिमानव (super man) हो जाते हैं। लेकिन मनु को सामाजिक मनुष्य बनाने वाले सारस्वत नगर की ही सत्ता समाप्त हो जाती है। क्यों? मानों। 'प्रेमपथिक' के राही का पंथ ही 'कामायनी' में आनंद पथ हो जाता है। दर्शन सर्ग में पुनर्जागरण आत्मा की यात्रा न होकर मनुष्य की अंतर्भूमि में तीर्थयात्रा है। यह प्रकार का केवल अपेक्षाकृत सही कदम है। 'कामायनी' में वैदिक-अलौकिकता तथा मध्यकालीन आध्यात्मिकता से छायावादी संस्कार प्राप्त किये हैं। लेकिन इसका अंत दार्शनिक मध्यकालीनतावाद (Philosophical Mediaevalism) में हुआ है। अलबत्ता *महाकाव्य के अंतिरंग में एक स्वर प्रबल है : सनातन रूढ़ि (orthodoxy)* के प्रति कुतूहल एवं परिवर्तन की दृष्टि; मनु के रचनात्मक, दार्शनिक एवं ऐतिहासिक उन्मेष में कवि ने अनजाने ही आधुनिक मनुष्य के 'अकेलेपन' अजनबीपन तथा आत्मनिर्वासन के बोध को भी गूंथ दिया है। यह उनकी जागरूकता का सर्वोत्तम अभिलेख है। 'कामायनी' का सारतत्व यही है कि एक यह वैयक्तिक दुनिया है, मानसिक दुनिया है, न कि सामाजिक दुनिया और भौतिक दुनिया। इसमें मानवीय अनुभव के कुछ चुने हुए आयामों को ही कवि ने अपनी विचारधारा (iolcology) के वशवर्ती होकर उद्घाटित किया है। इसमें विवेक और विज्ञान, तर्क और कर्म को नीचा दर्जा दिया गया है; संदर्शन (विज़न), प्रज्ञा (इंट्यूशन) तथा अयुक्ति (इर्रैशनल) को अपेक्षाकृत ऊँचा आसन मिला है। दर्शन, रहस्य और आनंद सर्गों में सूचित भी अलौकिक हो जाता है क्योंकि इनमें जिन यूतोपियाओं एवं फान्तासियों का अभिधान हुआ है वे देश (Space), काल (time), कर्म (work) एवं व्यक्ति (individual) से विमुक्त हैं। ये लोक वस्तुतः हमारी दुनिया के प्रतीप (reversed) प्रतिबिंब हैं, हमारी सामूहिक आकांक्षाएँ हैं और हमारे अतीत के स्वर्णिम मोह हैं। इसीलिए इनमें आकर हमारी जिंदगी एक अन्यापदेश (एलीगरी) बन गई है। मनु मानों प्रतीकात्मक पुनर्जीवन (Symbolic re

[illegible]
के मानव बोध में समाहार न का आरम्भ लक्षित किया है। यह प्रक्रिया ही आदिम प्रारूपों (archetypes) का पुनरावर्तन है। मनु, यज्ञ, एवं काम तीनों ही पावन हैं। मिथक का प्रधान चरित्र पावनता है। मिथक की यथार्थता ऐतिहासिक न होकर पुनीत होती है। मिथक की यह पुनीत यथार्थता (sacred reality) तो तर्कपूर्व चिंतन (pre-logical thought) में अनुस्यूत रहती है। इसलिये मिथक की अन्तर्भूमि चिन्तन न होकर अनुभूति है। इसीलिए प्रसाद को भी आमुख में कामायनी-कथा में अन्तर्निहित 'सूक्ष्म अनुभूति' की योजना स्वीकार करनी पड़ी है। जब कवि को यज्ञ की नई व्याख्या करनी पड़ी तब उसे यज्ञ की ज्वाला के आर्कटाइप को वासना की ज्वाला में, देवताओं और दानवों के द्वंद्व को संघर्ष सर्ग के युद्ध में तथा प्रलय को अद्वैतवादी संहार धारणा में रूपांतरित करना पड़ा। इस रूपांतरण (metamorphosis) में मिथक का आधा जादू विलुप्त हो गया। यही नहीं, जलप्रलय तथा मनु के वर्तमान विश्लेषण में मिथकीय प्रत्यक्षीकरण भी विलुप्त हो गया। मिथक का स्वभाव ही ऐसा है कि बौद्धिक व्याख्याओं आदि में उनका प्रत्यक्षीकरण विलीन हो जाता है। उदाहरण के लिये प्रसाद ने मनु, इडा और श्रद्धा का अन्यापदेशिकीकरण करने की जो कोशिश की है, वह असफल सिद्ध हुई।

मिथक में आस्था (belief), तथा इससे भी अधिक हठात्-विश्वास (make belief) का आधार रहता है। इसी भूमि पर मिथकीय कल्पना का हवामहल खड़ा रहता है। आस्था ही मिथक को यथार्थ (real) तथा पुनीत (sacred) बनाती है। इसी वजह से मिथों धार्मिक चेतना सत्य भी मानती है। मनु और श्रद्धा का संयोग मिथक के इस तत्व को सर्वाधिक उन्मिषित करता है। मनु के बाद शुभ कर्म में प्रवृत्त करने वाली श्रद्धा प्रकट होती है

मिथक बनाम धर्म के द्वंद्व पर थोड़ा विचार कर सकते हैं।

आधुनिक मिथकशास्त्रियों के अनुसार मानव संस्कृति के विकास में यह लक्षित करना बहुत मुश्किल है कि कब मिथक का अंत और धर्म का प्रारम्भ हुआ क्योंकि धर्म अविप्रात रूप से मिथकीय तत्त्वों से सम्बन्धित एवं गर्भित है। मेलिनोव्स्की ने कहा है कि यदि मार्गान्वेषण खतरों से भरा है तथा समस्याएँ अनिश्चित हैं, तब बहुत अधिक विकसित जादू, और उसके साथ मिथकशास्त्र का विकास होता है। शाक्त एवं शैव, नाथ एवं सिद्ध साधनाओं के संदर्भ में यही हुआ। इनमें गूढ़ ज्ञान तथा रहस्यवाद भी विकसित हुआ। जादू अंधविश्वासों का औसत, तथा धर्म सर्वोच्च नैतिक आदर्शों की प्रतीकात्मक अभिव्यंजना माना गया है। लेकिन जब धार्मिक विश्वासों को जादू से संबद्ध कर दिया गया, तब वे भी अंधविश्वास हो गये। वस्तुतः जादू के आदिम रूप, आदिम मिथक, आदिम विज्ञान और आदिम धर्म, चारों पर्यवसित रहे हैं क्योंकि मनुष्य के कुतूहल से ही जादू का जन्म हुआ। 'कामायनी' में चिंता सर्ग का रहस्यात्मक कुतूहल प्रकारान्तर से वैदिक कर्मकांडों में पर्यवसित हुआ है लेकिन 'इन्द्रजाल', 'कुतूहल', 'रहस्य' जैसे शब्द अवश्य शेष रह गये हैं। 'कामायनी' में क्रियाधर्मी देवताओं (*functional gods*) की जिस वैदिक सूची से हम दूसरे सर्ग में परिचित होते हैं (विश्वदेव, सविता या पूषा सोम, मरुत चंचल पवमान) वे 'प्रकृति के शक्ति चिन्ह' हैं। इसके उपरांत हम विशेषतः शिव और काम जैसे दो इष्टदेवताओं (personal gods) की लीला पाते हैं जिन्हें कवि ने मानवीय स्थितियों से सम्प्रथित किया है। 'कामायनी' में जिस मानवसृष्टि की कथा है उसमें कुंठाओं (inhibitions) एवं नैतिक निषेधों (taboos) का वातावरण नहीं है। केवल श्रद्धा (belief) के रूप में नैतिकता का चरित्र उभर रहा है, कुछ कर्मों से बचने की इच्छा और कुछ को करने की इच्छा जाग रही है। यह मिथकीय सुभावन ही इस महाकाव्य का कुहक है। हाँ, यज्ञज्वाला के रूप में पहला नैतिक निषेध, और यज्ञ पशु (आनन्द सर्ग) तथा ऊर्वशीमेष (वासना सर्ग में) जैसे पशुओं के रूप में प्रथम टोटेम (Totem) उभरते हैं। कवि ने पशु की बलि करवाकर संघर्ष और हिंसा की भी नींव डलवाई है। स्वप्न सर्ग में हम प्रजापति को 'नरपशु' के रूप में भी पाते हैं (··· नरपशु कर हुंकार उठा)। कवि ने इसी नरपशु को संघर्ष सर्ग के बाद से पापों और कलुषों से मुक्त करना शुरू किया है, तथा अंत में उसे 'शिव' युक्त कर दिया है। कवि ने इस प्रसंग में रुद्र, शिव, नटेश और भूतनाथ के मिथक बिंब का प्रयोग किया है। जहाँ तक जादू का सवाल

और [illegible] का [illegible] हो [illegible] है, [illegible] सिन्धोर [illegible] के [illegible] से [illegible] भी हो [illegible] है । [illegible] सिन्धोर [illegible] का [illegible] भी [illegible] है कि [illegible] गया है (दे० [illegible] के [illegible]) । [illegible] ऐतिहासिक [illegible] से संगम किया है यानि सिन्धु, सरस्वती, [illegible] आदि [illegible] भी हो जायें । इला और मनु की कहानी के कथन का वैदिक नारी पर्व करने वाली कामयात्रा (श्रद्धा) से मनु का मिलन सिन्धु-तट पर होता है ([illegible] कर्मे मनुर्दि-कृपम् । शत० १२ । ७ । ३ । ११) । कामयात्रा के सौन्दर्य-वर्णन के कई सन्दर्भ भी मत्स्य पुराण में अनुकृत है । यह [illegible], लम्बी नासा वाली, सुन्दर लवे केशों वाली, क्षीण कटि वाली, तथा उन्नत ललाट वाली भी है । वास्तव में जब श्रद्धा (मत्स्य में इडा) आती है तब उसमें मिलने मित्रा-वरुण आते हैं । वरुण सिन्धुपति (ऋ० ७ । ६४ ।) है । अतः विरोधवादी धारा के तट पर श्रद्धा का आगमन प्रतीकार्थक भी हो जाता है । मित्र वरुण युग्म दिवारात्रि के प्रतिनिधि भी हैं । चिन्ता की रात्रि और आशा की उषा के बाद ही श्रद्धासर्ग में यह मिलन होता है । वसन्त की वर्षा के बाद शरद में यह मिलन होता है । ग्रीष्म अग्नि और शरद पुरोडाश माना गया है । इस भाँति प्रतीकात्मक आहुतियों से यज्ञभूमि पुनीत हो गई है ।

इडा मनु को सरस्वती तट पर मिलती है । सरस्वती का नाम ऋग्वेद में आया है (V ४२ । १७ । ८, VII १८-१९) दृषद्वती और सरस्वती दो वैदिक नदियाँ थी जो कुरुक्षेत्र में बहती थी । (कनिंघम की पुरातात्त्विक रिपोर्ट में इसका विवेचन हुआ है) । बाद में सरस्वती विद्या की देवी भी हो गई । 'कामायनी' में नदी और देवी, दोनो स्वरूपो का प्रतीकीकरण हुआ है क्योंकि इडा (विद्या) वही रहती है । कठोपनिषद में बुद्धि (इडा) को सारथी कहा गया है जो एक हाथ में मन की कई वल्गाएँ थामे है । 'कामायनी' में इडा एक हाथ में कर्मकलश धरे है , तथा दूसरे हाथ को उठाकर विचारो के नभ को अवलम्ब दिये है । ऋग्वेद के वाक् के स्वरूप को कवि ने इडा में मिलाया है । दसवें मंडल के १२५ वें सूक्त में वाक् कहती है कि 'मैं रुद्र के लिये धनुष खींचती हूँ मैं जन के लिये सघर्ष करती हूँ । मैं आकाश और पृथ्वी में व्याप्त हूँ ।··मैं रानी (राष्ट्री) हूँ । मैं एश्वर्यों का सकलन करती हूँ' (१०/१२५/३) । मैं पवन की तरह भुवन और विश्व को वश में करती हुई चलती हूँ' । स्वप्न एव सघर्ष सर्ग की इडा में ये वैदिक चरित्र गुण शामिल कर लिये गये हैं ।

है यह रहस्य सर्ग के रहस्यात्मक परिवेश में पर्याप्त है। इन परवर्ती सर्गों में प्रकृति भी साधिका की तरह रहस्यात्मक हो गई है। मिथक में प्रकृति के मौलिक तत्त्व मनुष्य के सामाजिक जीवन का प्रक्षेपण हो जाते हैं।

इस भांति 'कामायनी' का मिथकीय परिवेश ऐतिहासिक स्थिति का विस्मरण कराता है। हम यह विश्वास कर लेते हैं कि जलप्लावन और मनु की कथा यथार्थ है, क्योंकि यह पुनीत है, अतः यह सत्य है। इस तरह मिथक की यथार्थता पुनीत होती है। औसत हिन्दी पाठक, और कुछ विरले विद्वान, 'कामायनी' में निहित मिथकीय तत्त्वों के कारण उसे श्रद्धा और पूजा की वस्तु भी मानते पाये जाते हैं। मिथक का जादू ही यह है। मिथक की सिद्धि महाकाल में निरंतर होती रहती है और पाठक या श्रोता अपने ऐतिहासिक काल के अतिक्रमण करने की आकांक्षा तृप्त कर लेता है। सहृदय बोध का यह महत्तम आयाम है और इस कृति में मूर्तिमान है (अधिक विस्तार के लिये देखें : 'सहृदय बोध और कवि का संसार' शीर्षक अध्याय)। मिथक-सत्य तथा इतिहास-सत्य में मौलिक अंतर है। मिथक-सत्य श्रद्धा पर आश्रित है, जबकि इतिहास सत्य विज्ञान पर और मिथक सत्य कर्मकांड से गुंथा है और इतिहास-सत्य तथ्यों से। तथ्यों को संकलित करने के बाद उनकी व्याख्या करने पर ऐतिहासिक सत्य मिलता है। इसके असमान विवेचन में मिथक का प्रत्यक्ष ही विलीन हो जाता है। हां, ऐतिहासिक प्रतीकों को मिथकीय तत्त्व से अवश्य जोड़ा जाता है जिससे आर्केटाइपों का पुनरान्वेषण संपन्न होता है। 'कामायनी' में प्रसाद ने अपने सामाजिक जीवन के तनावों और समस्याओं को आर्केटाइपल बिंबों में गर्भित करके 'मानवता के सत्य' की तलाश की है। इसी अन्वेषण के समानांतर प्रयुक्त मिथक के भी नये नये आयाम उद्घाटित हो गये हैं। मिथकीय प्रतीकीकरण की यह प्रक्रिया कामायनी में 'रूपकतत्व' के उपक्रम में उद्घाटित हुई है।

* इसी अनुक्रम में कवि ने मिथकीय भूगोल (Mythic geography) का भी विन्यास किया है : हिमालय, मानसरोवर, हिमालय का साधना स्थल, और अंततः कैलाश पुनीत स्थल (*sacred space*) का भी आयाम रचते हैं। हिमालय शिखर एक बारगी ही आनन्द शिखर, साधना-शिखर और चेतन पुरुष पुरातन हो जाते हैं। रहस्य सर्ग का त्रिकोण एवं त्रिपुर भी तत्वतः पुनीत स्थल ही हैं जो रहस्य से मंडित हैं। मिथकीय चेतना के लिये वे यथार्थ हैं। मिथकीय चेतना के धाराप्रवाह में आनन्दसर्ग की यूतोपिया भी [illegible] जाती है क्योंकि वह पुनीत है। यहां औसत आधुनिक अभिमत भी

अब हम इस सन्दर्भ के दूसरे पक्ष—स्वप्न—की मीमांसा करेंगे। [illegible] स्वप्न के [illegible] कवि ने सामाजिक यथार्थता (social reality) का अतिक्रमण किया है। उसने जो स्वप्न रचे हैं वे मनु के काम-स्वप्न और श्रद्धा के पूर्व स्वप्नाकार से लेकर दर्शन सर्ग के दिवास्वप्न (Day dream) रहस्य सर्ग फन्तासी (fantasy) तथा आनन्द सर्ग के कल्पलोक (utopia) का भी समावेश करते हैं। इसके अलावा इसके अन्तर्गत संघर्ष सर्ग का आधुनिक प्रेतस्वप्न (modern nightmare) भी शामिल है।

स्वप्न के ये स्वप्न-प्रतिरूप एक ओर तो मिथकीय कल्पना के जादू से बँधे हैं, दूसरी ओर यथार्थता से भयभीत पलायन करते हैं और तीसरी ओर वैयक्तिक असफलताओं, आदर्शों तथा आकांक्षाओं का अन्तर्लोक रचते हैं। 'कामायनी' में 'स्वप्न' के ये तीन प्रधान आयाम हैं जो स्वयं स्वप्न को भी व्यापक प्रयोजन प्रदान करते हैं।

रोमांटिक कवि 'स्वप्नद्रष्टा' होता है और 'स्वप्निल लोकों' को बसाता है। क्या दार्शनिक-इतिहासकार प्रसाद ऐसे थे ? इसका उत्तर घुमावदार है।

प्रसाद के स्वप्नलोक-निवेश की प्रक्रियाएँ भी मनोवैज्ञानिक हैं। उन्होंने प्राय. निद्रा, अलसचेतना, अँगड़ाई, तंद्रा के अन्तराल में चेतना, चेतन की किरणें [या फ्लक्स (flux)], या जागरण का अवाच् कथन किया है जिसका तात्पर्य स्पष्ट रूप से अवचेतना एवं स्वप्न (ड्रीमिंग) का एक युगल है। इसे वे नृत्य की संज्ञा से भी जोड़ते हैं जिसका तात्पर्य इनका कलात्मक पुनर्निर्माण है। 'कामायनी' में अवचेतन स्वप्नायन के युग्म की पृष्ठभूमि में प्राय. वेदना, व्यथा, चिंता, अभाव और द्वंद्व का भाव भी मौजूद रहता है। यह छायावादी सौंदर्यतात्त्विक दृष्टि से आन्तरिक अनुभूति का, तथा उनके इतिहास-दर्शन की दृष्टि से विवेकवादी धारा की यथार्थता का सामंजस्य है। लेकिन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसका आयाम आत्मपीडन रति (masochism) में भी खुलता है। दार्शनिक अनुगामिता की दृष्टि से आनन्दवादी प्रसाद करुणा और वेदना और दुख से भीगे रहे थे। 'आँसू' नामक मुक्तक काव्य में दुख की भूमिका पारदर्शी है। हम अन्तर्दाह (फैल रही थी घनी नीलिमा अन्तर्दाह परम से; ··अंतर्दाह स्नेह का तब भी होना

इसी भाँति कैलास और हिमालय-भूमि तांत्रिकों, योगियों और कवियों की पौराणिक तथा रहस्यात्मक भावना-भूमि में स्थापित कर दी गई है। कैलास शुभ्र शिखर है जहाँ पूर्ण शांति विराजती है, और काल चक्र का परिवर्तन नहीं है। कैलास में जड़ और चेतन, नित्य और अनित्य एक हो गये हैं। यह आनन्द-शिखर भी है। इस तरह 'कामायनी' में मिथकीय भूगोल में रंग भरे हुए हैं।

कैलास मिथकीय काल की धारणा का भी संकेत करता है। ऐतिहासिक काल निरंतर, परिवर्तमान और अग्रगामी होता है; लेकिन मिथकीय काल चक्रात्मक (cyclic) होने के साथ-साथ शाश्वत और पूर्वगामी भी होता है। मिथकीय काल का प्रत्यावर्तन (reversal), भी हो सकता है। सृष्टि-संहार चक्र, निवृत्ति-चक्र, धर्म-चक्र, आदि की धारणाओं ने 'कामायनी' में मिथकीय काल के अंशों को उभारा है। अतः रहस्य सर्ग में काल का स्थगन (सस्पेंशन) हो जाता है, दर्शन सर्ग में स्पंदन (pulse) और आनन्द सर्ग में स्थैर्य (Fixation)।

इस भाँति हम 'कामायनी' में मिथक, मिथकीय चेतना और मिथकीय बोध को पाते हैं। मिथक बिंबों को कथा में प्रवाहित करने (यज्ञ→ज्वाला→वासना→हिंसा→युद्ध→त्रिपुर दाह ; कण→शक्ति→काम→श्रम→शांति;

खुलते हैं जहाँ कवि का मानस स्व कवि केन्द्र में होता है । अतः एक ओर तो ये काव्यात्मक सृष्टि के स्रोत हैं तथा दूसरी ओर वैयक्तिक गुणों की काल्पनिक विजय के साध्य । इन दोनों दिशाओं के कारण दिवास्वप्नों में वैयक्तिकता मुखरित हो जाती है और वे रोमांटिक हो जाते हैं । 'कामायनी' में त्रिपुर और आनन्द ताण्डव तथा कैलाश लोक की मूल विषयवस्तु (content) यथार्थ नहीं है क्योंकि उनके केन्द्र में अनुभव की प्राथमिकता हट गई है । उनका केन्द्र फान्तासी है । 'कामायनी' में इन सभी स्थलों में यथार्थता सिद्धान्त (reality principle) का परित्याग हुआ है ताकि फान्तासी की रचना हो सके । इस रचना में सुख (pleasure) की कामना का भी अस्थायी त्याग हुआ है ताकि आनन्द की सिद्धि हो सके । यह एक विचित्र ढंग की क्षतिपूर्ति है । यथार्थता की वास्तविकता से 'चिरबन्धन मुक्त' होकर मनु परवर्ती फान्तासियों में सामरस्य अवस्था तथा आनंद के साधना - पथों में स्वर्ग और आनंद को सिद्ध करते हैं । इस तरह अपने स्वप्न-पथों में कामायनी-नायक मनु सामाजिक यथार्थता का अतिक्रमण करते हैं जहाँ कल्पना में तृप्ति प्राप्त होती है । 'कामायनी' के स्वर्गिक (मनोवैज्ञानिक शब्दावली में, काल्पनिक) कल्याण का सार यही है । इसमें निद्रा-स्वप्न की रूपात्मक विकृतियों (distortions) से आसानी से बचा गया है, तथा चेतना की धारा (stream) के साहचर्यों को मधुरतापूर्वक ग्रहण किया गया है ।

चेतना की किरणों का पुंज (flux) बेहद अंतर्मुखी है । इसमें मानसिक वैयक्तिकता की इतनी प्रचुरता है कि कला की प्रकृति से इसका विरोध हो जाता है । 'कामायनी' में कवि के अनुभव की प्रकृति ऐतिहासिक—मिथकीय—रोमांटिक है (दे० 'विचारधारा तथा कल्पनालोक का अभिधान' शीर्षक अध्याय); और कृति की कलात्मक प्रकृति प्रातिभ (intuitional), रूपकात्मक (metaphorical), प्रतीकात्मक (symbolic) एवं शब्दबिंबात्मक । इसीलिये 'कामायनी' में चेतना की धारा का जो प्रवाह है वह चेतन तथा अवचेतन दोनों कूलों का स्पर्श करता है, कवि की यथार्थ (वेदना) तथा आदर्श (आनंद) की दृष्टियों का तथाकथित ऐकीकरण करता है । और उसके जगत (दुःख) तथा स्वर्ग (मुक्ति) की धारणाओं का साधारणीकरण करता है । इसका परिणाम सहृदय – बोध के अन्तर्गत दुरूहता और रहस्यभावना का समुत्सर्जन है । इति के अनुपात में चेतना-प्रवाह साहचर्यों की लड़ियाँ गूँथता चलता है जिससे कि प्रकृति, नियति, यज्ञ, अणु, वासना, शक्ति आदि से भिन्न-भिन्न नई-नई स्थितियों में नये दिवास्वप्नों के उत्स बन जाते हैं (दे० 'रस रहस्य : महाकाव्यत्व अथवा

या उस मन में), आत्मसमर्पण (इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है, "सर्वस्व समर्पण करने की विश्वास महातरु छाया में—'), दुःख-पूर्ण अनुभवों की खोज आदि आत्मपीड़नरति के अन्तर्गत आते हैं। थियोडोर राइक ने तो यहाँ तक कहा है कि सामाजिक आत्मपीड़नरति सांस्कृतिक उपलब्धियों को सिद्ध करती है। इस काव्य में यज्ञ की ज्वाला के आर्केटाइपल बिंब से यही विन्यस्त हुआ है (देख 'इतिहासदर्शन' शीर्षक अध्याय)। मूलतः आत्मपीड़नरति का उद्गम फान्तासी है। प्रसाद ने यथार्थता को अस्वीकार कर दिया है, लेकिन उसका पुनर्निर्माण अपनी शैव एवं छायावादी विचावली के अनुरूप किया है जिसमें विभ्रम (इल्यूज़न), दिवा स्वप्न (डे-ड्रीम्स) तथा वशीकरण (हैल्युशिनेशन) शामिल हैं।

सुखभोग का परिणाम दण्ड और अभिशाप है। केन्द्रीय वस्तु (थीम) को देवताओं की सृष्टि के विलयन, मनु के गृहागृह के विघटन, और सारस्वत नगर के भीषण विप्लव के द्वारा प्रकट किया गया है। सुख-भोग के विकल्प के रूप में त्याग और करुणा का प्रतिपादन हुआ है। कर्म सर्ग में श्रद्धा यही प्रति-पादित करती है कि एकान्त सुख वासना धारा है, तथा त्यागपूर्ण सबका सुख मानवता-धारा है, इसी तरह मृगया की हिंसा के विरोध में करुणा का प्रतिपादन हुआ है। मनु में आत्मपूर्ति की इच्छा चिन्ता उत्पन्न करती है, और इस चिन्ता का उद्गम अभिशाप-मय है (जिसे तुम समझे हो अभिशाप जगत की ज्वालाओं का मूल)। यही चिन्ता इड़ा-सर्ग में चिन्तन और कर्म के अंशों में विस्तृत होती है तथा संघर्ष सर्ग में मनु स्वयं अपने विरुद्ध अर्थात् आत्मघातक अर्थात् आत्म-पीड़क हो जाते हैं क्योंकि उन्हें अब यह नई चिन्ता घेर लेती है कि सारस्वत नगर तो भरापूरा हो गया लेकिन मानस प्रान्त सूना का सूना है। अतः वे हृदय की रानी इड़ा को दुःसह पीड़ा करते हैं। यहाँ हमने आत्मपीड़नरति के संदर्भ में चिन्ता की केन्द्रीयता को उद्घाटित किया है क्योंकि ऐसी भित्ति पर कवि की कामायनी के स्थापत्य स्थित है।

इसी तरह से मनु मनुष्य मनन तथा मानवता का ऐक्य हो जाते हैं, तथा मनुष्यता ही मनु, पुरुष एवं मनन में अंतर्भूत हो जाती है। अंग-अंगी की एक समरसता यथार्थता के अतिक्रमण का परिणाम है। इस अतिक्रमण के पीछे कवि का जीवन दर्शन भी गुँथा हुआ है जो वर्तमान और यथार्थ के दुख, अभाव एवं पतन को अस्वीकार करता है, और उसके स्थान पर आदर्श की शक्ति, प्रमोद एवं आलोक का अभिषेक करता है। मिथक से स्वप्न में छलांग लगाने का यह मनोवैज्ञानिक विकास इसी ढंग का हुआ है। फलतः कवि के 'स्वप्नों' में विज्ञान का तिरस्कार है, वर्तमान की विषमता है, दुख की भयानकता है और अभाव का पतन है। इसीलिए प्रसाद भारत के अतीत स्वप्न तथा विश्व सुन्दरी प्रकृति पर इतना मुग्ध हैं कि संपूर्ण 'कामायनी'—यात्रा को वहीं ले जाते हैं। यह उनका अमूल अंतर्विरोध (contradiction) है।

कवि के 'स्वप्नों' की मानसिक वैयक्तिकता के कारण हम 'कामायनी' के स्वप्नलोकों में संदेश, उद्बोधन और माधुर्य को ही पाते हैं। उनका यूतोपियाई मानस भविष्य के बजाय अतीत में रमण करता है। अतीत में रमण करने की मूल प्रवृत्ति 'कामायनी' में मिथकीय काल की रहस्यात्मक सृष्टि में तन्मय हो गई है। अतः कवि भविष्य के स्वप्नों के बजाय अतीत के मिथकीय स्वप्नों एवं धार्मिक सदर्शनों से लुभाता है। सारे भटकावों के बाद कवि अंततोगत्वा मातृ बिंब एवं पितृबिंब की प्रतिष्ठा कर देता है। ईर्ष्या सर्ग में मनु वासना सर्ग वाले 'पशु' का वध करते हैं, और वर्तमान का दंश भोगते हैं। इसी टोटेम-पशु की हत्या के फलस्वरूप कुछ निषेध (taboos) जन्म लेते हैं जैसे अहिंसा, करुणा, ममता, नियम, अपराध आदि। किन्तु पशुवध का कर्मकांड संघर्ष में मनु को ही 'नरपशु' बना देता है। अर्थात् मनु ही टोटेम-प्रतीक हो जाते हैं। प्रसाद ने अनजाने ही मिथक के इस बड़े रहस्य को छू लिया है। यही उद्घाटन उन्होंने एक और स्थल पर किया है। मिथक में आदिम अपराध के प्रति नैतिकता और भय की भावना नहीं रहती। प्राचीन कथा में इड़ा अथवा श्रद्धा मनु की पुत्री है, और कालान्तर में पत्नी भी। यहाँ इस आदिम अपराध की उपेक्षा है। यह मिथक से दिवास्वप्न के सूक्ष्म अन्तराल को प्रकट करता है। इस अंतरण में धार्मिक चेतना के समावेश के फलस्वरूप ही ऐसा हुआ है, और हो जाता है।

फान्तासीय इच्छापूर्ति (विश-फुलफिलमेंट) इन 'कामायनी'—सर्गों में धार्मिक आस्था ने दिवास्वप्नों के चित्रों को संस्कारित किया है। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए। इन 'स्वप्नों' में कवि ने 'सूक्ष्म अनुभूति या भाव' के

23·6·72.

'चिरंतन सत्य' को अभिव्यक्त किया है। अतः एक बीज-बिंब कई दृश्यों में विभिन्न प्रतीकों (नृत्यों) में उन्मीलित हुआ है। कर्म-काम-चिंता की पहली नदी कर्म-इड़ा-संघर्ष सर्ग में यथार्थ भूमि पर खुली है, तथा रहस्य सर्ग में इच्छा-क्रिया-ज्ञान लोक की नदी के रूप में वर्णित हुई है। इसी तरह नृत्य का बिंब है जो प्रकृति के संहार तांडव, अतिथि के हृदय के आनंद के रास, संघर्ष सर्ग में भूतनाथ के भैरवनृत्य, रहस्य सर्ग में महाकाल के विषमनृत्य और आनंद सर्ग में शिव सुन्दरी के साथ रास में विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ है। प्रायः सभी बीज-बिंबों के विषय में यही कहा जा सकता है (दे० 'रूप-स्वरूप महाकाव्यत्व अथवा महान काव्यत्व' शीर्षक अध्याय भी)।

'कामायनी' में सामाजिक यथार्थता और वर्तमान के जो चित्रण हैं उनमें प्रेतस्वप्न (nightmares) का बोध विद्यमान है। इसका विस्तृत निरूपण 'विचारधारा तथा कल्पलोक का अभिधान' शीर्षक अध्याय में हुआ है। कवि ने वैदिक मॉडल तथा आधुनिक मॉडल, दोनों को अस्वीकृत करके शैव-तांत्रिक मॉडल को स्वीकार किया है। इस चुनाव में प्रसाद की वैयक्तिक मनोवृति, छायावादी जीवन बोध तथा वर्गीय चरित्र तीनों का अभाव परिलक्षित होता है। समरूपता एवं समरसता की तलाश में कवि ने दो सृष्टियों का विध्वंस किया है : विलास और सोम और यज्ञ से देवसृष्टि मिटी है; तथा कामना प्रभुत्व और हिंसा से मनुष्य की सारस्वत-सृष्टि। दोनों के कारण एक-से हैं और दोनों में ही सुख (प्रभुत्व) तथा अहं (दंभ) ही हेतु थे।

यही बात हम कई प्रकार के पुनर्निवेशों में पाते हैं जहाँ चिंता और हिंसा दुःख और विषमता, भोग और स्वार्थ, विज्ञान और विवेक, भेद और तृष्णा, विलास और अभाव, आदि कई सामाजिक जटिलताएँ तथा वैयक्तिक कुंठाएँ भी उत्पन्न करते हैं। देवसृष्टि का निर्बाध विलास और स्वायत्त सुख एवं सारस्वत सृष्टि का निर्बाधित अधिकार और पूँजीवादी भीषणता—ये आधुनिक युग के ज्वलंत यथार्थ को उभारते हैं। किन्तु कवि इन्हें प्रेतस्वप्न के धरातल पर